ब्रह्मपुत्र

लेखक की अन्य रचनायें

हिन्दी

लोक-साहित्य : १ धरती गाती है, २ धीरे बहो, गंगा। ३ बेला फूले आधी रात ४ बाजत आवे ढोल ५ चित्रों में लोरियाँ।

कविता : बन्दनवार।

कहानियाँ चट्टान से पूछ लो, २ चाय का रंग ३ नये धान से पहले ४ बालक नहीं बन्दूक।

उपन्यास १ रथ के पहिये, २ कठपुतली।

आत्मकथा चाँद-सूरज के बीरन।

निबन्ध १ एक युग एक प्रतीक २ रेखाएँ बोल उठीं ३ क्या गोरी क्या साँवरी।

रेखा-चित्र : कला के हस्ताक्षर।

पंजाबी

लोक-साहित्य १ गिद्धा २ दीवा बले सारी रात।

कविता : १ धरती दीयाँ वाजाँ २ मुड़का ते कणक, ३ बुड्ढी नहीं धरती।

कहानियाँ १ कुंग पोश, २ सोना गाची ३ देवता डिग पिया।

उर्दू

लोक-साहित्य : १ मैं हूँ खानाबदोश, २ गाये जा हिन्दुस्तान।

कहानियाँ : १ नये देवता, २ और बाँसुरी बजती रही।

अंग्रेजी

लोक-साहित्य : Meet My People.

ब्रह्मपुत्र

देवेन्द्र सत्यार्थी



एशिया
प्रकाशन

एशिया प्रकाशन नई दिल्ली



ब्रह्मपुत्र

देवेन्द्र सत्यार्थी



एशिया प्रकाशन नई दिल्ली

पहली बार
१९५६

सात रुपये

प्रकाशक
एशिया प्रकाशन
१०० बेयर्ड रोड नई दिल्ली

मुख्य वितरक
राजकमल प्रकाशन
८ फैज़ बाज़ार, दिल्ली

मुद्रक श्री गोपीनाथ सेठ नवीन प्रेस दिल्ली ।

ब्रह्मपुत्र की प्रजा के चरणों में

लोक युग का नदी पुराण

भारत की नदियों का वर्णन करते हुए व्यास जी ने उन्हें 'विश्वस्य मातरः' कहा है। सचमुच नदियाँ लोकमाता ही होती हैं। लेकिन सब नदियों को हम माता नहीं कहते। विश्वामित्र ने तमसा नदी को अपनी बहन कहा है। हमारे गाँव की छोटी मार्कंडी मेरी छोटी बहन है। हम बचपन में साथ बहुत खेले हैं। यमुना नदी स्वयं भगवान् यमराज की बहन है और गुजरात की ताप्ती या तपती नदी तो यमराज के पिता सूर्यनारायण की पुत्री कही जाती है।

हिमालय के उस पार का पानी भी भारत का है यह सिद्ध करने के लिए सिन्धु और ब्रह्मपुत्र—ये हमारे दीर्घकाय नद मानसरोवर और रावण ह्रद से निकलकर हिमालय की लम्बाई लाँघकर इस पार आते हैं।

ब्रह्मपुत्र का दर्शन मैं ने सदिया और परशुरामकुण्ड (ब्रह्मकुण्ड) से लेकर गोआलन्दो तक और आगे जाकर पद्मा और मेघना के नाम से किया है। ब्रह्मपुत्र न बहन है न माता। वह तो सृजन और संहार की लीला में मस्त एक देवता है। पृथ्वी के भूचाल भी ब्रह्मपुत्र की इसी लीला में मदद करते हैं। युद्ध-धर्म का उत्कर्ष बताने वाले क्षत्रियों का संहार करते-करते ब्राह्मणवीर परशुराम को कहीं भी शान्ति नहीं मिलती थी। उसे वह ब्रह्मपुत्र के किनारे मिली और यहाँ पर उस ने अपने हत्यारे परशु का त्याग किया था।

ऐसे ब्रह्मपुत्र की लीला का आधार लेकर असंख्य कथा और कहानी भारतवासियों को लिखनी चाहिए थी। पुराणकारों ने यथामति यथाशक्ति कई नदी-कथायें हमें दी हैं। ब्रह्मपुत्र के बारे में और सिन्धु के बारे में भी पौराणिक कथाएँ मिलती हों तो मैं नहीं जानता।

ब्रह्मपुत्र के किनारे प्रचलित एक लोक-कथा के आधार पर श्री हुमायूँ कबीर ने 'नदी भो नारी' के नाम से एक कथा लिखी है। ब्रह्मपुत्र के किनारे प्रथम प्रदेश में जो लोक जीवन पाया जाता है, उसे व्यक्त करने वाली यह सुन्दर नवल कथा श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने हमें दी है।

श्री देवेन्द्र सत्यार्थी भारत के लोकगीतों के अनन्य उपासक हैं। उन की प्रवृत्ति और उन की निष्ठा की ओर महात्मा जी ने मेरा ध्यान खींचा था। अपनी समृद्ध दाढ़ी के साथ फकीराना ढंग से उन्होंने सारे भारत का भ्रमण किया है और भारत के हर प्रान्त के लोकगीत उन्होंने इकट्ठे किये हैं। उन का यह संग्रह एक सागर के जैसा हुआ है।

लोकगीतों द्वारा लोक-मानस का और लोक-जीवन का जो प्रगाढ़ परिचय होता है उस का प्रतिबिम्ब इस उपन्यास में मिलता है।

हमारे पूर्वजों ने अपने ढंग से नदियों के स्तोत्र और नदियों के पुराण बनाये। अब हमारे जमाने के साहित्यकारों को चाहिए कि वे आधुनिक ढंग से नदियों के स्तोत्र और नदियों के पुराण हमें दे दें। 'सप्तसरिता' 'लोक-माता' और अब 'जीवन-लीला' द्वारा मैंने आधुनिक स्तोत्र बनाने का एक यत्न प्रारम्भ किया है। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने इस उपन्यास द्वारा नदी-मुखों के लोक-जीवन का पुराण प्रस्तुत किया है। हमारे संस्कृत पुराणों में ऋषि-मुनि राजा-महाराजा और देवी-देवताओं की भरमार होती है। अब लोक-युग शुरू हुआ है। अब तो हमारे पुराण लोक-जीवन को ही प्राधान्य देंगे। इस का प्रारम्भ हम 'ब्रह्मपुत्र' में पाते हैं।

मुझे विश्वास है कि सत्यार्थी जी के द्वारा भारतीय संस्कृति की ऐसी बहुत-कुछ सेवा होगी और भारत की जनता उन की एकनिष्ठ उपासना की कदर करेगी।

नई दिल्ली —काका कालेलकर

-- १० १९५६।



देवेन्द्र सत्यार्थी
[श्री मनीतकुमार चक्रवर्ती द्वारा अंकित]

ब्रह्मपुत्र की भाषा

नाम पहले-पहल बचपन में सुना, फिर स्कूल में नक्शे पर देखा। एक पतली-सी रेखा दूसरी रेखाओं के बीच से राह निकालती सागर तक चली गई है, यही ब्रह्मपुत्र है।

एक चौथाई शताब्दी पूर्व सन् १९३० में, जब मेरी आयु मुश्किल से बाईस वर्ष की थी, पहले-पहल असम जाने का अवसर मिला। यह यात्रा लोकगीतों के सम्बन्ध में थी और यह कोई एक वर्ष तक चली।

ब्रह्मपुत्र में बार-बार स्नान किया। ब्रह्मपुत्र में मिलने वाली असंख्य नदियाँ देखीं। चाय के अनेक बग़ीचे देखे। एक स्थान पर महीना भर मलेरिया से बीमार पड़ा रहा, फिर भी जी उदास न हुआ। परशुराम कुण्ड में स्नान किया। सदिया, डिब्रूगढ़ और गौहाटी से ही नहीं, धुबड़ी, ग्वालपाड़ा और तेजपुर से भी ब्रह्मपुत्र के दर्शन किये। शिवसागर के समीप दिसांगमुख से ब्रह्मपुत्र की विशाल धारा देखकर सहसा मेरे मुख से निकल गया

बुढ़ापा यहीं आकर काटा जाय।

बंगाल के सम्बन्ध में किसी का यह विचार पढ़ा था कि वहाँ आने के लिए तो कई प्रवेश-द्वार हैं पर बाहर जाने के लिए एक भी द्वार नहीं। अब लगा कि असम पर यह बोल और भी पूरा उतरता है। बचपन में सुनी हुई बात कल्पना को प्रेरणा देती — कामाख्या कामरूप की परमसुन्दरी बाहर से आने वाले यात्री को भेड़ा बनाकर रख लेती है। पर अब तो असम को जादू-टोने का देश कहना भूल होती।

ब्रह्मपुत्र के बीच में है माजुली का द्वीप। दिसांगमुख में एक मार्ग दर्शक मिल गया जो मुझे नाव पर माजुली ले गया। वहाँ मैंने कमलाबाड़ी घाट से उत्तर लखीमपुर जाने वाली सत्ताईस मील लम्बी सड़क पर यात्रा की। माजुली में चार प्रमुख वैष्णव सत्र हैं कमलाबाड़ी दक्षिण पाट, भावलियाटी और गड़ामूर। मैंने ये चारों सत्र देखे और असम के वैष्णव महापुरुष शंकरदेव और उनके शिष्य माधवदेव की भक्ति-परम्परा का रस ग्रहण किया। माजुली में सौ से ऊपर गाँव होंगे। मैंने कुछ गाँव भी देखे जिन तक पहुँचने के लिए अनेक बार दलदल और हाथी-डूबी घास के बीचों-बीच चलना पड़ा।

कई बार मेरा ध्यान महाभारत युग के असम की ओर चला जाता जब इसे प्राग्ज्योतिष' कहते थे। यहाँ का राजा भगदत्त दस हजार हाथियों सहित अपनी किरात सेना लेकर कौरवों की ओर से पाण्डवों के साथ लड़ने के लिए कुरुक्षेत्र की रणभूमि में पहुँचा था। उस युग के किरात असम के आदिवासी ही रहे होंगे जो आज भी वीरता के लिए प्रसिद्ध हैं। किरातों का उल्लेख तो यजुर्वेद और अथर्ववेद में भी मिलता है। कभी मेरी कल्पना में सातवीं शताब्दी ईस्वी का असम घूम जाता जब यहाँ के सम्राट् भास्कर वर्मा ने नालन्दा विश्वविद्यालय के आचार्य से प्रार्थना करके चीनी यात्री ह्यूएनसांग को आमन्त्रित किया था। कल्पना में ह्यूएनसांग को ब्रह्मपुत्र में स्नान करते देखता। कभी आठवीं शताब्दी के असम का ध्यान आ जाता जब 'राजतरंगिणी' के अनुसार कामरूप' के राजा धुमेश्वर वर्मन की सुपुत्री अमृतप्रभा का विवाह काश्मीर के सम्राट् मेघवाहन से हुआ था। कल्पना में अमृतप्रभा को काश्मीर से चलकर असम में ब्रह्मपुत्र पर दूध-भरा मंगल-घट और नारियल चढ़ाते देखता। कभी सदिया के सुटिया राजवंश का स्मरण हो आता। सुटिया राजाओं ने एक मन्दिर बनवाकर उस में तान्त्रिक धर्मानुसार ताम्रेश्वरी देवी की मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी। असमिया भाषा की एक 'बुरंजी' (हस्तलिखित इतिहास-ग्रन्थ) के अनुसार राजा रत्नध्वज ने राजा भद्र

ब्रह्मपुत्र की गाथा

नाम पहले-पहल बचपन में सुना फिर स्कूल में नक्शे पर देखा। एक पतली-सी रेखा दूसरी रेखाओं के बीच से राह निकालती सागर तक चली गई है यही ब्रह्मपुत्र है।

एक चौथाई शताब्दी पूर्व सन् १९३० में जब मेरी आयु मुश्किल से बाईस वर्ष की थी पहले-पहल असम जाने का अवसर मिला। यह यात्रा लोकगीतों के सम्बन्ध में थी और यह कोई एक वर्ष तक चली।

ब्रह्मपुत्र में बार-बार स्नान किया। ब्रह्मपुत्र में मिलने वाली अनेक नदियाँ देखीं। असम के अनेक बागीचे देखे। एक स्थान पर महीना भर मलेरिया से बीमार पड़ा रहा फिर भी जी उदास न हुआ। परशुराम कुण्ड में स्नान किया। सदिया डिब्रूगढ़ और गौहाटी से ही नहीं, धुबड़ी ग्वालपाड़ा और तेजपुर से भी ब्रह्मपुत्र के दर्शन किये। शिवसागर के समीप दिसांगमुख से ब्रह्मपुत्र की विशाल धारा देखकर सहसा मेरे मुख से निकल गया

"बुढ़ापा यहीं आकर काटा जाय।"

बंगाल के सम्बन्ध में किसी का यह विचार पढ़ा था कि यहाँ आने के लिए तो कई प्रवेश-द्वार हैं पर बाहर जाने के लिए एक भी द्वार नहीं। अब लगा कि असम पर यह बोल और भी पूरा उतरता है। बचपन में सुनी हुई बात कल्पना को प्रेरणा देती कामाख्या कामरूप की परमसुन्दरी बाहर से आने वाले यात्री को भेड़ा बनाकर रख लेती है। पर अब तो असम को जादू-टोने का देश कहना भूल होती।

ब्रह्मपुत्र के बीच में है माजुली का द्वीप। विसोमुख में एक मार्ग दर्शक मिल गया जो मुझे नाव पर माजुली ले गया। वहाँ मैं ने कमला बाड़ी घाट से उत्तर लखीमपुर जाने वाली सत्ताईस मील लम्बी सड़क पर यात्रा की। माजुली में चार प्रमुख वैष्णव सत्र हैं कमलाबाड़ी दक्षिण पाट, आउनियाटी और गढ़ामूर। मैं ने ये चारों सत्र देखे और असम के वैष्णव महापुरुष शंकरदेव और उन के शिष्य माधवदेव की भक्ति-परम्परा का रस ग्रहण किया। माजुली में सौ से ऊपर गाँव होंगे। मैं ने कुछ गाँव भी देखे जिन तक पहुँचने के लिए अनेक बार दलदल और हाथी-घूमी घास के बीचों-बीच चलना पड़ा।

कई बार मेरा ध्यान महाभारत युग के असम की ओर चला जाता जब इसे प्राग्ज्योतिष' कहते थे। यहाँ का राजा भगदत्त दस हज़ार हाथियों सहित अपनी किरात सेना लेकर कौरवों की ओर से पाण्डवों के साथ लड़ने के लिए कुरुक्षेत्र की रणभूमि में पहुँचा था। उस युग के किरात असम के आदिवासी ही रहे होंगे जो आज भी वीरता के लिए प्रसिद्ध हैं। किरातों का उल्लेख तो यजुर्वेद और अथर्ववेद में भी मिलता है। कभी मेरी कल्पना में सातवीं शताब्दी ईस्वी का असम घूम जाता जब यहाँ के सम्राट् भास्कर वर्मा ने नालन्दा विश्वविद्यालय के आचार्य से प्रार्थना करके चीनी यात्री ह्यू एन्त्सांग को आमन्त्रित किया था। कल्पना में ह्यू एन्त्सांग को ब्रह्मपुत्र में स्नान करते देखता। कभी आठवीं शताब्दी के असम का ध्यान आ जाता जब 'राजतरंगिणी' के अनुसार 'कामरूप' के राजा सुमेन्द्र वमन की पुत्री अमृतप्रभा का विवाह काश्मीर के सम्राट् मेघवाहन से हुआ था। कल्पना में अमृतप्रभा को काश्मीर से चलकर असम में ब्रह्मपुत्र पर दूब-भरा मंगल-घट और नारियल चढ़ाते देखता। कभी सदिया के चुटिया राजवंश का स्मरण हो आता। चुटिया राजाओं ने एक मन्दिर बनवाकर उस में तान्त्रिक धर्मानुसार ताम्रेश्वरी देवी की मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी। असमिया भाषा की एक 'बुरंजी' (हस्तलिखित इतिहास-ग्रन्थ) के अनुसार राजा रत्नध्वज ने राजा भद्र

इस की अद्वितीय रूप-माधुरी की प्रतीक है परन्तु संस्कृत में 'लू-हित' का 'लौहित्य' बनाकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई कि इस की धारा रक्ताभ अथवा लालिमामयी है, जैसी कि वह वास्तव में नहीं है। तीमा (उत्तरी बर्मा) में लूहित 'ग्लाउन थू' कहलाती है। सदिया के समीप डि-हांग में इस के संगम से थोड़ा ऊपर, लूहित में दक्षिण दिशा से आकर मिलती है नोआ डिहिंग और उत्तर दिशा से दिबांग और सेसेरी आकर अर्घ्य देती हैं। लूहित और डि-हांग के संगम के पश्चात् असम में ब्रह्मपुत्र की महिमा आरम्भ होती है। आगे पश्चिम दिशा में चलकर इस के उत्तरी किनारे पर सुबनसीरी (स्वर्णश्री) भरेली धनसीरी (धनश्री) बरनदी मनास सोनकोष चरचा और तीस्ता मिलती हैं तो दक्षिण किनारे पर बूढ़ी डिहिंग दिसांग डि-खू झांजी धनसीरी कपिली, और डिब्रीराम के संगम चित्र में रंग भरते हैं।

सदिया से पचास मील पर है परशुराम कुण्ड जहां माघ संक्रान्ति के दिन दूर दूर से यात्री स्नान करने आते हैं। अपनी माता की हत्या के पश्चात् परशुराम को इसी कुण्ड में स्नान करके शान्ति प्राप्त हुई थी। महाभारत युग में इस प्रदेश में कुंडिना राजवंश के पूर्ववर्ती राजाओं की राजधानी थी कृष्ण यहीं से रुक्मिणी को ले गये थे।

डिब गढ़ तक पहुंचते ब्रह्मपुत्र का पाट बीस मील चौड़ा होने लगता है। पहले यहां डिब् नदी मिलती है फिर बूढ़ी सूती सुबनसीरी रंगा नदी दिकरंग बूढ़ी डिहिंग और नई डिहिंग नदियां ब्रह्मपुत्र में मिलती हैं। डफला और मीरी पर्वतों से होकर सुबनसीरी ब्रह्मपुत्र की खेरकटिया धारा में गिरती है यहीं से पश्चिमी खरकटिया को लूहित कहने लगते हैं। पटकोई पर्वत से निकलकर बूढ़ी डिहिंग ब्रह्मपुत्र को अपनाती है यह कोई १२० मील लम्बी है। नामती पर्वत से निकलती है डिब् नदी और नई डिहिंग का जन्मस्थान है सिपी पर्वत। ब्रह्मपुत्र में बादाम की आकृति के द्वीप बनते-मिटते रहते हैं। बहुत-सी धाराएं मूल धारा से बिछुड़ जाती हैं जो कई-कई मील तक एकाकिनी बनी रहने के

पश्चात् फिर मूलधारा में मिल जाती है। इन्हीं में से एक धारा है खीरकटिया सूती जो मूल धारा से विलग हो जाती है और बूढ़ी डिहिंगमुख के सामने की दिशा में बहती है इस में सुबनसीरी की धारा आ मिलती है। यह लूहित नाम धारण करती है, और आगे जाकर बनसीरीमुख के दूसरी ओर मूल धारा में मिल जाती है। ब्रह्मपुत्र की मूलधारा और लूहित के बीच में है माजुली संसार की किसी भी नदी के बीच इतना बड़ा द्वीप नहीं मिलेगा इस का क्षेत्रफल कोई ४८२ वर्ग मील होगा।

ब्रह्मपुत्र की एक और धारा है जो रूपगर्विता मानिनी के सदृश विलग हो जाती है इस का नाम है कलंग। दरंग ज़िला में पश्चिमी किनारे से विश्वनाथ के स्थान पर जहाँ से चीनघाट आठ मील रह जाता है यह धारा बिछुड़ती है, और पश्चिम दिशा में फैले हुए नौगाँव ज़िला के बीच से बहती हुई गौहाटी से ऊपर ही ब्रह्मपुत्र में आ मिलती है।

खीरकटिया लूहित लखीमपुर ज़िला को शिवसागर ज़िला से अलग करती है। दूसरी नदियाँ हैं बूढ़ी डिहिंग दिसांग दिखू नामदांग झांजी भोगदोई, काकोडोंगा और बनसीरी इन की मुक्ति ब्रह्मपुत्र में मिलकर होती है। काकोडोंगा और भोगदोई मिलकर मेला जिस का रूप धारण करती हैं और यह मिली-जुली धारा ब्रह्मपुत्र में समा जाती है। बनसीरी बामा पर्वत से चलती है, और एक सौ मील की यात्रा के पश्चात् ब्रह्मपुत्र में मिलती है मानो नागा संस्कृति असमिया संस्कृति से गले मिल रही हो।

ब्रह्मपुत्र क दायें किनारे बसा हुआ तेजपुर कभी सहस्रबाहु बाणासुर की राजधानी था। इस का प्राचीन नाम है शोणितपुर। 'शोणित' को असमिया भाषा में 'तेज' कहते हैं। तेजपुर के समीप है अग्निगढ़ पर्वत जहाँ कभी बाणासुर की परम सुन्दरी पुत्री उषा का प्रासाद था। उषा-अनिरुद्ध की प्रेम-गाथा तो ब्रह्मपुत्र को भी अवश्य स्मरण होगी। अग्निगढ़ के अतिरिक्त अन्य पर्वतों के नाम भी असमिया संस्कृति के सौन्दर्य और

ऊर्ध्वमुख वैविध्य का प्रतीक है। अनुखना धीमरी बाइरखी भैरवी धोमोगपुरी बरपद धामधरा और धिमरी ये हैं इन पर्वतों के नाम।

उत्तर के पर्वतों से निकलने वाली नदियाँ हैं सूबिया अथवा बारोई बुरोई बरगांव बूढ़ी गोम धीमाधारी और दिक़राई, सभी यह होड़ लगाकर चलती हैं कि कौन पहले ब्रह्मपुत्र के गले में जयमाला डाले। धका पर्वत से चलती है भरली और पचनोई का जन्मस्थान है टोवांग पर्वत। उधर बेलसीरी भी टोवांग पर्वत से ही चलती है। भरली पंचनोई और बेलसीरी तीनों ब्रह्मपुत्र के साथ अपना-अपना चौपड़ बांध लेती हैं। दरंग जिला की उत्तरी सीमा से आती है बर नदी यह जिला की पश्चिमी सीमा है और गौहाटी को दरंग से पृथक करती उत्तर दिशा से ही आती है नपनदोई। बर नदी और नंपनदोई ब्रह्मपुत्र में समा जाने में ही सौभाग्य मानती हैं।

कामरूप जिला ब्रह्मपुत्र के दोनों ओर फैला हुआ है। ब्रह्मपुत्र बायें किनारे गौहाटी है इस का मुख्य स्थान। यहाँ ब्रह्मपुत्र की चौड़ाई कम हो गई है। चट्टानें और पर्वत ब्रह्मपुत्र के भीतर तक चले गये हैं जाड़े के दिनों में पानी कम हो जाने पर बहुत-सी चट्टानें धारा के बीच से दिखाई देने लगती हैं। दक्षिण दिशा में फैली हुई खासिया पर्वत शृंखला के अतिरिक्त यहाँ-वहाँ कुछ अन्य लघु-आकार टीले और पर्वत भी हैं जिन के नाम असमिया संस्कृति की परम्परा को मर्यादित करते हैं—नीलाचल जिस पर गौहाटी में कामाख्या देवी का मन्दिर प्रतिष्ठित है भरणीया नवग्रह भुवनेश्वरी मणिकर्णेश्वर और अश्वक्लान्ता आदि। खासिया पर्वत शृंखला से चलती हैं डिपारु भरलू कलाही और खिरा। ये चारों बहनें ब्रह्मपुत्र से गले मिलती हैं। ऐसा लगता है मानो खासी आदिवासियों की संस्कृति असमिया संस्कृति का अभि- दे रही हो। उत्तर दिशा से आती है मानाह पागलादिया पुठीमारी और बर नदी। ये तीनों बहनें भी ब्रह्मपुत्र के चरण छूती हैं। मानाह नदी भूटान पर्वत के पूर्वी भाग से निकलती है और गुवालपाड़ा जिला

की सीमा बनाती है। उधर बर नदी कामरूप और दरंग के बीच रेखा खींच देती है।

ब्रह्मपुत्र के बायें किनारे पर है गुवालपाड़ा, जहाँ बाढ़ के दिनों में जल का निकास प्रति सैकिंड पाँच लाख घन फुट की गति से होता है। गुवालपाड़ा ज़िले के दक्षिणी भाग में गारो पर्वत की शाखाएँ फैल गई हैं जिन में से कुछ ब्रह्मपुत्र के साथ-साथ चली गई हैं। इन के नाम भी उतने ही सुन्दर हैं जितनी मोहक है इन की रूप-माधुरी दुधेश्वरी श्रीसूर्य, राजसिली जोगीघोपा भैरव और जोकुमारी ये हैं कुछ नाम। चम्पावती और सरलभंगा भूटान पर्वत से आने वाली बहनें हैं इन्हें भी ब्रह्मपुत्र में मिलकर ही शान्ति मिलती है। हेलम गंगा और न जाने किस-किस नदी के मिलने से बनती है दिपकाई नाचती इठलाती यह भी चपरीबारी के समीप मिलन का मंगल-गान गाती ब्रह्मपुत्र के गले लग जाती है। उधर सोनकोष भूटान पर्वत से आकर ब्रह्मपुत्र में मिलती है मानो भूटान की आत्मा ब्रह्मपुत्र में स्नान कर रही हो। गारो पर्वत से चलती हैं चार बहनें—जिंजीराम जिनारी कृष्ण नदी और कृष्णा ये भी बारी-बारी ब्रह्मपुत्र की आरती उतारती हैं मानो गारो संस्कृति का मंगल-गान गूँज उठा हो।

ब्रह्मपुत्र के दायें किनारे बसी है धुबड़ी। किनारे के साथ-साथ पर्वत चले गये हैं इन की सीमा ब्रह्मपुत्र पर छत्र झुलाती है।

ब्रह्मपुत्र के किनारे बनते-बिगड़ते रहते हैं पर विश्वनाथ शीलघाट तेजपुर, सिंगरी पर्वत गौहाटी हाथीमूड़ा गुवालपाड़ा और धुबड़ी ऐसे स्थान हैं जहाँ चट्टानें और पर्वत अचल अडिग खड़े हैं।

लगभग आठ सौ मील तक अर्थात् मानसरोवर से लेकर पूर्व में प्या मा-छिम्बोछ तक ब्रह्मपुत्र की खोज की जा चुकी है। यहाँ से असम की सीमा डेढ़ सौ मील रह जाती है। यह डेढ़ सौ मील का मार्ग इतना दुर्गम है कि निरन्तर धारा के साथ-साथ चलना सहज नहीं इस की पूरी खोज-खबर नहीं ली जा सकी।

तिब्बत में सान-पो की धारा इतनी वेगवती है कि नाव प्रवाह के विपरीत नहीं चलती। लकड़ी की नहीं चमड़े की नाव चलती है जो तिब्बती भाषा में 'क्वा' कहलाती है। यह भय लगा रहता है कि नाव का पेंदा पाषाणों से न टकरा जाय। याक का चमड़ा पाषाणों से टकरा कर भी फटता नहीं। तिब्बत का धरातल इतना ऊँचा है कि यहाँ धान नहीं उग सकता। मानो सान-पो यही सोचकर आगे बढ़ता है कि यह ऐसे पठार को जन्म देगा जहाँ धान-ही-धान लहलहायेगा जहाँ जल की धारा में 'क्वा' के स्थान पर लकड़ी की नाव चलेगी—प्रवाह के साथ और प्रवाह के विपरीत भी। असमिया नावरिया को तिब्बती मांझी के समान एक साथ दो-दो संकट नहीं है कि कभी तो लकड़ी के ढाँचे पर याक के चमड़े के टुकड़े कसकर नाव को पानी में ठेल दे और कभी लकड़ी का ढाँचा और चमड़े के टुकड़े अलग करके इन्हें गधे पर अथवा अपने सिर पर लादकर पैदल ऊपर की ओर बहुत दूर, पहुँचे और किसी घाट पर फिर से नाव तैयार करके नीचे की ओर से चले। आसम की सीमा पार करते ही जब सान-पो नाम बदलकर दिहांग बनता है, तो लगता है मानो कोई महाराजाधिराज एक महान् विजेता के रूप में चले आ रहे हैं और मानो दोनों किनारों पर खड़े होकर लोग उन का स्वागत कर रहे हैं और सोच रहे हैं—यह कहाँ के महाराज हैं? इन का राजवंश कहाँ आरम्भ हुआ? इन की राजधानी कहाँ है? किस बात पर रीझते हैं? कौनसी बात इन्हें अभी नहीं जंचती?

पहले यह धारणा थी कि तिब्बत का सान-पो ही बर्मा की इरावती का रूप धरता है, पर सन् १८८२ तक की खोज से यह निष्कर्ष निकला कि आसम उपत्यका में सदिया के उत्तर में तो सान-पो की धारा की कल्पना भी नहीं की जा सकती। फिर यह कहा जाने लगा कि ल्हासा से आगे बहने वाली नदी वह नहीं जो परशुराम कुण्ड के पश्चिम में सदिया तक बहती है। नीदम महोदय ने पता लगाया कि रीमा के समीप बहने वाली और सदिया से आगे बहने वाली एक ही नदी है। सन् १८८१ ८६

में वे सदिया से ऊपर की दिशा में ब्रह्मपुत्र की खोज करते रीमा के उत्तर में रीमा नामक गाँव तक जा पहुँचे थे। इस से अगले वर्ष इसी प्रदेश का एक पर्यटक ग्या-ला-सिन्धाङ् के दक्षिण में यात्रा करता एक स्थान पर पहुँचा जहाँ से सीरी पदम आठ मील है। सीरी पदम से असम का सीमान्त तेंतालीस मील होगा। इस पर्यटक ने नीधम महोदय की स्थापना का समर्थन किया।

ब्रह्मपुत्र उपत्यका में दक्षिण-पश्चिम दिशा में साढ़े चार सौ मील की यात्रा के पश्चात् ब्रह्मपुत्र दक्षिणमुखी होकर गारो पर्वत का अंचल छूने के लिए नामामिड़ हो जाता है और रंगपुर जिला में २५ ४० उत्तर और ८९ ४१ पूर्व प्रवेश करता है। असम का अंचल छोड़ने के पश्चात् इस के बायें किनारे मिलने वाली नदियों में मुख्य हैं धरला और तीस्ता रंगपुर जिले में चिलमारी के दक्षिण-पश्चिम में कुछ मीलों की दूरी पर है तीस्ता का संगम। ब्रह्मपुत्र की दक्षिणमुखी धारा जमुना कहलाती है एक सौ अड़तालीस मील तक इस की यात्रा चलती है। गोआलन्दो के स्थान पर २३ ५१ उत्तर और ८९ ४५ पूर्व जमुना अपनी भाषा-भागीरथी पद्मा (गंगा की मूल धारा) को छीन लेती है। यह सम्मिलित धारा पद्मा के रूप में अग्रसर होती हुई चाँदपुर के दूसरी ओर २३ १३ उत्तर और ९० ३३ पूर्व मेघना में जा मिलती है। किसी समय ब्रह्मपुत्र की मूल धारा मैमनसिंह जिला के बीचों-बीच दक्षिण-पूर्व दिशा में बहती थी फिर मेघना में जा मिलती थी। सन् १७८५ में रैनेल के सर्वे के नक्शे पर इस का यही मार्ग दिखलाया गया था पर उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इस का पाट ऊँचा उठता गया वेग जाता रहा यह अपनी धारा को मेघना में समाहित होने से न बचा सका साथ ही इस की दूसरी धारा पश्चिम में गोआलन्दो के समीप ओर दिखाकर पद्मा में मिलने पर बाध्य हुई। इस के पुराने पाट का नाम जम रहा है यद्यपि उस में माटी-बालू भरता गया सन् १८९७ के भूकम्प ने इस प्रक्रिया को वेगवती बनाया।

ब्रह्मपुत्र का समूचा तिब्बती भाग अनेक संग्रथित धाराओं का विश्लेषण है। इन में बहुत-सी धाराएँ शीतकाल में सूख जाती हैं; वर्षाकाल में फिर इन का जल चतुर्दिक फैल जाता है। विशाल जलधारा में अनेक द्वीप बन जाते हैं प्रतिवर्ष गिरे रेत के टीले नाम होते हैं, जिन्हें बदले वर्ष का वर्षाकालीन प्रवाह बहा ले जाता है। पद्मा और मेघना की सम्मिलित धारा मेघना के नाम से ही सागर की ओर चलती है।

सागर से डिब्रूगढ़ तक आठ सौ मील की यात्रा स्टीमर से की जा सकती है। गोआलन्दो से चलकर स्टीमर साढ़े चार दिन में डिब्रूगढ़ पहुँच जाता है लौटते समय तीन दिन से अधिक नहीं लगते। ऊपर की दिशा में जाते समय बायें किनारे सिराजगंज, धुबड़ी तेजपुर और विश्वनाथ के प्रसिद्ध घाट हैं बायें किनारे हैं ग्वालपाड़ा गोहाटी, नीलघाट और डिब्रूगढ़। इन के अतिरिक्त अन्य अठारह घाटों पर भी स्टीमर रुकता है गोला घाट के लिए सिकारी घाट पर, जोरहाट के लिए काकिलामुख घाट पर और शिवसागर के लिए दिसांगमुख घाट पर उतरना पड़ता है।

प्रिन्सिपल आत्माभिराम बरुआ ने एक अनुभवी ज्योतिषी के समान असम के बड़े नक्शे पर मेरी अंगुली टिकाकर ब्रह्मपुत्र की जलकुण्डली से मेरा परिचय कराया और समझाया कि ब्रह्मपुत्र—मानसरोवर से चलकर पूर्व पश्चिम उत्तर, दक्षिण सभी दिशाओं में बहुधा—मूलक रचना का विश्लेषण है।

ब्रह्मपुत्र की भाषा मेरे मन के कलाभवन में लोक-कथा की सौ वर्ष तक सोने वाली राजकुमारी के समान सोती रही।

सन् १९५० में असम को भयंकर भूकम्प और ब्रह्मपुत्र के दुर्निवार जलप्लावन का सामना करना पड़ा। यह स्वाभाविक था कि मैं असम की वेदना से व्यथित हो उठता। ब्रह्मपुत्र की भाषा लोक-कथा की राज

कमारी के समान जाग उठी।

दिसम्बर १९७४ में दोबारा असम गया तो अपने पुराने मित्र ब्रह्मपुत्र को मैं ने अपने सामने पाया। उस के मोड़ उस के घुमाव उस के तेवर—सब मेरे जाने-पहचाने थे। भूकम्प और बाढ़-प्लावन के कारण असम के चेहरे पर खरोंचें आ गई थीं नदियों के रास्ते बहुत-कुछ बदल गये थे। परशुराम कुण्ड का पहला रूप नष्ट भ्रष्ट हो गया था वहाँ फिर से वन की व्यवस्था की गई थी।

डिब्रूगढ़ में ब्रह्मपुत्र के किनारे खड़े होकर पुराने वयोवृद्ध मार्गदर्शक का स्मरण हो आया। इस बार मेरे साथ एक युवक मार्गदर्शक था और मैं अब एक चौथाई शताब्दी पूर्व का युवक नहीं रह गया था मेरी आयु के पुल के नीचे से समय की गर्मी-सर्दी में ने देख ली थी पच्चीस वर्ष उस पार चले गये थे। दाढ़ी और सिर के बाल पक रहे थे। अब मेरे मन में स्थिरता आ गई थी।

इस बार भी मामूनी की यात्रा की गई। यह भी पता चला कि डिब्रूगढ़ वाले मामूनी वालों को पिछड़ा हुआ समझते हैं और डिब्रूगढ़ की भाषा में मामूनी 'मूर्ख भूमि' बन गई है। पर मैं ने मामूनी में बड़ी जागृति देखी। इस पर तो मैं तनिक भी सज्जित न था कि ब्रह्मपुत्र की भाषा समझने में इतने वर्ष लगे। आखिर ब्रह्मपुत्र को भी तो इस विशाल पत्थर को नम्र होने देने सहस्रों वर्ष लगे थे। फिर भी मुझे यह स्वीकार करना पड़ा कि पिछली यात्रा में मैं एक बालक ही था। यह अनुभूति जहाँ मुझे मेरी ही दृष्टि में छोटा बना रही थी वहाँ एक सन्तोष का कारण भी बन रही थी क्योंकि मन और बुद्धि के अवरुद्ध कपाट खुल गये थे।

गौहाटी में डॉ सूर्यकुमार भूइयाँ का आतिथ्य मिला असमिया साहित्य और इतिहास के नये संकेत प्राप्त हुए। असमिया भाषा के आचार्य डॉ॰ विरिंचिकुमार बरुआ असमिया लोक-साहित्य के अन्वेषक प्रफुल्लदत्त गोस्वामी और महेश्वर नियोग से उपन्यास की कथावस्तु

ब्रह्मपुत्र का समूचा निचला भाग अनेक संबंधित धाराओं का चित्रपट है। इन में बहुत-सी धाराएँ शीतकाल में सूख जाती हैं; वर्षाकाल में फिर इन का जल चतुर्दिक फैल जाता है। विशाल जलधारा में अनेक द्वीप बन जाते हैं अधिकांश निरे रेत के टीले मात्र होते हैं, जिन्हें अगले वर्ष का वर्षाकालीन प्रवाह बहा ले जाता है। पद्मा और मेघना की सम्मिलित धारा मेघना के नाम से ही सागर की ओर चलती है।

सागर से डिब्रूगढ़ तक आठ सौ मील की यात्रा स्टीमर से की जा सकती है। गोवालन्दो से चलकर स्टीमर साढ़े चार दिन में डिब्रूगढ़ पहुँच जाता है लौटते समय तीन दिन से अधिक नहीं लगते। ऊपर की दिशा में जाते समय बायें किनारे सिराजगंज, धुबड़ी तेजपुर और विश्वनाथ के प्रसिद्ध घाट हैं दायें किनारे हैं गुवालपाड़ा गोहाटी, नीमा घाट और डिब्रूगढ़। इन के अतिरिक्त अन्य अठारह घाटों पर भी स्टीमर रुकता है मौता घाट के लिए सिकारी घाट पर, जोरहाट के लिए काकिलामुख घाट पर और शिवसागर के लिए दिसांगमुख घाट पर उतरना पड़ता है।

प्रिन्सिपल आत्माभिराम बरूआ ने एक अनुभवी ज्योतिषी के समान असम के बड़े नक्शे पर मेरी अंगुली टिकाकर ब्रह्मपुत्र की जन्मकुण्डली से मेरा परिचय कराया और समझाया कि ब्रह्मपुत्र—मानसरोवर से चलकर पूर्व पश्चिम उत्तर, दक्षिण सभी दिशाओं में बहता—नूतन रचना का चित्रपट है।

ब्रह्मपुत्र की माया मेरे मन के कथाभवन में लोक-कथा की सी वर्ष तक सोने वाली राजकुमारी के समान सोती रही।

सन् १९५ में असम को भयंकर भूकम्प और ब्रह्मपुत्र के दुर्निवार जलप्लावन का सामना करना पड़ा। यह स्वाभाविक था कि मैं असम की वेदना से व्यथित हो उठता। ब्रह्मपुत्र की माया लोक-कथा की राज

ारी के समान जाग उठी।

दिसम्बर १९५४ में दोबारा असम गया तो अपने पुराने मित्र ह्मपुत्र को मैं ने अपने सामने पाया। उस के मोड़ उस के घुमाव उस के बर—सब मेरे जाने-पहचाने थे। भूकम्प और जल-प्लावन के कारण असम के चेहरे पर खरोंचें आ गई थीं नदियों के रास्ते बहुत-कुछ बदल गये थे। परशुराम कुण्ड का पहला रूप नष्ट भ्रष्ट हो गया था वहाँ फिर से जल की व्यवस्था की गई थी।

दिसांगमुख में ब्रह्मपुत्र के किनारे खड़े होकर पुराने वयोवृद्ध मार्गदर्शक का स्मरण हो आया। इस बार मेरे साथ एक युवक मार्गदर्शक था और मैं अब एक चौथाई शताब्दी पूर्व का युवक नहीं रह गया था समय की गर्मी-सर्दी मैं ने देख ली थी मेरी आयु के पुल के नीचे से पच्चीस वर्ष उस पार चले गये थे। दाढ़ी और सिर के बाल पक रहे थे। अब मेरे मन में स्थिरता आ गई थी।

इस बार भी माजुली की यात्रा की गई। यह भी पता चला कि दिसांगमुख वाले माजुली वालों को पिछड़ा हुआ समझते हैं और दिसांगमुख की भाषा में माजुली 'मूर्ख भूमि' बन गई है। पर मैं ने माजुली में बड़ी जागृति देखी। इस पर तो मैं तनिक भी लज्जित न था कि ब्रह्मपुत्र की भाषा समझने में इतने वर्ष लगे। आखिर ब्रह्मपुत्र को भी तो इस विशाल पठार को जन्म देते सहस्रों वर्ष लगे थे। फिर भी मुझे यह स्वीकार करना पड़ा कि पिछली यात्रा में मैं एक बालक ही था। यह अनुभूति जहाँ मुझे मेरी ही दृष्टि में छोटा बना रही थी वहाँ एक सन्तोष का कारण भी बन रही थी क्योंकि मन और बुद्धि के अवरुद्ध कपाट खुल गये थे।

गौहाटी में डॉ. सूर्यकुमार भूयाँ का आतिथ्य मिला असमिया साहित्य और इतिहास के नये संकेत प्राप्त हुए। असमिया भाषा के आचार्य डॉ. बिरिंचिकुमार बरुआ असमिया लोक-साहित्य के अन्वेषक प्रफुल्लदत्त गोस्वामी और महेश्वर नियोग से उपन्यास की कथावस्तु

और उस के मूर्धन्य अभिप्राय पर सोच-विचार हुआ।

फिर एक दिन गौहाटी में प्रिन्सिपल ज्ञानाभिराम बरुआ के यहाँ पहुँचा। वे बहुत कमजोर पड़ गये थे मैं भी अब पहला युवक न था। फिर भी उन्हों ने मुझे पहचान लिया। अब वे बहुत कम घर से निकलते थे चलना-फिरना कठिन था। हाथ में पुस्तक लिये बैठे थे। असम में नये रंग उभर रहे थे पर असम का यह अवकाश-प्राप्त वयो-वृद्ध तपस्वी एकाकी रहना पसन्द करता था। नहीं तो उन की आयु का तकाजा था। लगता था वे इस समय भी कुछ कम कर्मठ नहीं। उन की दृष्टि पीछे की ओर नहीं आगे की ओर थी। बोले "अब तक तो पता चल गया होगा कि ब्रह्मपुत्र नूतन रचना का चित्रपट है?"

इस का उत्तर मैं ने एक मुस्कान से दिया। ब्रह्मपुत्र पर उपन्यास लिखने का विचार बताया तो मानो मेरी बात उन्हें झकझोर गई। बोले "ब्रह्मपुत्र सदैव नई रचना करता आया है।"

उन के साथ बहुत बातें हुईं। ब्रह्मपुत्र की सहायक नदियों की बातें जो दोनों ओर से आकर मिलती हैं जो नदियाँ सीधी ब्रह्मपुत्र तक पहुँचने की क्षमता नहीं रखतीं वे किसी दूसरी नदी में मिलकर ब्रह्मपुत्र तक पहुँचकर दम लेती हैं। असम के पर्वतों की बातें। उन के नाम उन आदिवासी जातियों पर पड़े हैं जो वहाँ बसी हुई हैं। अपने अपने जन्मस्थान से होती हुई प्रत्येक छोटी-बड़ी नदी मानो अपने प्रदेश की बोली ब्रह्मपुत्र तक पहुँचाती है ये बोलियाँ मिलकर ब्रह्मपुत्र की भाषा का निर्माण करती हैं। असम के आदिवासियों की बातें। ब्रह्मपुत्र के दक्षिण में सिंगफो नागा खासी जयन्तिया लुशाई गारो कछारी और मिकिर बसे हुये हैं इन की संख्या ग्यारह लाख है। असम के आदिवासियों में किये जा रहे ईसाई मिशनरियों के कार्य की बातें। अंग्रेज़ी सरकार ने असम के आदिवासियों को अलग-अलग रहने की नीति पर चलाया। ईसाई मिशनरियों को उन में काम करने की छूट दी। अंग्रेज़ी-काल में ईसाई मिशनरी आये जैसे भास्कर वर्मा के युग में मगध से ब्राह्मण आये

होंने ह्यू एन्त्सांग को इसी लिए तो कहना पड़ा था कि असम की भाषा मगध की भाषा से मिलती-जुलती है। ईसाई मिशनरियों ने काले-मन वाले आदिवासियों की प्रगति में हाथ बटाया है। आदिवासियों को साथ लिये बिना हमारी प्रगति भी व्यर्थ है। असमिया भाषा के सम्बन्ध में बहुत बातें हुईं। जैसे यह भाषा असम में अन्य भाषा-भाषियों की अपेक्षा अल्प संख्यक लोगों की भाषा है पर यह किसी-न-किसी रूप में उन लोगों के उपयोग में भी आती है जिन की यह मातृभाषा नहीं है। नागा लोग छ-सात उपजातियों में बँटे हुये हैं। एक उपजाति दूसरी उपजाति की बोली नहीं समझती आपस में बात करते समय उन्हें असमिया से काम चलाना पड़ता है। बहुत-सी पड़ोसी आदिवासी जातियाँ आपस में अन्तर्जातीय कार्यों के लिए असमिया माध्यम का प्रयोग करती हैं भले ही उन की असमिया कितनी भी विकृत क्यों न हो।

प्रिंसिपल ज्ञानाभिराम बरुआ बोले "सारा काम आयु के साथ आता है। जाने किधर-किधर से कौन-कौन-सी नदी आकर मिलती है फिर जाकर इस ब्रह्मपुत्र में इतनी क्षमता आती है कि सागर तक लम्बी यात्रा कर सके। ज्ञान आये न आये टिकट तो कटाना ही पड़ता है। जाते समय तभी सन्तोष होता है जब कुछ करा-धरा हो।"

"आशीर्वाद दीजिए!" मैं ने उन के चरण छू लिये।

"आशीर्वाद माँगना निर्बलों का काम है!" वे बोले "यहाँ ह्यू एन्त्सांग भी आया था। उस ने तो किसी से आशीर्वाद नहीं माँगा था। उस ने जो लिखा आज तक जीवित है। अपने यात्रा-विवरण में ह्यू एन्त्सांग आज भी बोलता है। मरो या जीयो एक रास्ता चुन लो!"

असम के पश्चात् पूर्वी पाकिस्तान जाने का कार्यक्रम बनाया।

गोवालन्दो में रेल से उतरकर स्टीमर पर सवार हुआ तो रात का समय था। अगले दिन ऊपर की छत से उषा का दृश्य देखा सूरज उगने का फोटो लिया। इस विशाल जलमार्ग पर यह देखना तो कठिन था

कि पद्मा में कौन-कौन-सी नदी मिल रही है। जमुना और पद्मा का संगम तो रात्रि के अन्धकार में पीछे छूट गया था। साथ वाला मांझी कहे जा रहा था आमे आषिबे मेघना। आमावेर मेघना होलो एकेबारे मेघेर रंगेर मतन! [आये आयेगी मेघना हमारी मेघना है एकदम मेघ के रंग के समान।]

स्टीमर की ऊपर की छत से हम फिर नीचे आ बैठे। साथ वाली सीट पर हासीबानो ने आँखें खोलीं। उसे साथ वाले यात्री से जो उस का बड़ा भाई था यह शिकायत थी कि सूरज छपने से पहले ही उसे क्यों नहीं जगा दिया था। हासीबानो के भाई ने हासीबानो का परिचय एक गायिका के रूप में दिया। वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। बड़ी मुश्किल से उसे एक बंगला गीत गाने के लिए तैयार किया जा सका। उस की आवाज बहुत सुरीली थी। उस के गीत की टेक थी—

एई नयने तोरे न देखीले,
शुधु मुखेर कथाय प्राण जुड़े ना!

[इन नयनों से तुझे देखे बिना खाली मुख की कथा से ही प्राणों को तृप्ति नहीं होती!]

ऐसा लगता था मानो सब भेद मिट गये धर्म के भेद, आयु के भेद, बुद्धि के भेद पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के भेद।

ढाका में एम० मन्सूरुद्दीन से भेंट हुई, तो वे खुशी से उछल पड़े। उन्होंने मुझे अपने यहाँ ठहराया। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उन के बंगला लोकगीत-संकलन 'हारामणि' की भूमिका लिखी थी तभी से हमारी मित्रता चली आती थी। पूर्वी पाकिस्तान के प्रसिद्ध बंगला कवि जसीमुद्दीन जिन से सर्वप्रथम कलकत्ता में भेंट हुई थी ढाका से बाहर दौरे पर थे। बंगला कवि गुलाम मुस्तफ़ा ने अपने घर पर एक रात संगीत-गोष्ठी का प्रबन्ध किया। अब्बासुद्दीन अहमद तबले पर संगत कर रहे थे उन की साहबजादी भाटियाली गा रही थी जिसे पूर्वी बंगाल के मांझी टिकी हुई रात में नदी के प्रवाह के साथ जाते समय गाते हैं। हम सभी

झूम उठे एम० अम्मुरुद्दाम गुलाम मुस्तफा गवर्नमेन्ट इन्स्टीट्यूट फार आर्ट्स ढाका के प्रिंसिपल बैनुलाबदीन तबले पर संगत करने वाले अब्बासुद्दीन अहमद और अन्य मित्र जिन्हें विशेष रूप से आमन्त्रित किया गया था। कोकिल-कण्ठी गायिका जब अपने स्वर को आवश्यकतानुसार विस्तार प्रदान करते हुए किसी नौका के समान ही आगे ले चलती तो हमारी आँखें कल्पना में किसी पद्मा या मेघना के साथ-साथ तैरने लगतीं। फिर जब अब्बासुद्दीन अहमद ने अपनी सधी हुई आवाज में भाटियाली प्रस्तुत की तो गोष्ठी का रंग और भी जम गया।

"मुझे बीस वर्ष से ऊपर हो गये भाटियाली गाते।" अब्बासुद्दीन अहमद ने बताया "लगता है अभी तक 'सूर' (सुर) नहीं मिला। दो चीज देकर भगवान् है नूर और 'सूर'। सारे संसार में नूर भरा है पर 'सूर' मेरे को अभी तक नहीं मिला। 'सूर' के लिए भटक रहा हूँ।

इस संगीत-गोष्ठी में मेरे मन की जिज्ञासा को राह मिली। यहाँ तो सभी को किसी-न-किसी महापुरुष ने पागल बना रखा था। जमुना पद्मा मेघना और बूढ़ी गंगा की लहरें इस संगीत-गोष्ठी को छू रही थीं। मेरी जिज्ञासा-धारा प्रवहमान सरिता बनकर चल पड़ी।

ढाका से लौटते समय फिर विशाल जलमार्ग पर सूर्यास्त का दृश्य देखा।

पास बैठे यात्री ने कहा "जे सूर्ज अस्त हुये छे सेई सूर्ज उदय हुये छ।" [जो सूर्य अस्त होता है वही सूर्य उदय होता है।]

मैं ने सोचा कि सत्य भी सूर्य के समान है यह नित-नूतन है साहित्य में भी यही सूर्य उगना चाहिए।

कलकत्ता में बंगला साहित्यकार महादेव साहा से भेंट होने पर इस उपन्यास की चर्चा चली तो वे बोले "यह उपन्यास तो बंगला में लिखा जाना चाहिए।"

मैं ने विनयपूर्वक कहा "हिन्दी भाषा अवश्य रास्ता देगी।"

फिर बंगला उपन्यास 'पद्मानदीर माँझी' (पद्मा नदी का माँझी)

के लेखक माणिक बन्द्योपाध्याय से भेंट हुई तो वे बोले "आमी पद्मा नदी के हातेर मूठोर भीतरे आनते चेष्टा करिलाम किन्तु ए नदी ऐत चंचल, जे आमी किछुई करिते पारिलाम ना। आपनीओ ब्रह्मपुत्र हातेर मूठोर भीतरे आनते चेष्टा करिते पारेन यदि पारेन।" [मैं पद्मा नदी को मुट्ठी में लाने की चेष्टा की किन्तु यह नदी तो इतन चंचल है कि मैं कुछ भी नहीं कर सका। आप ही ब्रह्मपुत्र को मुट्ठी लाने की चेष्टा कर देखें यदि कर सकें।]

प्रिन्सिपल कॅमुलाबदीन ने कुई वर्ष से तैयार किया हुआ ब्रह्मपु के मांझी का एक स्केच प्रदान किया था जिस ने अब इस उपन्यास मुखचित्र के रूप में मानो इस के माथे पर तिलक लगा दिया।

जब यह उपन्यास लिखा जा रहा था, तो दिल्ली में एक असमिय मित्र को इस के कुछ अंश पढ़कर सुनाये। वे बोले "इस का रस त असमिया में ही आ सकता है।"

मेरे मन में यह प्रश्न उठा "तो क्या इसे ऐसी भाषा में नई लिखा जाना चाहिए था, जिस के माध्यम से सारा देश हमारी जन्म भूमि के इस महान् वरदान से परिचित हो सके ?" हिन्दी में तो क्य बंगला क्या असमिया हमें सभी भाषाओं का मुहावरा लाना चाहिए जन की सुगंध उन की ओज उन का रस इस में वैसा-का-वैसा आ की आवश्यकता है।

दोबारा असम जाने से पूर्व सुप्रसिद्ध गुजराती साहित्यकार काक कालेलकर का आशीर्वाद प्राप्त कर चुका था। काका साहेब को मेर यह विचार प्रिय लगा कि ब्रह्मपुत्र की प्रतिमा एक उपन्यास के रू में प्रतिष्ठित की जाय। अपनी सुविख्यात रचना 'लोकमाता' में काक साहेब ने भारत की सभी नदियों के शब्द-चित्र अंकित किये हैं।

"जब 'लोकमाता' लिखी गई, तो मैं अभी असम-यात्रा पर नहीं जा सका था। इसलिए उस में ब्रह्मपुत्र का शब्द-चित्र छूट गया।" कहते कहते काका साहेब रुक गये।

इस उपन्यास का आमुख लिखकर काका साहब ने मुझे अपना लिया है। 'लोकमाता' लिखकर जिन्होंने अनेक नदियों के प्रति प्रेम प्रकट किया उन का आशीर्वाद तो 'ब्रह्मपुत्र' को मिलना ही चाहिए था।

अब 'ब्रह्मपुत्र' आप के सामने है। पढ़िये और देखिये कि ब्रह्मपुत्र की भाषा जो लोक-भाषा की राजकुमारी के समान न जाने कब से पड़ी सो रही थी अब जाग उठी है या नहीं।

'कल्पना'
५ सी/४६, रोहतक रोड, नई दिल्ली
२१ नवम्बर १९५५

देवेन्द्र सत्यार्थी

ब्रह्मपुत्र

ब्रह्मपुत्र जानता है कि पप्पू
कितना गहरा जाता है।

—असमिया लोकोक्ति

ब्रह्मपुत्र महाभाग शान्तनुकुलनन्दन ।
अमोघगर्भसम्भूत पापं लौहित्य मे हर ॥

—ब्रह्मपुत्र का स्नान-मन्त्र

[हे ब्रह्मपुत्र ! हे महाभाग ! हे शान्तनु कुलनन्दन ! हे अमोघ गर्भ से जन्मे ! हे लौहित्य ! मेरे पाप हरो ।]

ब्रह्मपुत्र कासो है बरहमथुरी थुपी
खामी बग लोरा थाई
अनूथाई नीनीबा, ब्रह्मपुत्र देवता,
तामोल ही मनोता नाई ।

—मसुमिका [illegible]

[ब्रह्मपुत्र के किनारे है बरहमथुरी गाँव जहाँ हम ईंधन लाने जाते हैं । इसे शीश नवा लेना, ब्रह्मपुत्र देवता ! हम में इतनी भी क्षमता नहीं कि हरी सुपारी से ही तुम्हारा अर्चन करें ।]

ब्रह्मपुत्र महाभाग शान्तनुकुलनन्दन।
अमोघगर्भसम्भूत पापं लौहित्य मे हर॥

—ब्रह्मपुत्र का स्नान-मन्त्र

[हे ब्रह्मपुत्र! हे महाभाग! हे शान्तनु-कुलनन्दन! हे अमोघ गर्भ से जन्मे! हे लौहित्य! मेरे पाप हरो।]

ब्रह्मपुत्र कानी से बरहमपूरी थूपी
मामी बरा सोरा बाई
म्रूवाई सीनीवा ब्रह्मपुत्र देवता
तामोल थी मनोता बाई।

—मलनिया लोकगीत

[ब्रह्मपुत्र के किनारे है बरहमपूरी गाछ, वहाँ हम ईंधन लाने जाते हैं। इसे छीन मत लेना, ब्रह्मपुत्र देवता! हम में इतनी भी क्षमता नहीं कि हरी सुपारी से ही तुम्हारा स्वागत करें।]

एक



बहुत पहले की बात है जब संसार की रचना हो रही थी। देवताओं ने देखा कि चाँद है, सूरज है और चाँद-सूरज की जोड़ी के साथ अनगिनत तारे हैं। फिर देवताओं ने धरती को रूप दिया, धरती पर पर्वत बनाये, बड़े-बड़े पेड़ उगाये। पेड़ों पर फूल खिले, फल लगे। देवताओं ने पशु बनाये, पंछी बनाये। किसी वस्तु की कमी फिर भी खटकती ही रही। और यही सोचकर देवताओं ने आदमी की रचना की।

जब आदमी के रूप में देवता धरती पर उतरने लगे। तब राक्षसों ने देवताओं को देखा तो उन्हें बहुत क्रोध आया।

एक राक्षस ने, जो सब में महाबली था, धरती पर लात चलाई।

धरती फट गई और जलधारा फूट निकली।

देखते-देखते सारा मैदान पानी में डूब गया।

देवताओं में भी एक देवता महाबली थे। वह थे हमारे भगवान् बुद्ध, जिन्होंने अनगिनत बार जन्म धारण किया। पर वह था हमारे भगवान् का पहला जन्म, पहला रूप। तो जब हमारे भगवान् ने जल-थल एक होता देखा, वह नीचे उतरे।

नीचे उतरकर भगवान् ने धरती पर अपना मन्त्र फूँका।

पानी को परे हटाती, आँचल सँभालती, मुँह पर हाथ फेरती धरती बाहर निकल आई।

धरती ऊँची उठती गई। पानी नीचे रह गया। राक्षसों ने लाख चाहा कि पानी ऊँचा उठकर धरती पर छा जाए, पर यह तो असम्भव था। धरती ऊँची थी, पानी नीचा था। अब भगवान् ने देखा कि यह शुभ घड़ी आ गई जब पानी को अपनी डगर पर चलने की आज्ञा दी जाए। भगवान् के संकेत करने-भर की देर थी कि पानी अपनी डगर पर चल पड़ा। यही था हमारा ब्रह्मपुत्र।

उस समय तो ब्रह्मपुत्र ने भगवान् की बात मान ली और शान्त गति से अपनी डगर पर चल पड़ा। लेकिन अब तो हमारे भगवान् धरती पर विराजमान नहीं हैं। इसलिए ब्रह्मपुत्र कभी-कभी राक्षसों की बातों में आकर बरबादी फैलाता है और महाबली भगवान् की सन्तान से बदला लेता है।

ब्रह्मपुत्र की जन्म-कथा तिब्बत के बड़े बूढ़े अलाव के गिर्द बैठकर सुनाते हैं। 'सान पो' कहो चाहे ब्रह्मपुत्र, बात तो एक ही है। सान पो अर्थात् विशाल नदी। सान पो के सम्बन्ध में तिब्बत की एक दन्त-कथा यह भी तो है कि यह नदी हाथी के मुख से निकलती है। मानसरोवर से तो चार नदियाँ निकलती हैं। कथाकार की कल्पना में इन चारों नदियों के लिए ही पवित्रता का प्रतीक उभरता है। सतलुज घोड़े के मुख से निकलता है तो सिन्धु बाघ के मुख से। सतलुज, सिन्धु और ब्रह्मपुत्र के अतिरिक्त चौथी नदी भी तो है। उसके उद्गम की कल्पना मयूर के मुख से की गई है।

जय ब्रह्मपुत्र! जय जल देवता! शक्ति तुम्हारी, नाव हमारी। जल पथ विशाल, धरती चानकती।

हमारा नमस्कार स्वीकार करो, देवता! अपना वरदहस्त बढ़ाओ।

तुम क्या हो और क्या नहीं हो, यह सोचते हमारी आयु बीत चली है। आशा की नाव चले युग-युग। तुम हमारे साथ हो। हम अकेले तो नहीं।

जो भी गाँव तुम्हारे किनारे बसा, उस पर तुम्हें बार बार क्रोध आया। उसे बार-बार पीछे हटना पड़ा। वह बार-बार आबाद हुआ, बार-बार बरबाद हुआ। ऐसा ही गाँव है हमारे जन्म का यह डिब्रूगढ़।

अहोम राजाओं की पुरानी राजधानी शिवसागर यहाँ से तेरह मील है। देखिये न, यहाँ दिसाँग नदी ब्रह्मपुत्र में मिलती है, पर यहाँ हमारे आँसू भी मिलते हैं ब्रह्मपुत्र में। ऊपर से पानी का तूफ़ान नीचे से आँसुओं का तूफ़ान।

ब्रह्मपुत्र हमारी मानी बराबर से आता है तो हम कुछ बोल भी तो नहीं सकते। किसी प्रकार ब्रह्मपुत्र का क्रोध शान्त हो जाय, इसका कुछ उपाय हम अवश्य करते हैं। ब्रह्मपुत्र पर कितनी बार हम ने नारियल चढ़ाये, कितनी बार दूध की मटकियाँ भर-भरकर ब्रह्मपुत्र की भेंट कीं। इस पर भी ब्रह्मपुत्र की अपनी इच्छा है; वह हम पर खुश रहे चाहे नाराज़।

ब्रह्मपुत्र बहुत दयावान् भी है और बहुत क्रोधी भी। नित-नित इसके किनारे टूटते हैं।

एक किनारे से दूसरा किनारा नज़र नहीं आता।

बीच-बीच में रेत और मट्टी के द्वीप भी बनते-मिटते रहते हैं। छोटे द्वीप को 'चापरी' कहते हैं, बड़े को 'माजुली'। माजुली तो बस एक ही है। चापरियों की तो यह अवस्था है कि आज हैं, कल नहीं हैं। कहीं बनाने बिगाड़ने के खेल पर ही खुश रहता है ब्रह्मपुत्र। एक ओर से मट्टी काटता है ब्रह्मपुत्र दूसरी ओर या बीच बीच में चापरियों के रूप में नई मट्टी को जन्म देता रहता है।

माजुली के बीच का किनारा हमारे दिसाँगमुख से बहुत दूर नहीं। सात-सत्तर मील लम्बी है माजुली और दस-एक मील चौड़ी। जब ब्रह्मपुत्र भयानक रूप धारण करता है तो माजुली का आकार छोटा हो जाता है, पर हमने तो सुना है कि माजुली के उस छोटे आकार की बराबरी करने वाला द्वीप भी किसी दूसरे देश की किसी नदी में नहीं है। इस में बहुत से गाँव बसे हुए हैं और असम के चार बड़े वैष्णव सत्र भी इसी माजुली में हैं, यहाँ दूर-समीप के भक्त लोग हर ऋतु में पहुँचते रहते हैं।

वर्षा ऋतु में, जब ब्रह्मपुत्र में जल अधिक होता है, नाव को पहले से माजुली के किनारे जा लगती है। वर्षा के पश्चात्, जब नई-पुरानी चापरियाँ

ब्रह्मपुत्र।

ब्रह्मपुत्र के बीचों-बीच सिर उठाये खड़ी रहती हैं, नाव को काफी घूमकर जाना पड़ता है। उस दशा में डिब्रूगढ़ की नाव को मामूली के किनारे लगने में दुगुना समय चाहिए।

डिब्रूगढ़ का नाव-घाट तो नये-पुराने चेहरों का संगम ठहरा। पर सब से अधिक चहल-पहल तो हाट-बाजार वाले दिन ही नजर आती है, जब दूर-दूर की नौकाएँ इस घाट पर आकर लगती हैं। आर-पार आने-जाने के लिए नाव समय-समय पर तैयार मिलती है। डिब्रूगढ़ का तो प्रत्येक नावरिया नाव चलाने में कुशल है।

डिब्रूगढ़ का स्टीमर-घाट भी प्रसिद्ध है। आज से पौने दो सौ वर्ष पूर्व अंग्रेजों का पहला स्टीमर इसी घाट पर आकर लगा था। गाँव के बड़े-बूढ़े आज भी यह कहानी ले बैठते हैं। जिस जगह आजकल बेजगाँव बसा हुआ है, वहाँ अंग्रेजों ने अपना पहला जेल खड़ा किया था। वह बाँस का जेल था—बाँस की घनी-घनी दीवारें, बाँस के बड़े बड़े दरवाजे। उस जेल से कोई कैदी भाग नहीं सकता था। फिर जब असम पर अंग्रेजों का पौ-बारह अधिकार हो गया और शिवसागर में पक्का जेल बन गया तो बाँस के जेल को समाप्त कर दिया गया। वहाँ बेजगाँव बस गया। यह स्टीमर-घाट पहले इतना प्रसिद्ध न था। पहले तो कलकत्ता से चलकर स्टीमर डिब्रूगढ़ तक जाता था। जब असम में रेल की पटरी नहीं बिछाई गई थी कलकत्ता की सवारियाँ और दूर-समीप के यात्री स्टीमर के रास्ते ही आते-जाते थे। अब डिब्रूगढ़ तक बड़ा स्टीमर नहीं जा सकता। ब्रह्मपुत्र का पाट डिब्रूगढ़ से ऊपर जितना चौड़ा होता जाता है, उतना ही पानी कम गहरा हो गया है। अब तो मैर छोटा स्टीमर ऊपर डिब्रूगढ़ तक जा भी सकता है, फिर शायद वह भी न जा सके। असम की नयी शासन ने स्टीमर की पुरानी विशेषता कायम नहीं रहने दी, पर यहाँ के चाय-बागानों से चाय की पेटियाँ बाहर भेजने के लिए डिब्रूगढ़ के स्टीमर-घाट पर पहुँचाई जाती हैं। शिवसागर और डिब्रूगढ़ के बीच ही तो हमारे असम के अच्छे-अच्छे चाय बागान हैं। हर चाय बागान वाले डिब्रूगढ़ का नाम जानते हैं तो

हमारे स्टीमर घाट के कारण। हमें तो अपने स्टीमर-घाट पर गर्व है। किसी को भी मजदूरी की आवश्यकता पड़े, तो उसे हमारे स्टीमर-घाट पर काम मिल सकता है।

डिब्रूगढ़ से शिवसागर जाने वाली लम्बी सड़क पहले-पहल उन्हीं अंग्रेज सिपाहियों ने बनाई थी जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ओर से आसाम भेजे गये थे। पहले इस प्रदेश में बहुत बड़ा जंगल था और लोग पाँच-पाँच दस-दस की टोलियों में ही शिवसागर पहुँचते थे। अब तो अकेला आदमी भी मजे से आ-जा सकता है।

उस जंगल का अब कहीं नाम निशान तक नजर नहीं आता। दूर-दूर तक चले गये हैं हमारे खेत। हमारी धरती बहुत अच्छी है, धान-ही-धान हो जाता है। नया धान घर आने पर किसी वस्तु की कमी नहीं रहती। किसी-किसी वर्ष ब्रह्मपुत्र की बाढ़ भयानक रूप धारण कर लेती है तो खड़ी फसलें नष्ट हो जाती हैं। पर हमारे खेत तो दूर-दूर तक चले गये हैं। बहुत दूर तक तो ब्रह्मपुत्र का पानी मार नहीं करता। ब्रह्मपुत्र मार्गी करता है अवसर पर इसका भी तो कुछ हिसाब रहता है। थोड़ी-थोड़ी करके ही मार्गी करता है ब्रह्मपुत्र जैसे आदमी की आयु भी पल-पल घटती रहती है। यही सोचकर हमें ब्रह्मपुत्र पर कभी क्रोध नहीं होता। दिसाँग नदी में भी आती है बाढ़, पर बाढ़ के तो अब हम अभ्यस्त हो गये हैं।

हमारी नाव कम ही डूबती है। सिमसिगाँव में ऐसा आदमी मुश्किल से मिलेगा जो तैराक न हो। वैसे तो हमारे यहाँ बड़ी-बड़ी नौकाएँ भी मिलती हैं, पर गुरिया नाव की ओर मुकाबला नहीं। पेड़ के तने को बीच से खोखला करके बनाई जाती है गुरिया नाव। ऐसा भी होता है कि गुरिया नाव बीच नदी में उलट जाय। हमारा प्रयत्न सदा यही रहता है कि पानी में गिरकर भी नाव का किनारा पकड़ रहें। किसी-न-किसी प्रकार हम तैरकर नाव को तट पर ले जाने में सफल हो जाते हैं और नाव फिर चलने लगती है।

ब्रह्मपुत्र पर तो हम अपना अधिकार समझते हैं। नाव खेते हुए हमें साथ आनन्द मिलता है। कभी-कभी हम सोचते हैं कि सिमसिगाँव में ब्रह्मपुत्र ब्रह्मपुत्र।

न होता तो हम कितने उदास रहते। हमें ब्रह्मपुत्र का यह किनारा भी प्रिय है जिसे हम देख सकते हैं। हमें ब्रह्मपुत्र का वह किनारा भी प्रिय है जिसे हम यहाँ से देख नहीं सकते। हमारे जीवन के सब से मधुर क्षण वही होते हैं जब हमारी नाव ब्रह्मपुत्र की विशाल जलधारा का आँचल थामे भागी चलती है।

ब्रह्मपुत्र के किनारे जन्म हुआ हमारा। हम तो बहुत भाग्यवान हैं।

दो



"बसन्तों ने बसाके लिये नहीं कि मक सोम आ पहुँचे !"—हिरण्मिमुल के मोम-बूढ़ा नीलमणि का यह मजाक तो चलता ही रहता है । अपने हंसोड़िये मित्र कल्याण भगत पर व्यंग्य कसने में उन्हें आनन्द आता है । अब बेचारे भगत जी हैं कि हरि नाम की चादर ओढ़े मुस्कराते रहते हैं । क्या मजाल नीलमणि की बात का बुरा मना जायें । भगत जी तो न रुपये को हाथ लगाते हैं, न मांस-मदिरा के समीप जाते हैं । मामुनी के आउनियाती सत्र के गुसाईं जी से मन्त्र ले रखा है । पूरे वैष्णव हैं । वैष्णव धर्म का बखान उनके मुख से सुनते ही बनता है । वह तो नीलमणि पर भी जोर डालते हैं कि अब शरणा करें । एक दिन आउनियाती सत्र की यात्रा की जाय । गुसाईं जी तो महापुरुष हैं । गुरुदेव की वाणी पूरी नहीं तो आधी उन्हें कण्ठस्थ है । गुरुजी के अच्छे अच्छे श्लोक उनके कण्ठ में विराजमान हैं । आउनियाती सत्र तो तीर्थ-स्थान है । प्रति वर्ष दूर-दूर से वैष्णव वहाँ पहुँचते हैं । एक बात तो पहले से समझ लेनी होगी । सच्चा वैष्णव वही नहीं जो मदिरा-मछली और मांस-मदिरा से दूर भागता है; सच्चे वैष्णव को तो पराई पीड़ा को जानना होता है, पराई पीड़ा को अपनी पीड़ा मानकर चलना होता है । नीलमणि और कल्याण भगत की नाल एक ही जगह [illegible] होगी । अभी तो उन में इतनी गाढ़ी छनती है । पर और बात है कि भगत जी अभी तक नीलमणि को वैष्णव-धर्म की दीक्षा नहीं दिला सके ।

"समय बीत रहा है, जीवन का अन्त नहीं।"—भगत जी हमेशा यही रट लगाते रहते हैं। भगत जी तो बड़े-बड़े तीर्थ देख आये हैं। गया, काशी, प्रयागराज, पुरी, रामेश्वरम्—सब जगह हो आये हैं। यात्रा की कथाएँ तो उन से घण्टों सुनते रहो। नीलमणि ने तो एक भी तीर्थ नहीं देखा—उस ने तो आउनियाटी सत्र भी नहीं देखा जो इतना समीप है।

नीलमणि सबकी भलाई चाहता है, इतना तो भगत जी भी जानते हैं। नहीं तो वे नीलमणि का इतना सम्मान क्यों करते? गाँव-बूढ़ा तो महा चतुर होता है—बात करते-करते आप की जेब काट ले और आप को पता भी न चले, पर नीलमणि को तो किसी प्रकार का छल-कपट छू तक नहीं गया। वह तो दिन-रात दिसाँगमुख की चिन्ता ही में मग्न रहता है। यह भी तो एक प्रकार की भक्ति है। पूरा नहीं तो आधा वैष्णव तो अवश्य है नीलमणि। दिसाँगमुख की तो कई बस्तियाँ हैं, वह भी अलग अलग। हर बस्ती का अलग नाम है, फिर भी सबका नाम है दिसाँगमुख। आलीमीगा बस्ती का यह दावा अवश्य है कि असली दिसाँगमुख यही बस्ती है। नीलमणि के लिए तो सभी बस्तियों की भलाई आवश्यक है। उसका अपना घर तो आलीमीगा में है—भगत जी के पड़ोस में पर वह तो पूरे दिसाँगमुख का गाँव बूढ़ा है, पूरे दिसाँगमुख की पीड़ा को अपनी पीड़ा मानना उसका धर्म है। यही तो वैष्णव धर्म भी कहता है। एक काम और करे नीलमणि, अण्डा-मछली और माँस से मुँह मोड़ ले—मदिरा को तो वह पहले ही मुँह नहीं लगाता—फिर चाहे वह किसी भी तीर्थ की यात्रा न करे, चाहे आउनियाटी सत्र भी न जाय, परवाह नहीं। एक दिन यह बात नीलमणि की समझ में अवश्य आ जायगी कि सात्त्विक विचारों के लिए सात्त्विक भोजन भी आवश्यक है। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण—शास्त्रों में ये तीन गुण माने गये हैं। सतोगुण सर्वोत्तम है। अब यह तो असम्भव है कि माँस मछली का सेवन करते हुए मनुष्य यह भी चाहे कि वह रजोगुण और तमोगुण से बचा रहे। तमोगुण से बचने के लिए तो लाल मिर्च भी छोड़नी पड़ती है। चलिए कोई बात नहीं। अभी तो नीलमणि की समझ में यह

बात आ ही जायगी। नीलमणि का बेटा है अतुल। अतुल को तो मेरी बात मे विश्वास है। यह भी हो सकता है कि पिता से पहले पुत्र वैष्णव बन जाय। वैष्णव धर्म यह तो नहीं कहता कि घर छोड़कर किसी तीर्थ पर जा बैठे। हमारे आउनिआटी सत्र के गुसाईं जी तो सत्र मे आकर रहने वालों की अपेक्षा उन भक्तों को अधिक अच्छा समझते हैं जो घर पर रहकर हरिनाम जपने के साथ-साथ घर का काम भी करते हैं। खेती-किसानी तो बुरी नहीं। धरती माता का वरदान मिलता रहे। आदमी इस बात का ध्यान रखे कि किसी पर भार न बने। कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ का भार अपने-आप ढोये। इस में तो कोई बुराई नहीं पर सात्विक विचारों के लिए सात्विक भोजन तो आवश्यक है।

धनसिंह चाय वाले और रहम नापित की दुकानें आलोखोवा में पास पास हैं। रिसोगाजुल का तो ले-देकर यही एक बाजार है। धनसिंह की दुकान दुनिया-भर की खबरों पर टीका-टिप्पणी करने के लिए बहुत बड़ा अड्डा है। यहाँ भगत को भी आते हैं और नीलमणि भी। पीठ-पीछे में रहम नापित की जबान भी कैंची की तरह चलती रहती है।

धर्मानन्दी भदुआ और अब्दुलकादिर भी धनसिंह की चाय के रसिया हैं। अब्दुलकादिर किसान है। धर्मानन्दी कहता है कि उसकी खेती बस पर ही है। यहाँ उसके पास में छोटी-बड़ी मछलियाँ आ फँसती हैं। अब्दुल कादिर है कि उसे एक ही चिन्ता खाये जा रही है। अब्दुल पाना कर जाने पर वह आज तक हज करने नहीं जा सका। भगत की ... मित्रों में सबसे बड़े हैं—पचास से कम तो क्या होंगे। उन से खास-कर ... उतरकर हैं गाँव-बूढ़ा नीलमणि और अब्दुलकादिर। धर्मानन्दी तीनों ... है, यद्यपि धनसिंह का विचार है कि यह तो भगत को से भी ... छः महीने ऊपर ही होगा।

... आखिर चारों मित्र आज इकट्ठे हो गये। धनसिंह एक-एक गिलास ... चाय देते हुए कहता है, "बेंच पर बैठकर पीजिये।"

... शान्ति अपनी दुकान से निकलकर कहता है :

... पुत्र।

"थोड़ा हरिनाम हमारे लिए भी जप लेना, भगत जी !"

धर्मानन्द हँसकर कहता है :

"या तो हमारे साथ बैठकर चाय पियो या फिर अपनी दुकान में जाकर किसी गाहक की गाँठ खोलो। तुम मेरी हजामत यहाँ नहीं बना सकते !"

"धनसिंह जी चाय हम से कौन दूर है ! तुम बताओ, अब मछलियाँ तुम्हारे जाल में फँसने से इन्कार तो नहीं करतीं !"

"इन्कार करके कहाँ जायेंगी ब्रह्मपुत्र की मछलियाँ !" धर्मानन्द गम्भीर होकर कहता है, "सच पूछो तो मछलियाँ पकड़ना भी हरिनाम जपने से कुछ कम कठिन नहीं। क्यों, मियाँ अब्दुलकादिर !"

भगत जी अब्दुलकादिर के कान के समीप मुँह ले जाकर कहते हैं

"एक बार हज तो अवश्य कर आओ, मियाँ जी !'

अब्दुलकादिर की आँखों में एक नई ही चमक आ जाती है। वह सहसा तीनों मित्रों की ओर देखता है, और फिर धनसिंह और रतन की ओर, जैसे चुपके चुपके मन से पूछ रहा हो कि यदि वह इस वर्ष हज को जाने की तैयारी कर ले तो किसाँगमुक वाले उसकी कहाँ तक सहायता कर सकते हैं। नीलमाधव रतन की ओर से कहता है :

"मियाँ जी, जब तक तुम हज को नहीं जा सकते, किसाँगमुक ही को मक्का समझ लो। हम तो इसे काशी मान बैठे हैं।'

शीतकाल का सूर्य वैसे भी देर से निकलता है। आज कुहर जरा कम है। चारों मित्र चाय पीकर सड़क के मोड़ की ओर चले जाते हैं। धनसिंह और रतन पीछे से उन्हें देखते रहते हैं जब तक कि वे धुन्ध की चादर में खो नहीं जाते।

रतन अपनी दुकान में चला जाता है। वह जानता है कि धनसिंह ने केतली में पानी भरकर इसे दोबारा आग पर रखा है। इतने में धनसिंह की आवाज़ आती है :

"चाय पियोगे !"

रतन उत्तर देता है

"धनसिंह भाई, कटोरी-भर गरम पानी हमारे लिए रख लेना ज़रूर। चाय अभी नहीं चाहिए।"

धनसिंह सोचता है — आख़िर रतन अपना पड़ोसी है। वह हँसकर कहता है

"वे चारों तो युद्ध में लग गये। अब कौन आयेगा हजामत बनवाने? गरम पानी तो जितना चाहे ले लो। हमारे गुरु ने तो यही बताया था कि पेय दूसरों के काम आने से कभी न चूकना।"

रतन अपनी दुकान से निकलकर कहता है :

"अच्छा तो चाय पिलाओ!"

धनसिंह चाय बनाते हुए रतन की ओर यों देखता है जैसे बकरी अपने नवजात शिशु की ओर निहारती है। सूखे होंठों पर ज़बान फेरते हुए कहता है

"कलकत्ता से आता है डिब्बा लिपटन का। यह समझो कि लड़की ससुराल से दोबारा मायके में आई।"

"वाह, धनसिंह भाई! अच्छा रूपक बाँधा है। आसाम की चाय पहले कलकत्ता जाती है, फिर कलकत्ता से अंग्रेज़ कम्पनी डिब्बों में भरकर भेजती है जगह-जगह। अच्छा तो लाओ चाय का गिलास!"

चाय का गिलास धनसिंह के हाथ से लेकर रतन देर तक उसे मुँह से नहीं लगा पाता। भाप उठ रही है। धनसिंह कहता है :

"धनवन्ती की लड़की है न मालती, वह अपने पिता से कम नहीं। पिता बाल काटे महलपुर में, पुत्री बाल काटे रैसिंगमन के हाल-बाज़ार में।"

चाय का गिलास बेंच पर रखकर रतन एक हाथ की अँगुली दूसरे हाथ की हथेली पर उस्तुरा तेज़ करने के अन्दाज़ में चलाते हुए कहता है :

"छोड़ो, छोड़ो, दिल मेरा लहू-लुहान कर दिया। चाय अच्छी है, अब लगाता है।"

धनसिंह कोई उत्तर नहीं देता। धुन्ध की झीनी चादर घनी होने लगती है। इस वातावरण में चेहरे निकालकर अर्जुन और देवकान्त आ निकलते हैं।

देवकान्त कहता है :

"जल्दी बताओ, चाय पियें या पहले हजामत बनवायें ?"

अतुल अपनी ठोड़ी पर हाथ फेरकर कहता है :

"तुम्हारा मतलब है दिन में सब तो काम ही होंगे ?"

रतन एक ही साँस में चाय का गिलास चढ़ा जाता है ।

देवकान्त गम्भीर होकर कहता है :

"अपना काम तो लोगों को इकट्ठा करना है । लोग इकट्ठे हो गये तो उनके सामने कोई कठिनाई नहीं रह जायगी ।"

अतुल हँसकर कहता है :

"हम से तो यह मामा लाख गुरुदासों से देश सिखाओ भले ही फिरंगी ने उसे पकड़कर जेल में डाल दिया—"

रतन बीच में बोल उठता है :

"फिरंगी का तो कोई क्या बिगाड़ेगा ? अपने हाथों में हथकड़ी और पैरों में बेड़ी पहनकर हलना सकता है ।"

धनसिंह की आँखों के कोनों में शरारत सिमट आती है । हवा में हाथ उछालकर कहता है :

"अब बोलो, देवकान्त भाई ! अच्छा तो पहले रतन से हजामत बनवा आओ, मैं यह पानी डालकर चाय तैयार करता हूँ ।"

धनसिंह की बात समझकर रतन झट अपनी दुकान में चला जाता है । पीछे-पीछे अतुल और देवकान्त भी चले जाते हैं ।

देवकान्त के चेहरे पर साबुन लगाते हुए रतन कहता है :

"फिरंगी से तो बड़े-बड़े देशभक्त भी डर जाते हैं । गुरुदासों ने समझा होगा कि स्वतन्त्रता का झण्डा उठाने भर की देर है, फिरंगी मैदान छोड़कर भाग जायगा । फिरंगी को क्रोध आ गया । उस ने यह सारा गाँव जला डाले । लूट मचा लिया । और गुरुदासों को भी पकड़ लिया ।"

अतुल हँसकर कहता है :

"तो यह कहो कि एक ओर से अवगुण गरा कर रहा है, दूसरी ओर

से फिरंगी। गुरुदासों से तो भिन्न कुछ है देवकान्त। गुरुदासों तो नहीं इसकी तह तो पहुँचे हुए हैं और हमारा देवकान्त तो बी० ए० पास कर चुका है। वह तो फिरंगी की चाल अच्छी तरह समझता है। वह फिरंगी को ब्रह्मपुत्र के सम्मुख गप नहीं हाँकने देगा।"

रतन खड़ा मुस्कराता रहता है और देवकान्त के चेहरे पर थोड़े थोड़े ठसुरा चलाता है।

यह तो डिब्रूगढ़ में सभी जानते हैं कि ब्रह्मपुत्र को गप हाँकने में ही आनन्द आता है। गाँव के बड़े-बूढ़े कहते हैं—किसी समय शिवसागर यहाँ से सोलह मील था, अब रह गया सोलह का तेरह मील। तीन मील मानो कट गए। बड़े-बूढ़े तो यह भी कहते हैं कि आलोसोगा की वर्तमान बस्ती आज से बीस बरस पहले अपनी जगह से हटाकर इस जगह बसाई गई थी। पुराने आलोसोगा वाली जगह तो कभी की पानी में जा चुकी है। ठसुरा चलाते-चलाते रतन कहता है

'आलोसोगा भी किसी ने क्या सोचकर नाम रखा है इस बस्ती का!', अतुल कहना चाहता है—ठीक तो है, आलोसोगा अर्थात् डूबी हुई। यह बस्ती तो ब्रह्मपुत्र की बाढ़ में न जाने कितनी बार डूबी, न जाने कितनी बार पीछे हटाई गई यह बस्ती।

"हाथ बचाकर रतन भाई! अब मत लगाना।"

रतन और भी जल्दी-जल्दी हाथ चलाते हुए कहता है:

"हरि का नाम लो, यहाँ तो बड़ी-बड़ी की हजामत बना डाली। अब लग जाये, तो हमारे पास इसका उपाय भी तो रहता है।"

अतुल प्रसंग बदलकर कहता है:

"डम्कोमा की सेसको भी तो ब्रह्मपुत्र की कमचाप की तरह गप हाँकती है। कल जब यह समाचार सुनने में आया कि आश्चर्य दारोगा को नौकरी से हटा दिया जायगा, पर वह तो अपनी जगह पर ही डटा हुआ है जैसे यह हमारा डिब्रूगढ़ आश्चर्य समझने लगा है कि महलोक को लोहित कहने और उन्हें बड़ी-बड़ी गालियाँ देने से ही सरकार हुए ब्रह्मपुत्र।

रहती है।"

देवकान्त के चेहरे से सगुन पौंछकर रतन पिटकिरी लगाते हुए हँसकर कहता है :

"हमारे लिए तो जैसे सरकारी अफ़सर वैसे ही पब्लिक के लोग !"

धुन्ध की चादर पहले से घनी हो गई है। रतन की दुकान से निकल कर दोनों मित्र बनसिंह की दुकान पर जमकर बैठ जाते हैं।

दोनों गाहकों के हाथ में चाय के गिलास देकर बनसिंह कहता है

"धर्मानन्दी अपना जाल डालने से पहले ज़रा नहीं कहता है—सावधान, मछलियो ! पर छोड़िए धर्मानन्दी की बात। कहते हैं हाथी जितना काला है उतना बोझ होता है। हम अपना जाल डालने से पहले इतना भी नहीं कहते—सावधान गाहको ! चलो रहने दो। धर्मानन्दी की लड़की आरती एक-न-एक दिन अवश्य भाग जायगी, यदि धर्मानन्दी ने उस के लिए योग्य वर न ढूँढ़ लिया।

अतुल गम्भीर होकर कहता है :

"मछुए की लड़की के लिए तो लोग कहते हैं मछुए का काम करने वाला कैवर्त या डोम वर ही चाहिए, पर यह कोई आवश्यक तो नहीं।"

बनसिंह कहता है

"आवश्यक कैसे नहीं ! तिरसँगमुख में आये तो मीरी रहते हैं, जो अपने मीरी लोगों में ही विवाह करते हैं। एक चौपाई हैं हम नेपाली लोग और रोप रह गये एक चौथाई अन्य असमिया लोग, जिन में किसानों के अतिरिक्त नावरिया और मछुए भी हैं। अब यह तो पुरानी रीति ठहरी—नेपाली का विवाह नेपाली लड़की से ही होगा, असमिया का असमिया से; यहाँ तक कि मछुए और नावरिया भी हमेशा अपनी अपनी जाति में ही विवाह करते हैं। आप लोग चाय पीने आ जाते हैं, किस प्रकार धन्यवाद दूँ ! भगवान की नाव तो रेत पर भी चल जाती है, पर निर्धन की नाव ब्रह्मपुत्र में भी नहीं चलती।"

देवकान्त प्रसंग बदलकर कहता है :

"ब्रह्मपुत्र जानता है कि बापू कितना गहरा जाता है।"

अतुल असम दास बोलता है :

"आदमी के पाँव कहाँ भी पड़ते हैं उस माटी के स्वभाव को तो जान ही लेते हैं। अपने गाँव को भी इसीलिए आदमी सब से अधिक जानता है। शिवसागर हमारी जन्मभूमि है। इसकी भलाई हम सदा चाहते हैं।"

धनसिंह हँसकर कहता है :

"शिवसागर की भलाई तो इस में है कि हमारे लड़कों को सुन्दर दुलहनें मिलें और हमारी लड़कियों को योग्य वर। धर्मानन्दी का दामाद देखें कौन बनता है। बेचारे की घरवाली तो मगरमच्छ के मुँह में चली गई थी। कोई-कोई यह भी कहता है कि धर्मानन्दी की घरवाली घर से निकली ही इस विचार से थी कि इस जीवन से छुटकारा पा ले।"

देवचन्द्र कहता है :

"यह बात तो मेरे सुनने में भी आई है। धर्मानन्दी अपनी घरवाली को यह कहकर चिढ़ाता रहता था कि उस ने बेटी को क्यों जन्म दिया जब कि उसकी तो बेटे का बाप बनने की इच्छा थी। कहते हैं उन दिनों मालती दूध पीती बच्ची ही थी। उस को किस प्रकार पालकर बड़ा किया, यह सब-कुछ धर्मानन्दी का ही काम है। वह चाहता तो दूसरा विवाह कर लेता पर—"

धनसिंह झुंझलाकर बोलता है :

"कर लेता दूसरा विवाह, और भी दुखी होता। शादी तो काठ की हाँडी है यह बस एक बार ही चढ़ती है आग पर। वैसे तो चाहे जितनी बार मन मारते रहो। अब तो मालती सयानी हो गई। धर्मानन्दी चाहता है कि गाँव में ही उसका विवाह हो जाय जिस से मालती सदा उसकी आँखों के सामने रहे।"

रतन अपनी दुकान से निकलकर कहता है :

"क्या बातें हो रही हैं! धुन्ध ने तो आज कमाल कर दिया। सूरज का कहीं नाम-निशान नहीं। कहाँ से आती है इतनी धुन्ध!"

धनसिंह अपनी जगह से उछलकर कहता है :

"मज़े से बैठो, रतन! अब कोई गाहक नहीं आयेगा। हाँ तो बात चल रही थी धर्मानन्दी की लड़की आरती की।"

रतन अपनी ही हाँकता है :

"धनसिंह भाई, तुम्हें इतनी क्या चिन्ता है आरती की! धर्मानन्दी तो घरजमाई ढूँढ रहा है, वह उसे आज नहीं तो कल मिल ही जायगा।"

धनसिंह पत्थर की तरह सिर उठाकर कहता है :

"यह झूठ है। घरजमाई तो कन्हाई भगत को चाहिए अपनी कुन्ताप के लिए। उनके बेटे सुधीर का तो पिछले साल विवाह हो गया, अब रह गई कुन्ताप। बड़ी सुघड़ लड़की है—जिसके घर जायगी उसके घर चाँद चढ़ जायगा और तारे भी चमकने लगेंगे।"

मधुप चाहता है कि यहाँ से उठकर चल दे। इसी विचार से वह बार-बार देवकान्त की ओर देखता है। वह सोचता है कि देवकान्त को भी इन बातों में रस नहीं आ रहा होगा। अब यह भी कोई बात हुई। कुन्ताप तो बड़ा साधारण नाम है। यह कौन नहीं जानता कि कुन चाँद को कहते हैं और ताप तो ताप ही है। बात को खींचकर कहाँ-से-कहाँ ले जाते हैं। बात तो यह हो रही थी कि हिसाँगमुख की भलाई किस में है, ताश खाकर टूटो आरती और कुन्ताप पर। गाँव में और भी तो लड़कियाँ हैं, आरती और कुन्ताप में ही ऐसी कौनसी विचार बात है।

धनसिंह और रतन इस बात पर उलझ जाते हैं कि आरती और कुन्ताप में सुन्दरता के नम्बर किस को अधिक दिये जायें। मधुप फिर देवकान्त के मुख की ओर देखता है कि वह इन्हें टोक क्यों नहीं देता! किधर-से किधर बात को खींचा जा रहा है। कभी कहते हैं—आरती तो लड़के से भी अधिक सेवा कर रही है अपने बापू की, कभी कहते हैं—जब आरती का विवाह हो जायगा तो धर्मानन्दी क्या करेगा! धर्मानन्दी अकेला रह जायगा और वह उदास रहा करेगा। पर यह कोई नहीं समझ सकता कि लड़की तो पराया धन है। जमाई इसलिए आता है कि ससुर अपना खोया सुख दे, पर जमाई बनना भी क्या इतना सहज है! उस की भी तो परीक्षा हो

बढ़ती है और यदि उस की माँग खासी हो, तो कब मिलती है दुलहन ! यह सब चलना होगा, बदलकर दिखला होगा।

देवकान्त कहता है।

"किस साथ में डूब गये, मधुप ! रतन की बात भी सुनी—तुम्हारा अपने करने पर बहुत अच्छा असर हुआ है।"

"मैंने तो बात कही यह सुनी-सुनाई बात नहीं।" रतन हवा में हाथ उछालकर कहता है "यह तो पुरानी रीति है। जो लड़की कपड़ा बुनना नहीं जानती उसके लिए वर नहीं मिलता।"

"कोई शर्त तो लड़के के लिए भी होनी चाहिए।" धनसिंह किस्से का रस लेने के अन्दाज में कहता है, "लड़के के लिए तो एक ही शर्त है कि वह मछुआ बने और मछली को अपने जाल में फँसा कर ही दम ले।"

"वैसे तो मछुआ नारायण बारोगा भी हुआ।" मधुप बात का रुख मोड़ने का यत्न करता है, "आप ही सोचिये। अपराधी को फँसाने के लिए उस जैसा जाल और क्या बुन सकेगा ? कल की बात है—मैं शिवसागर से आ रहा था, रास्ते में नारायण बारोगा मिल गया। वह पूछने लगा—'तुम देवकान्त के साथ क्यों घूमते रहते हो ?' मैंने कहा—'मैं देवकान्त के साथ नहीं घूमता, देवकान्त ही मेरे साथ घूमता है और इसमें बुराई ही क्या है ?' वह अपना-सा मुँह लेकर रह गया।"

"बात तो ठीक कही तुम ने।" धनसिंह हाथ उछालकर कहता है "कोई किसी के साथ घूमता है तो नारायण बारोगा का क्या लेता है ?"

रतन एक हाथ की उँगली दूसरे हाथ की हथेली पर उसको ठीक करने के अन्दाज में चलाते हुए कहता है, "पुलिस यह पूछ सकती है। उस को यह पूछने से कोई नहीं रोक सकता।"

"पूछ सकते हैं।" देवकान्त बात में आकर कहता है, "लोग मिल कर इकट्ठे हो जायें तो वे अवश्य पूछ सकते हैं। यह बात मैंने गुरुजनों से भी कही थी, जब एक बार धमकाना न मानने के कारण कोहिमा में मेरी उन से भेंट हुई थी। फिर जब गुरुजनों ने स्वतन्त्रता का झण्डा उठाया, तो उन

ने अपने लोगों को यही आवाज़ दी कि वे मिलकर इकट्ठे हो जायें।"

"यह तो कठिन बात है।" अमृत बागडोर सँभालता है, 'रत

कह सकता है कि लोग कभी मिलकर इकट्ठे न होंगे, पर मैं कहता हूँ कि
जब तक लोग इकट्ठे नहीं होंगे, कोई तो ऐसा माँ का लाल निकले जो
गुरुदासों के समान अत्याचार से टक्कर ले।"

"यही तो मैं भी कहता हूँ।" देवकान्त ज़ोर देता है।

"तो तुम दोनों एक ही बात कह रहे हो!" रतन हँसता है।

"पुलिस दारोगा पर तो यह बात ठीक उतरती है।" देवकान्त अपना
हाथ अमृत के कन्धे पर रखकर कहता है, "मेरा बेटा राजा बनेगा तो मुझे
सिर के बालों से पकड़कर बीच बाज़ार में खड़ी कर देगा। मैं तो समझता हूँ
कि नारायण दारोगा ने भारत माता को सिर के बालों से पकड़कर बीच
बाज़ार में खड़ी कर रखा है।"

"तुम्हारा क्या विचार है, अमृत!" रतन गम्भीर होकर पूछता है।

"भारत माता की बात मैं नहीं जानता।" अमृत कहता है, "मैं तो
दिसौंगमुख की बात कहता हूँ। दिसौंगमुख का अपमान करने से मैं नारायण
दारोगा का हाथ अवश्य रोक सकता हूँ, चाहे वह मेरे हथकड़ी ही क्यों
न लगा दे।"

बलसिंह हँसकर कहता है, "तुम तो गाँव-जुड़ा के बेटे ठहरे, अमृत
वैसे नारायण दारोगा चाहे तो कुम्भ के भी हथकड़ी पहना दे। आज तो
कुम्भ ने कमाल कर दिया। जाड़े का मौसम ही ऐसा है। हाँ, तो जाये
एक-एक गिलास गरम-गरम चाय!"

तीन



धर्मानन्दी ही सब से अधिक हाट-बाज़ार की बात बोलता है। बुध और शुक्र के बीच का पड़ाव है बृहस्पतिवार। हाट-बाज़ार के लिए यही दिन क्यों चुना गया, धर्मानन्दी के पास इसका कोई उत्तर नहीं। हाट-बाज़ार वाले दिन सब से अधिक मछलियाँ वही बेचता है। शिवसागर की ओर से आने वाली सड़क यहाँ ब्रह्मपुत्र के समानान्तर घूमती है, यहीं मोड़ के समीप खुली जगह है। यहाँ से हाट-बाज़ार इसी जगह लगता है, बीस वर्ष पूर्व अवश्य कभी आगे लगता होगा। वह जगह तो अब ब्रह्मपुत्र में चली गई। यहाँ तो अब धर्मानन्दी मछलियाँ पकड़ता है। यहाँ बैठकर तो वह मछलियाँ बेचता है। धर्मानन्दी के साथ बैठती है आरती।

आरती जानती है कि रतन और धनसिंह में पुराना समझौता है। जहाँ धर्मानन्दी हाट-बाज़ार के दिन मछलियाँ बेचने बैठता है उसके सामने रतन और धनसिंह दुकान लगाकर बैठते हैं। आरती तो गिनकर बता सकती है कि धनसिंह ने कितने गिलास चाय बेची या रतन ने कितने आदमियों की हजामत बनाई। यह यह भी जानती है कि रतन और धनसिंह चाहें तो मिलकर भी यह नहीं बता सकते कि धर्मानन्दी ने कितनी मछलियाँ बेचीं।

आरती पैसे उठाती जाती है। धर्मानन्दी अपने हाथ से मछलियाँ तोलता है। सोने की तरह तो तोलने से रहा, झुकता पलड़ा रखता है। गाहक खुश रहे, चाहे एक आध छटाँक अधिक ही चली जाए मछली।

साथ-साथ मछली की प्रशंसा भी करता जाता है धर्मानन्दो। कभी-कभी कल्याण भगत की बात छेड़ देता है : 'मैंने पूछा—भगत जी, जब लोग मिशमिश खाने लगेंगे, तो मछलियाँ कहाँ जायेंगी? वह बोले—ब्रह्मपुत्र में ही रहेंगी मछलियाँ और कहाँ जायेंगी?' कभी-कभी धर्मानन्दो हँसकर मनसिंह और रतन की बात सुनाने लगता है कि किस तरह दोनों ने एक दूसरे की प्रशंसा करने की शपथ ले रखी है।

नीलमणि को यह मलाल है कि प्रत्येक हाट-बाजार के दिन भी देवकान्त का पीछा न छोड़े। देवकान्त तो कलकत्ता से पढ़कर आया है। आज नहीं तो कल, उसे शिवसागर में कोई नौकरी मिल जायगी। सांगो को इच्छा करने की बात वह करता है अवश्य, पर यह काम वह नहीं करेगा। बापू उसे देखने को तरसता मर गया। अब घर में बुढ़िया माँ है। माँ का और अपना पेट पालना तो आवश्यक है। कई बार वह देवकान्त को सलाह दे चुका है कि वह हाट-बाजार के दिन छोटी-मोटी दुकान ही लगा लिया करे, पर उसकी समझ में यह बात नहीं आती।

हाट बाजार की रौनक तो देखते ही बनती है। भोर से पहले ही दूर दूर की नौकायें दिसाँगमुख के नाव-घाट पर आ लगती हैं। सब अपनी अपनी किस्म की चीजें लाते हैं। कटहल ले लो। मुर्गियाँ भी हाजिर हैं। मछलियाँ और कछुए भी पड़े हैं। कबूतर ले लो। सूअर ले लो। सब्जी से भरी हुई टोकरियाँ भी जल्दी-जल्दी खाली हो रही हैं। मुगा के थान भी बिक रहे हैं। चावल की बोरियों का सौदा हो रहा है। बाँस की नरम खपचियों से बने थैलों में सूअर बन्द हैं। बड़े बड़े सुराखों में से सूअर नजर आ रहे हैं। उनके आगे और पीछे के पैर कसकर बाँध दिये गये हैं। कोने बन्द किये पड़े हैं थैलों के अन्दर से छोटे बड़े सूअर। छोटे थैलों में सूअरियों के दूध-पीते बच्चे बन्द हैं। उनके विशेष गाहक आते हैं। कभी-कभी सूअर की आवाज एक चीख की तरह सुनाई दे जाती है। कभी टोकरी में बन्द कबूतरों और बतखों की आवाज हाट बाजर के वातावरण में गूँज उठती है।

नीलमणि देवकान्त की रोककर कहता है, "कुछ तो तुम भी देख ही सकते हो हाट-बाजार के दिन। एक दिन में पूरे सप्ताह का खर्च निकल सकता है। मैं तो कहता हूँ कि अतुल भी तुम्हारे साथ मिलकर कुछ-न कुछ करे और लाभ उठाये।"

"व्यापार के लिए तो सारी आयु पड़ी है, बापू!" अतुल मन्द मुस्की लेता है।

दोनों मित्र भीड़ में गुम हो जाते हैं।

तो कलकत्ता देखने का तुम्हारा बिलकुल इरादा नहीं!" देवकान्त चलते-चलते पूछता है।

बिलकुल नहीं।" अतुल मुस्कराता है।

"कलकत्ता में तुम्हें नीरद से मिलाऊँगा।"

"कौन नीरद?"

"उसका बापू शिवहर चला गया कलकत्ता छोड़कर, जहाँ वह व्यापार करता है।"

"और नीरद क्या करता है?"

"उसके पैर में चक्कर है। दुनिया देखने का शौक है। कहता है कि वह जब आगे जायगा, दुनिया देखेगा और फिर जैसे मधु-मक्खियाँ छत्ता बनाती हैं रंग-बिरंगे फूलों से रस चुराकर, वैसे ही वह भी ऐसी पोथी लिख जायगा कि रहती दुनिया तक उसका नाम अजर-अमर रहेगा।"

"तो उसे यहीं बुला लो ना!"

"मैं कहता हूँ कि जब तक तुम एक बार कलकत्ता नहीं हो आते, तुम समझ ही नहीं सकते कि माया मत्ता किसे कहते हैं। कब तक पोखर के मेढक बने रहोगे? जैसे हाट बाजार के दिन आसपास के गाँवों के चहरे देखकर तुम शिलौंगपुन के लोगों को भली भाँति समझ सकते हो, वैसे ही एक बार बाहर जाकर तुम जगत को अच्छी तरह समझ सकोगे। और फिर याद तो तुम स्वयं ही कह चुके हो कि जब तक सब लोग मिलकर एक नहीं हो जाते तब तक किसी एक आदमी को ही प्रभु मानकर

करने पड़ेंगे सवाद और स्वतन्त्रता की आवाज पर डटे रहने के लिए।
फिर तैयार हो जाओ। कलकत्ता दिखाने के लिए तुम्हें मुझ से अच्छा प
मार्गदर्शक दूसरा नहीं मिलेगा।"

"एक बात कहूँ, बुरा तो नहीं मानोगे?"

"कहो, कहो।"

"एक दिन भगत जी किसी पोथी का प्रमाण देकर कह रहे थे कि व
व्याख्यान देने वाला मेम्बर हो तो सुनने वालों का धर्म हो जाता है कि
चुपचाप मेम्बर जी महाराज का व्याख्यान सुनते रहें। तुम मेरी बात स
समझना ही नहीं चाहते, देवकान्त! तुम्हारे दिमाग पर कलकत्ता क
सवार है।"

"कलकत्ता में आरम्भ किये जाने वाले कार्य से भी दिसाँगमुख को लाभ
पहुँचेगा।"

"और दिसाँगमुख से ही कार्य आरम्भ करने से क्या दिसाँगमुख क
हानि पहुँचेगी? खैर छोड़ो। चलो जरा भगत जी को देखें कि किस प्रका
कलाइयाँ देख रहे हैं।"

"भगत जी का तो कहना है। मैं सब समझता हूँ। याद है कलसि
उस दिन धर्मानन्दी की लम्बी आरती पर ताल ठोकता रहा, फिर वह भगत
जी की लड़की कुन्वारा की गाथा ले बैठा। कम्प पोस्टर के मेम्बर इसी
प्रकार बातें करते हैं। जब सामने कोई बड़ी बात न हो तो आदमी छोटी
बात कहने पर मजबूर होता है। कलकत्ता में ऐसे-ऐसे होटल हैं, जहाँ
हिन्दुस्तानियों को घुसने की आज्ञा नहीं। अंग्रेजों को पूरी आज्ञा है कि व
अपने कुत्तों को भी ले जायें। इसी प्रकार का अपमान-भरा व्यवहार देखकर
ही तो मीरद का बाबू विलायत चला गया। उस ने सौगन्ध खा ली कि जब त
देश स्वतन्त्र नहीं हो जाता, वह लौटकर देश में नहीं आयेगा।"

एक चक्कर, दो चक्कर, तीन चक्कर। अतुल और देवकान्त धर्मिन
धर्मसिंह की दुकान पर आकर चाय पीने लगते हैं। सामने धर्मानन्दी की
लड़की भारती पैसे गिन-गिनकर रखती जाती है कभी-कभी नजर बचाकर

ने जानती है कि कितने गाहक पास पी रहे हैं। एक गिलास, दो
गास, तीन गिलास—मालती को शायद यह हिसाब भी रखना पड़ता है।

रतन पास से कहता है, "चीयर्स है चीयर्स।"

"तो निकालो अपनी बात !" जसविंदर हँसता है।

"तुम्हारी बात में कोई मज़ा नहीं !" रतन ज़ोर देकर कहता है, "तुम हाल अपनी बात की अवज्ञा करते रहो। बात भी कोई पीने की चीज़ है !"

"तो शुरू कर दिया रतन का भाषण !" जसविंदर पास का गिलास रतन के हाथ में देते हुए कहता है, "शुरू कर दी हजामत। तुम खूब बात लगाते हो ! तुम से तो खुद हजामत करवाने में भी कोई का शौक है !"

साँझ उतर रही है। हल-बाहर की रौनक बढ़ रही है। मालती को भी लगी हुई बत्तियाँ [illegible] के लिए [illegible] पड़ी [illegible]।

"इसे पाँच बजे का तारा, या दोनों बजे !" [illegible] [illegible] के कान में कहता है, "मेरी मानो। मन के [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] रखो, यहाँ तुम्हारी [illegible]—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के पानी से [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] कर लेना। हाँ, [illegible] [illegible] [illegible] को इस [illegible] से [illegible] [illegible]।"

[illegible] चुप रहता है। [illegible] [illegible] का [illegible] [illegible] [illegible] की ओर आ रही है।

करने पड़ेंगे उत्पात और स्वतन्त्रता की आवाज़ पर डटे रहने के लिए। तो फिर तैयार हो जाओ। कलकत्ता दिखाने के लिए तुम्हें मुझ से अच्छा पथ प्रदर्शक दूसरा नहीं मिलेगा।"

"एक बात कहूँ, बुरा तो नहीं मानोगे?"

"कहो, कहो।"

"एक दिन भगत जी किसी पोथी का प्रमाण देकर कह रहे थे कि जब व्याख्यान देने वाला मेम्बर हो तो सुनने वालों का धर्म हो जाता है कि वे चुपचाप मेम्बर की महात्म्य का व्याख्यान सुनते रहें। तुम मेरी बात तो समझना ही नहीं चाहते, देवकान्त! तुम्हारे दिमाग पर कलकत्ता क्यों सवार है।"

"कलकत्ता से आरम्भ किये जाने वाले कार्य से भी दिसाँगमुख का लाभ पहुँचेगा।"

"और दिसाँगमुख से ही कार्य आरम्भ करने से क्या दिसाँगमुख को हानि पहुँचेगी? खैर छोड़ो। चलो जरा भगत जी को देखें कि किस प्रकार कलाइयाँ खेल रहे हैं।"

"भगत जी का तो बहाना है। मैं सब समझता हूँ। याद है धनसिंह उस दिन धनानन्दी की लड़की मालती पर ताना तोड़ता रहा, फिर वह भगत जी की लम्बी मुस्ताप की गाथा ले बैठा। कम्प पोस्टर के मेम्बर इसी प्रकार बातें करते हैं। जब सामने कोई बड़ी बात न हो तो आदमी छोटी बात करने पर मजबूर होता है। कलकत्ता में ऐसे-ऐसे होटल हैं, जहाँ हिन्दुस्तानियों को घुसने की आज्ञा नहीं। अँग्रेजों को खुली आज्ञा है कि वे अपने कुत्तों को भी ले जायें। इसी प्रकार का अपमान-भरा व्यवहार देखकर ही तो भीरद का बापू विलायत चला गया। उस ने सौगन्ध खा ली कि जब तक देश स्वतन्त्र नहीं हो जाता, वह लौटकर देश में नहीं आयेगा।"

एक चक्कर, दो चक्कर, तीन चक्कर। अतुल और देवकान्त आखिर धनसिंह की दुकान पर आकर चाय पीने लगते हैं। सामने धनानन्दी की लड़की मालती पैसे गिन गिनकर रखती जाती है; कभी-कभी नज़र भरकर

देखने लगती है कि कितने गाहक चाय पी रहे हैं। एक गिलास, गिलास, तीन गिलास—भाभी को शायद यह हिसाब भी रखना पड़ता है

रतन पास से कहता है "चौदह है चौदह।"

"तो गिनती मक्खी बाल!" धनसिंह हँसता है।

"तुम्हारी चाय में कोई मजा नहीं!" रतन जोर देकर कहता है "तुम साला अपनी चाय की प्रशंसा करते रहो। चाय भी कोई पीने की चीज है!"

"तो शुरू कर दिया सगुन का काम!" धनसिंह चाय का गिलास रतन के हाथ में देते हुए कहता है, "शुरू कर दी हजामत। तुम मुफ्त का लगाते हो। तुम से तो मुफ्त हजामत बनवाने में भी घाटे का सौदा है।"

साँझ उतर रही है। हाट-बाजार की रौनक घट रही है। भगत की बी बनी हुई चटाइयाँ समेटने के लिए चन्नतारा चली आई।

"इसे चाँद कहें या तारा या दोनों कहें!" देवचन्द प्रसून के कान में कहता है, "मेरी मानो। इस के चक्कर में भूलकर भी न फँसना। मेरी बात याद रखो, यही पुरानी कहावत—मेरा बेटा राजा बनेगा तो मुझे सिर के बालों से पकड़कर बीच सड़क में खड़ी कर लेगा। हाँ, तो मारता माता को इस अपमान से बचाना होगा।"

प्रसून चुप रहता है। चन्नतारा चटाइयों का बण्डल उठाकर घर की ओर जा रही है।

चार



ब्रह्मपुत्र के किनारे मछलियों ने एक सभा बुलाई। छोटी मछलियाँ भी आईं और बड़ी मछलियाँ भी। सभा में बहुत शोर था। रोहू, चरची, सोल, कावई, और गोरोइ जैसी चतुर मछलियों से लेकर टोरीखोला जैसी एकदम मूर्ख मछलियाँ भी एक-एक करके सभा में आ बैठीं।

सब ने एकमत होकर गंजी बुढ़िया गोरोई को सभा की मुखिया चुना। सभा का काम चलाने का कार्य नटखट चंगेली को सौंपा गया। चंगेली ने चीतल से प्रार्थना की कि वह सभा के सम्मुख अपने विचार रखे।

चीतल ने हाथ जोड़कर सब को प्रणाम किया और अपना भाषण आरम्भ किया—'बहनो और भाइयो, हमारे शत्रु तो बहुत हैं, पर उन में मनुष्य नाम का प्राणी ही सब से दुष्ट है। हमें पकड़ने के लिए उस ने अनेक प्रकार के जाल बना रखे हैं। मेकली, जाँगी और पुकुन्य जैसे बड़े बड़े जाल तो वह लगाता ही है, साथ ही पोखरों में बाखोर, पलाह, चाल्नी और चपा जैसे टोकरी की श्रेणी के जालों में भी वह हमें पकड़ता रहता है। हमें पकड़कर खाता है मनुष्य। कभी कच्चे तेल में तलता है तो कभी आग में भूनकर खा जाता है। यह सब उपाय मनुष्य ही जानता है और कोई नहीं। हमें अपने बचाव का उपाय सोचना चाहिए।'

सभा में आई हुई मछलियों ने खुश होकर चीतल की बात मानी। बहुत शोर हुआ। सभी की मुखिया गंजी बुढ़िया गोरोइ और सभा का काम

चलाने वाली नटखट चमेली ने बड़ी मुश्किल से शोर बन्द कराया और पीतल से कहा गया कि वह जल्दी-जल्दी अपना भाषण समाप्त करे। हाँ, तो पीतल ने कहना आरम्भ किया— मनुष्य भी कभी बछड़े रहे होंगे।'

एक साथ कई कहकहे बुलन्द हुए।

एक ने कहा, "कहानी तो अच्छी है।"

"पर कहानी है झूठी।" दूसरे ने कहा, "भला ऐसा भी हो सकता है कभी!"

धर्मानन्दी ने गम्भीर होकर कहा :

"मधुल पर अध्यापक भगत का प्रभाव पड़ गया। वह सब को भगत बनाना चाहता है। सब लोग भगत कैसे बन सकते हैं!"

"पूरी कहानी तो सुन लो!" मधुल मुस्कराया।

"सुनाओ, सुनाओ!" धर्मानन्दी ने खीजकर कहा।

'हाँ तो जब पीतल ने अपने भाषण में कहा कि मनुष्य भी कभी बछड़े रहे होंगे तो मक्खियों की सभा में बहुत शोर हुआ। जब शोर थमा तो पीतल ने बताया— मनुष्य को तो संसार में सब की सेवा के लिए भेजा गया था। इसीलिए तो वह गाय, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़ा, हाथी—सभी की सेवा करता है उन्हें पालता है, खाने को देता है, गोबर और लीद उठाता है। बकरी की मेंगनी तक साफ करता है। पर जब वह हमें पकड़ता है, तो हमें पालने की बजाय खा जाता है। सब पशुओं में बच्चा माँ के दूध पर जीता है। आप ने देखा होगा कि मनुष्य गाय का दूध पीता है। इस हिसाब से मनुष्य बछड़ा ही तो हुआ। बुद्धि में मनुष्य गाय से बढ़कर नहीं हो सकता। इसलिए— "

फिर एक साथ कहकहे बुलन्द हुए। एक ने कहा, "यह बिल्कुल मनघड़न्त कहानी है।"

दूसरे ने कहा, "कहानियाँ तो मनघड़न्त ही होती हैं। अब पूरी कहानी क्यों न सुन ली जाय!"

मधुल ने जोर देकर कहा

"इस में एक बात भी झूठी नहीं है। यह कहानी उतनी ही सच्ची है जितनी सच्ची बात है ब्रह्मपुत्र का डिहिंगमुख के पास से बहना। तुम इसे सच नहीं मानते, न मानो।"

"सुनाओ, सुनाओ!" धर्मानन्दी ने पुचकारा।

"हाँ, तो जब पोठिया ने बताया कि बुद्धि में मनुष्य नाग से बढ़कर नहीं हो सकता, गागल ने झट उठकर कहा—'मैं चाहूँ तो मनुष्य को अपनी उंगलियों पर नचा सकती हूँ।' सिंगी ने यह सुझाव रखा कि चाची गेड़गेरी को बुलाया जाय जो न जाने किस बात पर क्रुद्ध होकर सभा में नहीं आई थी। इस बात पर तो सभा की मुखिया बड़ी बुढ़िया गोरोइ को भी सहमत होना पड़ा कि मनुष्य से छुटकारा पाने का उपाय गेड़गेरी ही बता सकती है। यह बात तो छोटी-बड़ी सभी मछलियाँ सुन चुकी थीं कि जब तिब्बत और असम में पहली बार युद्ध हुआ था तो एक अरब अस्सी करोड़ तिब्बती योद्धाओं में से एक अरब योद्धाओं को चाची गेड़गेरी अकेली ही निगल गई थी। हाँ, तो बड़ी मुश्किल से चाची गेड़गेरी को बुलाया गया। गेड़गेरी बहुत बूढ़ी थी। यह कुछ कम बात भी तो न थी। पहले मुखिया की आज्ञा से पंगोली को भेजा गया कि वह गेड़गेरी को बुलाकर लाये, पर पंगोली ने गेड़गेरी को कुछ इस प्रकार पुकारा कि उस ने आने से इन्कार कर दिया, फिर जब पोठिया को भेजा गया तो उस ने चाची गेड़गेरी को माँ कमलमती कहकर खुश कर दिया। गेड़गेरी अभी सभा में आई ही थी और मुखिया ने अभी उस से कुछ कहने के लिए प्रार्थना की ही थी कि पोठिया का पेट फूलकर कुप्पा होते-होते फट गया। पेट फटने की आवाज़ से छोटी-बड़ी मछलियाँ डर गईं। उन्होंने समझा कि न जाने क्या हो गया और मनुष्य भी जाल उठाये आ रहा होगा ब्रह्मपुत्र की ओर। तब मछलियाँ देखते-देखते पानी में गुम हो गईं "

एक साथ कई कहकहे बुलन्द हुए। एक ने कहा, "तुम धरती पर उगे थे या अम्बर से उतरकर आ रहे हो, मकुन!"

दूसरे ने कहा, "अब चलोगे भी या बातें ही करते रहोगे।"

धर्मानन्दी हँसकर बोला, "लो उठाओ जाल, अब चलना चाहिए।"

मछलियाँ उठाते वे चले आ रहे थे। वातावरण में मछलियों की बास रची हुई थी। ब्रह्मपुत्र की ओर से आने वाली हवा उन्हें थपकियाँ दे रही थी।

धर्मानन्दी ने चलते-चलते कहा:

"अतुल, हम तुम्हारी बात मान लें तो हमारा विनाश ही न हो जाय। फिर हम खायें क्या? हमारे पास खेत कहाँ हैं? पुरखों से यही हमारा धन्धा है। भगवान् ने हमें इसीलिए बनाया है। हमारी रोज़ी इसी से बँधी ही है।"

एक नवयुवक ने चुटकी ली:

"अतुल, तुम ने कहानियाँ बहुत अच्छी अच्छी याद कर रखी हैं। हर रोज़ आ जाया करो। हम मछलियाँ पकड़ते-पकड़ते थक जाते हैं, तुम और कहानी सुना दिया करो।"

अतुल ने गम्भीर होकर कहा:

"न मानो मेरी बात। सुन तो लो। तुम मछलियाँ पकड़ते हो, पर अच्छा नहीं करते। सारी मछलियाँ ब्रह्मपुत्र ने पाली हैं। बड़ा ही वह नटखट देव उन के साथ लहरों में खेलता है और अपना जी बहलाता है। यही मछलियाँ उसकी सब-कुछ हैं। तुम इन्हें पकड़कर बाज़ार में बेच डालते हो। तुम इन्हें खाते हो। इसी से तो बड़ा यह पुत्र तुम से बिगड़ा रहता है। क्रोध में आकर यह हमारी खेती नष्ट कर डालता है, हमारे घरों को बहा ले जाता है, फिर भी तुम नहीं मानते। तुम ब्रह्मपुत्र की माया समझते ही नहीं। यह बाढ़ और तबाही ही तो ब्रह्मपुत्र की माया है।"

ब्रह्मपुत्र पीछे रह गया था। अतुल की बात भी बहुत पीछे छूट गई थी। प्रत्येक मछुए की कल्पना में चूल्हे से उठता हुआ धुआँ उभर रहा था। चूल्हे पर चढ़ी हुई पतीली का चेहरा ही इस समय हर किसी के लिए सब से बड़ा आकर्षण था। धर्मानन्दी की कहानी तो परलोक सिधार गई

अतुल, नहीं तो यह उठती जवानी और मार्क्सिज्म की यह मौत। बाप बाप, यह भी क्या तमाशा है!"

तीसरी आवाज आई, "क्या करे अतुल बेचारा!"

अतुल ने कुछ कहने का यत्न किया, पर एक साथ बहुत से आदमियों के हँसने की आवाज वातावरण में गूँजकर रह गई।

पाँच



गिरौमपुर की पाँच बस्तियाँ थीं—आलीसीगा की मीरी बस्ती, आलीसीगा की मुसलमान बस्ती, बलमा, बिलासिया और बेलगाँव। कुछ लोग आलीसीगा को एक ही बस्ती गिनते थे। धर्मानन्दी का घर गिरौम नदी के किनारे बलमा में था। मंगुल मास्टर आलीसीगा की मुसलमान बस्ती के इधर वाले किनारे पर रहता था, जहाँ से धनसिंह और रतन की दुकानें बहुत दूर न थीं। मीरी बस्ती और मुसलमान बस्ती के बीच नीलमणि और कल्याण मास्टर के घर आमने-सामने थे। बीच से सड़क गुज़रती थी, जो ब्रह्मपुत्र के समानान्तर जाकर आगे से ब्रह्मपुत्र की ओर मुड़कर स्टीमर-घाट तक चली जाती थी।

ब्रह्मपुत्र गाँव के उत्तर में था। पश्चिम में बेलगाँव से आगे सड़क शिवसागर की ओर चली गई थी और इस सड़क के किनारे दोनों ओर थोड़े थोड़े अन्तर पर कई गाँव आबाद थे। पूरब में गिरौम नदी के उस पार ब्रह्मपुत्र के समानान्तर बिलासिया बस्ती थी, जहाँ अधिकांश नेपाली ग्वाले रहते थे। पश्चिम की ओर था मिसरीगाँव गाँव, जहाँ मीरी लोगों की संख्या अधिक थी।

गिरौम नदी के उस पार ठीक बलमा गाँव के सामने बलमा झील थी, जिसे 'बलमा बिल' कहते थे। बलमा बिल और बिलासिया के बीच थी धकुआ बिल। इस झील का घेरा बलमा से भी बड़ा था। दोनों झीलों के चतुर्दिक घना जंगल था। दोनों झीलों में मछुए मछलियाँ पकड़ते थे।

जिधर बाँस का बहुत बड़ा झुंड था। बाँस-झुंड के पीछे था पोखर, जिस में बत्तखें तैरती रहती थीं। इससे सूरज के प्रकाश में तैरती हुई बत्तखें और भी भली प्रतीत होती थीं।

सात-सात गायें बँधी थीं गोशाला में; पाँच जोड़ी बैल थे। नीलमणि के पास बारह पुरा माटी थी। इतना उर्वर था कि सोना उगलता था। फिर इतना बड़ा बागीचा था, जिस में एक ओर ताम्बूल के पेड़ों की पाँत थी, जिन पर पान की बेलें चढ़ी हुई थीं, दूसरी ओर केले के पेड़ चले गये थे। आम और कटहल के पेड़ों की दो अलग अलग पाँतें भी बहुत गुथी हुई थीं।

मछुओं और नाविकों से बात करने का नीलमणि को बहुत चाव था। जब भी वह सामने देखता हुआ नाव-घाट की ओर जाने लगता, पीछे से उसकी घरवाली सोनपाही पुकारकर कहती, "उठाए लंगोटी और चल पड़े नाव-घाट की ओर! वहाँ क्या रखा है तुम्हारे लिए!" नीलमणि भी कब रुकने वाला था! चलते-चलते सोचता—अतुल को तो कुछ नहीं कहती, चाहे देवकान्त के साथ घूमता रहे, चाहे धनानन्दो की मछलियों की बास सूँघता फिरे! वैसे तो वह मछली को हाथ नहीं लगाता, फिर भी धनानन्दो के पास क्या करने जाता है? वैसे तो अतुल बाँस के डण्डे-जैसा बेटा है। बीस वर्ष का हो गया। दस वर्ष का तो है हमारा मरूना, जो स्कूल में पढ़ने जाता है। छः वर्ष की है हमारी रेणु, जो अब तक तोतली बातें करती है। घर में किसी वस्तु की कमी नहीं—न दूध की, न पूत की; फिर भी सोनपाही का रंग पीला क्यों पड़ता जा रहा है! माँ ने भी क्या सोचकर नाम रखा होगा—सोनपाही अर्थात् सोने का फूल, जैसे किसी ने चन्दन का लेप मुख पर पोत दिया हो। मुँह की कड़वी है। लाल मिर्च ही तो है। वैसे ही कट करती है। उसे इस घर में आये बारह साल हो गये, पर वह अब तक मुझे नहीं समझ सकी। कहती है—उठाए लंगोटी और चल पड़े नाव-घाट की ओर! वहाँ क्या रखा है तुम्हारे लिए!

नाव घाट की ओर जाते हुए पहले पानी-घाट पड़ता था। पनहारिनों

की मूरतें नीलमणि को अच्छी लगती थीं। एक-दूसरी पर छींटे उड़ाने के उन के स्वभाव से नीलमणि को क्या लेना-देना था? नाव-घाट की ओर जाते हुए वह एक क्षण के लिए भी पानी-घाट पर नहीं रुकता था। पनहारिनों की आपस की नोकझोंक तो उन का निजी मामला था। नाव-घाट पर पहुँचकर नीलमणि को याद आता कि यहाँ वह पहले-पहल अपने पिता के साथ आया था। तब भी ब्रह्मपुत्र इसी प्रकार बहता था। ब्रह्मपुत्र के किनारे नंगे पैर चलने में उस समय कितना आनन्द मिलता था। यह तो चालीस वर्ष पूर्व की बात थी, जब वह मुश्किल से पाँच-छः वर्ष का रहा होगा। उतना ही छोटा था उसकी बेटी रेणु थी। उस ने अपने पिता से कहा था कि उस के लिए एक नाव बनवा दें। पिता ने वचन तो दे दिया था, पर इसे पूरा नहीं किया था। यह तो चालीस वर्ष पूर्व की बात थी, फिर भी उसको याद तो ताजा थी—फूल की तरह ताजा। याद का फूल तो खिला रहता है हमेशा। इसकी सुगन्ध स्थिर रहती है। खेल-खेल में नीलमणि ने मक्खी की नाव बना ली थी। इस नाव को उस ने घर के पोखर में चलाकर देखने की ठानी थी। कभी कुम्हार आ गया था—उसका पिता कुम्हार को उन दिनों विश्वासपात्र था गाँव-बूढ़ा था। हाँ, तो गाँव-बूढ़ा कुम्हार ने हँसकर कहा था—मेरा नीलमणि, तू इतना ही चमत्ता रहेगा, तो तू मेरे समान एक दिन गाँव-बूढ़ा कैसे बनेगा? अरे पगले, कभी पानी में मक्खी की नाव भी चलती है? हाँ तो बापू का कहना मानकर मैंने अपनी मक्खी की नाव पोखर में नहीं डाली थी और उन्होंने काठ की नाव बनवा दी थी। उस काठ की नाव को एक दिन कोई चम्पा उठाकर ले गया। फिर ढूँढने पर भी वह हाथ न लगी। वे बचपन के दिन तो बहुत पीछे छूट गये थे।

नाव घाट पर पहुँचकर नीलमणि देखता कि कोई नाव से उतर रहा है, कोई चढ़ रहा है। जीवन तो यात्रा है, वह सोचता, स्वप्न-यात्रा हो चाहे सत्य-यात्रा। नाव-घाट की याद ही नीलमणि के बचपन की सब से बड़ी याद थी। बचपन की याद तो देर तक प्रिय लगती है, जैसे मधु

जिधर बाँस का बहुत बड़ा कुंज था। बाँस-कुंज के पीछे था पोखर, जिस में बत्तखें तैरती रहती थीं। झुकते सूरज के प्रकाश में तैरती हुई बत्तखें और भी भली प्रतीत होती थीं।

साथ-साथ गायें बँधी थीं गोशाला में पाँच जोड़ी बैल थे। नीलमणि के पास बारह पुरा माटी थी। इतना पठार था कि सोना उगलता था। फिर इतना बड़ा बागीचा था, जिस में एक ओर ताम्बूल के पेड़ों की पाँत थी, जिन पर पान की बेलें चढ़ी हुई थीं, दूसरी ओर केले के पेड़ चले गये थे। आम और कटहल के पेड़ों की दो अलग-अलग पाँतें भी बहुत सुखी हुई थीं।

मछुओं और नाविकों से बात करने का नीलमणि को बहुत चाव था। जब भी वह लाठी टेकता हुआ नाव-घाट की ओर जाने लगता, पीछे से उसकी घरवाली सोनपाही पुकारकर कहती, "उठाए हंगोरी और चल पड़े नाव-घाट की ओर! वहाँ क्या रखा है तुम्हारे लिए!" नीलमणि भी कब रुकने वाला था! चलते-चलते सोचता—अतुल तो कुछ नहीं करता, चाहे देवकान्त के साथ घूमता रहे, चाहे ब्रह्मानन्दी की मछलियों की बास सूँघता फिरे! वैसे तो घर मछली को हाथ नहीं लगाता, फिर भी ब्रह्मानन्दी के पास क्या करने जाता है! वैसे तो अतुल बाँस के डण्डे-जैसा पेड़ा है। बीस वर्ष का हो गया। दस वर्ष का तो है हमारा मदना, जो स्कूल में पढ़ने जाता है। छः वर्ष की है हमारी रंगु, जो अब तक तोतली बातें करती है। घर में किसी वस्तु की कमी नहीं—न दूध की, न पूत की फिर भी सोनपाही का रंग पीला क्यों पड़ता जा रहा है! माँ ने भी क्या सोचकर नाम रखा होगा—सोनपाही अर्थात् सोने का फूल, जैसे किसी ने चन्दन का लेप मुख पर पोत दिया हो। हुँह की बाती है। लाल मिर्च ही तो है। वैसे ही बात करती है। उसे इस घर में आये बारह साल हो गये, पर यह अब तक मुझे नहीं समझ सकी। कहती है—उठाए हंगोरी और चल पड़े नाव-घाट की ओर! वहाँ क्या रखा है तुम्हारे लिए!

नाव घाट की ओर जाते हुए पहले पानी घाट पड़ता था। पनहारिनी

की चुरतें नीलमणि को अच्छी लगती थीं। एक-दूसरी पर छींटे उछाले के उन के स्वभाव से नीलमणि को क्या लेना-देना था? नाव-घाट की ओर जाते हुए वह एक क्षण के लिए भी पानी-घाट पर नहीं रुकता था। पनहारिनों की आपस की छेड़छाड़ तो उन का निजी मामला था। नाव-घाट पर पहुँचकर नीलमणि को याद आता कि यहाँ वह पहले-पहल अपने पिता के साथ आया था। तब भी ब्रह्मपुत्र इसी प्रकार बहता था। ब्रह्मपुत्र के किनारे नंगे पैर चलने में उस समय कितना आनन्द मिलता था। यह तो चालीस बरस पूर्व की बात थी, अब वह मुश्किल से पाँच-छः बरस का रहा होगा। उतना ही जितनी अब उसकी बेटी रेणु थी। उस ने अपने पिता से कहा था कि उस के लिए एक नाव बनवा दे। पिता ने वचन तो दे दिया था, पर इसे पूरा नहीं किया था। यह तो चालीस बरस पूर्व की बात थी, फिर भी उसमें चाह तो ताज़ा थी—फूल की तरह ताज़ा। चाह का फूल तो खिला रहता है हमेशा। इसकी सुगन्ध स्थिर रहती है। खेल-खेल में नीलमणि ने माटी की नाव बना ली थी। इस नाव को उस ने घर के पोखर में चलाकर देखने की ठानी थी। अभी कुम्हार आ गया था—उसका पिता कुम्हार को उस दिन निर्मासिंधु का गाँव-बूढ़ा था। हाँ, तो गाँव-बूढ़ा कुम्हार ने हँसकर कहा था—मेरा नीलमणि, तू इतना ही पगला रहेगा, तो तू मेरे समान एक दिन गाँव-बूढ़ा कैसे बनेगा? अरे पगले, कभी पानी में माटी की नाव भी चली है? हाँ, तो बापू का कहना मानकर मैंने अपनी माटी की नाव पोखर में नहीं डाली थी और उन्होंने काठ की नाव बनवा दी थी। उस काठ की नाव को एक दिन कोई बच्चा उठाकर ले गया। फिर ढूँढ़ने पर भी वह हाथ न लगी। वे बचपन के दिन तो बहुत पीछे छूट गये थे।

नाव घाट पर पहुँचकर नीलमणि देखता कि कोई नाव से उतर रहा है, कोई चढ़ रहा है। जीवन तो यात्रा है, वह मोक्ष-यात्रा, स्थल-यात्रा हो चाहे जल-यात्रा। नाव-घाट की याद ही नीलमणि के बचपन की तब से बड़ी याद थी। बचपन की याद तो देर तक प्रिय लगती है, जैसे मधु

जितना भी पुराना हो उतना ही मीठा होता है। जो नावरिया सीधे मुँह बात नहीं कर सकता, उसे तो नाव चलाने का काम छोड़कर कोई और काम कर लेना चाहिए। नावरिया को तो बहुत शान्त स्वभाव का होना चाहिए। जो नावरिया नाव में बैठने वालों के साथ झुंझला करे, या घोड़े की तरह हिनहिनाये, या मूर्ख की तरह दाँत निकाले, उस के साथ तो बात करना भी अपमान है। और किसी से बात करने की आवश्यकता ही क्या है! जीता रहे अपना बादल नावरिया!

मछुए और नावरिया गाँव-बूढ़ा का बहुत सम्मान करते थे। उस के साथ दो बोल बोलने से जैसे कोई बहुमूल्य वस्तु उन के हाथ आ जाती। एक-दो मछलियों के लिए तो कभी मछुआ नीलमणि के मुँह न आता। वरन भी नावरिया इसे अपना सौभाग्य समझता कि गाँव-बूढ़ा उस की नाव में बैठा है, पर यह तो सभी जानते थे कि नीलमणि तो बादल से ही बातें करने के लिए आता है।

बादल ने ही बचपन में नीलमणि की काठ की नाव चुराई थी। उस को वह मांझी की नाव तो किसी बच्चे ने चुराने की आवश्यकता अनुभव न की थी।

आज से बीस वर्ष पूर्व नीलमणि को एक सपना आया था। यह उन दिनों की बात थी, जब अतुल का जन्म हुआ था और वह केवल सात दिन का ही था। नीलमणि का पिता अभी जीवित था। अतुल के सिर पर हाथ फेरते हुए नीलमणि के पिता ने आशीर्वाद दिया था कि जैसे उसका बेटा उस के सामने गाँव-बूढ़ा बना, वैसे ही उस के बेटे के सामने उसका पोता भी *गाँव-बूढ़ा बने।* यह कहते-कहते बूढ़े कुलधर की आँखों में आँसू आ गये थे, क्योंकि वह जानता था कि वह तो पचास से ऊपर का हो गया और वह उस समय तक तो कदाचित जीवित न रह सके। वही बात हुई। अतुल अभी मुश्किल से दस वर्ष का रहा होगा, जब बूढ़ा कुलधर पैंसठ वर्ष की आयु में हिरलिंगमुख से गिरा हो गया था।

कुलधर गाँव बूढ़ा तो चला गया था। अब तो नीलमणि गाँव-बूढ़ा

भी सोच रहा था कि न जाने कब बुलावा आ जाय और दिहिंगमुख से विदा होना पड़े। कभी-कभी वह सोचता कि यह विचार तो अभी से नहीं आना चाहिए। जब बापू को बुलावा आया तो उन्होंने दस वर्ष के पोते को देखते-देखते ही आँखें बन्द की थीं। तो फिर मैं भी तो इतना भाग्यवान हो सकता हूँ कि जब बुलावा आये तो मछुआ गाँव-बूढ़ा बन चुका हो, बल्कि मेरे सामने मेरा पोता भी खड़ा हो।

बीस वर्ष पूर्व देखा हुआ सपना नीलमणि की स्मृति को गुदगुदाने लगता। वह सपना कितना विचित्र था। सपने में नीलमणि ने देखा था कि उस की माझी की नाव ब्रह्मपुत्र में चल निकली है। वह अपने बापू को आवाज दे रहा था कि नन्हे नावरिया की माझी की नाव पर वह भी आ बैठे। सवेरे आँख खुलने पर उस ने देखा कि वह तो अपने बिस्तर पर लेटा हुआ है और उसका बापू अपने सात दिन के पोते के सिर पर हाथ फेर कर आशीर्वाद दे रहा है। वह अपना सपना बापू को बताये बिना नहीं रह सकता था। जब उस ने बापू को बताया था कि सपने में उस की माझी की नाव चल निकली थी, तो बापू ने हँसकर कहा था, "आज तो मेरा पोता सात दिन का हो गया, नीलमणि! अब तो अवश्य चलेगी हमारी नाव, अवश्य चलेगी ब्रह्मपुत्र में हमारी नाव! जिस घर में बेटे का जन्म होता है, उसकी नाव तो कहीं नहीं रुकती।" इस बात को तो बीस वर्ष हो गये।

बीस वर्ष पूर्व का समय नीलमणि की कल्पना में घूम गया, जब वह इसी घाट-बाट पर पुत्र के जन्म की खुशी में नारियल चढ़ाने आया था। एक मटकी दूध भी तो उस ने ब्रह्मपुत्र की भेंट किया था। नीलमणि जानता था कि उस के अपने जन्म पर भी तो बापू ने इसी प्रकार ब्रह्मपुत्र में नारियल और दूध चढ़ाया होगा। दिहिंगमुख का तो प्रत्येक बालक ब्रह्मपुत्र का वरदान था।

बापू नावरिया ने ही बचपन में उस को घाट की नाव सुपुर्द की, पर नन्हीं-सी खिलौना नाव—यह विचार नीलमणि को सताने लगा। बचपन के दिन तो बहुत पीछे रह गये थे। बापू कहीं नजर नहीं आ रहा

था। वह नाव लेकर उस पार गया था। नीलमणि की कल्पना में बादल का अंग भड़ग शरीर घूम गया। वस्त्र के नाम पर बादल एक धोती पहनता था—चौड़ी बलिष्ठ हड्डियाँ, तरबूज जैसा सिर, आँखें बड़ी बड़ी और चमकीली। बादल नायरिया तो ब्रह्मपुत्र को ही अपनी बेटी समझता था। उसका तो आस-पास नाव ही से बँधा रहता था, वैसे धर्मानन्दी ब्रह्मपुत्र के दास-पास का मछली-बास से अटूट नाता था।

सूर्यास्त से पहले ही बादल उस पार से नाव लेकर आ गया। एक एक करके सब सवारियाँ उतर गईं, तो वह दोनों बाँहें फैलाकर नीलमणि से लिपट गया

"कहो गाँव-बूढ़ा जी, कैसे आना हुआ?"

"बागीचे में बैठे-बैठे भी तो दिल नहीं लगता।" नीलमणि ने हँसने का यत्न किया "अतुल की माँ पीछे से ठाकुर चोट करे, कौन सुनता है उसकी बात! बचपन के मित्र कहाँ धरे हैं! क्यों बादल, कभी तुम्हें भी याद आते हैं बचपन के दिन।"

"बचपन में यह दौड़ा-दौड़ी तो न थी। अब तो नाव खेते-खेते ही सारी जवानी निकल जाती है, देवता!"

"यह तो अपना अपना धन्धा है बादल! जो खेती करता है, उसे भी तो माटी के साथ माटी होना पड़ता है। यह और बात है कि अपने दिसाँगमुख की माटी तो पूरी सोना माटी है। अरे और क्या होती है सोना माटी, बादल! जिस में सोना उगे, वही सोना माटी है।"

"आप तो भाग्यवान हैं, देवता! कल आपका बापू गाँव-बूढ़ा था, आज आप गाँव-बूढ़ा हैं, कल अतुल होगा गाँव-बूढ़ा—इधर भी घी में, उधर भी घी में। पर हमारी जो थोड़ी-बहुत मान-प्रतिष्ठा है, वह तो इसी ब्रह्मपुत्र से है। जिस दिन आर-पार चार फेरे लगा लूँ, दाल-भात मिल जाता है। और जिस दिन से हरामी सरकार ने इंजिन वाली नाव का ठेका लेकर पेलन को खड़ा कर दिया है मेरे सम्मुख, उस दिन से तो पेट पालना भी कठिन हो गया है।"

"मेकन की नाव में तो दुगुनी सवारियाँ बैठ सकती हैं, इसलिए भाड़ा भी आधा लगता है। पार लगने में समय भी थोड़ा ही चाहिए। फिर भी तुम्हारे ग्राहक तो तुम्हारे ही हैं, पाहल! घबराते क्यों हो?"

"घबराऊँ कैसे नहीं, देखता! वह लेता है चवन्नी, मैं लेता हूँ अठन्नी। अब कठिनाई तो यह है कि मैं तो अपनी नाव के लिए यात्रियों को उसी समय पुकार सकता हूँ, जब बतख वापरिया इंजिन वाली नाव को भरकर जा चुका होता है। मेकन के साथ तो बस एक ही आदमी होता है जो इंजिन चलाना और बन्द करना जानता है, और मेरे साथ तो दो-दो तीन-तीन आदमी रहते हैं। अब क्या मैं खा लूँ और क्या उन्हें दूँ खाने के लिए? जब अपना ही पेट न भरे तो बालबच्चों का पालन कैसे किया जाय?"

इतने में धर्मानन्दी भी अपनी नाव लेकर आ गया। उस ने दूर से आवाज दी, "चीतल पूँ या चवन्नी, यौन-चुड़ा जो! अपने पास और क्या मिलेगा? सिंगी और गागल तो आज हाथ नहीं लगीं।"

पाहल से हाथ छुड़ाकर नीलमणि भट्ट धर्मानन्दी के सामने जाकर खड़ा हो गया।

छः



नीले निर्मल आकाश पर सारसों की श्वेत पाँत उड़ी ज
रही थी। पानी-घाट पर पानी भरती कुमारियों ने उ
देखा, तो उन्हें बचपन का खेल याद आ गया। उ
में गुनदाया भी थी। अपना-अपना कलसा घाट प
रखकर कुमारियाँ बाँह-में बाँह डाले बचपन का खे
खेलने लगीं। स्वर-में-स्वर मिलाकर वे गा रही थीं—

'सारस, सारस, कहाँ चले ?'

लहरें किनारे को छू रही थीं, जैसे लहरें भी यही कह रही हों—'सारस, सारस, कहाँ चले ?' यौवन सामने था, बचपन बहुत पीछे छूट गया था। आकाश पर सारस उड़े जा रहे थे।

सहसा युवतियाँ नाचते-नाचते रुक गईं। किसी ने गुनदाया के कान में कहा, 'वह रहा तेरा सारस !'

गुनदाया ने देखा कि मधुप चला आ रहा है। सारस तो चले गये थे। नीले आकाश पर अब श्वेत सारसों का कहीं आभास भी न हो सकता था।

मधुप एक ओर खड़ा दूर से गुनदाया को सारस का खेल खेलते देखता रहा। पर यह खेल शीघ्र समाप्त हो गया। युवतियों ने एक-दूसरी की बाँह छोड़ दी। पानी से भरा हुआ अपना अपना कलसा उठाया और वे गाँव की ओर चल पड़ीं।

मधुप के पास से गुजरते हुए किसी भी युवती को हँसने का साहस न

हुआ। कुन्तारा ने श्वेत 'मेखला' पहन रखी थी। जैसे तहमद बाँधा जाता है, उस से थोड़ा ऊपर की ओर खींचकर युवतियाँ मेखला बाँधती थीं। श्वेत मेखला के साथ श्वेत ही अँगिया पहनती थी कुन्तारा। श्वेत अँगिया और मेखला से मेल खाती हुई श्वेत चादर कन्धों पर। कुन्तारा का वेश सब सखियों में विशिष्ट था। शेष कन्याओं में से तो किसी-किसी ने लाल, नीली या पीली मेखला पहन रखी थीं। किसी-किसी ने तो आज अँगिया पहनने की आवश्यकता अनुभव न की थी। कुन्तारा को श्वेत वस्त्र ही अधिक प्रिय थे। महास्थविर बनने की प्रेरणा उसे शरण से ही प्राप्त हुई है, यह सोचकर प्रद्युम्न ने कुन्तारा की अभिरुचि की सराहना की।

फिर उस ने अपने श्वेत वस्त्रों की ओर देखा। वस्तुतः वह किसी शरण से कम न था। वह अपने स्थान पर खड़ा रहा, जैसे उस ने अभी-अभी एक सपना देखा हो। शरणों पर मुग्ध होने वाली कुन्तारा! वह भी तो अपनी सखियों की पाँत के साथ उड़ गई। कितनी गम्भीर नजर आ रही थी, जैसे मुझ से कोई परिचय ही न हो। मैं तो उसे नित्यप्रति देखता हूँ। हमारे बगीचे के सामने ही तो है मगध जी का बगीचा। मगध जी के बगीचे का पिछवाड़ा मसपुर की ओर है। पानी-भरने को बाहर जाना होता है, तो वह पिछवाड़े ही से उधर आती है। डेढ़ मील से तो क्या कम होगा यहाँ से मसकीसीमा, पर सखियाँ साथ हों तो यह मार्ग शीघ्र कट जाता है।

उस की कल्पना में कुन्तारा झूमती-झामती चली आ रही थी, जैसे उस की बड़ी-बड़ी आँखों का मादक अनुराग उसे सहज ही छू रहा हो। कुन्तारा की ठोड़ी पर एक काला-सा तिल भी तो था, जैसे इतनी दूर से वह तिल भी उसे अपनी ओर खींच रहा हो। कुन्तारा को तो वह बचपन से ही देखता आया था। उस के गले में मूँगों की माला रहती थी। माला पहनने की यह अभिरुचि भी कुन्तारा ने शरण से ली होगी, यह सोचकर प्रद्युम्न मुस्कराया। दोनों हाथों से आँखें मलकर उस ने प्यार से देखा, जैसे वह कुन्तारा की मुस्कान एक बार अवश्य देख लेना चाहता हो।

शीतकाल में शरण नीचे उतर आते थे और माघ आरम्भ होते ही

फिर कैसे पर्वतों की ओर लौट आते थे। देवकान्त ने अतुल को बताया था कि सारस तो तिब्बत से आते हैं, वहाँ उन के लिए और्त्त के सिवा विपिन पोष व्यापार करते थे। देवकान्त ने यह भी तो बताया था कि सारस तो कदाचित् और भी परे से आते हैं। कैसे हिम-मण्डित शिखरों को पार करते कभी किसी सारस को निमोनिया न होता था।

जैसे किसी ने अतुल के पैर बाँध दिये हों। उस की कल्पना में दर्पण के सम्मुख बैठी सुनतारा का चित्र उभरा—गोल मुखमण्डल, विशाल नयन, कोमल माथा, ठोड़ी पर बड़ा-सा तिल। जब वह मुस्कराती है तो जैसे उसकी ठोड़ी का तिल भी मुस्कराने लगता है। सुनतारा दर्पण के सामने बैठी केशों की दो मोटी-मोटी चोटियाँ बना रही है। ऐसा रूप किसका होगा! अभी तो रूप में फेन उठेगा, जैसे गाय के नये दुहे गये दूध में फेन उठता है। दर्पण में अपना मुखमण्डल देखकर कभी-कभी तो सुनतारा स्वयं लजा जाती होगी! उस की कल्पना में जोर का झटका लगा, जैसे देवकान्त पुकार-पुकारकर कह रहा हो—कलकत्ता चलो मेरे साथ, अतुल! विलोमिमुख में पड़े क्या कर रहे हो! देवकान्त तो अकेला ही कलकत्ता चला गया था। चार-छः महीने के लिए कहकर गया था। अब तो उसे गये पूरा एक वर्ष हो गया। क्या नहीं वह क्या कर रहा होगा। देवकान्त ने उसे कादम्बरियों की कथाएँ सुनाई थीं, और उन कथाओं के उत्तर में उस ने देवकान्त के सम्मुख बादल मछली का बखान किया था। बादल मछली का तो रूपक दिया था उस ने। बात कुछ इस प्रकार चली थी कि कुछ स्त्रियाँ चिरयौवना होती हैं जो आयु ढल जाने पर बूढ़ी नहीं लगतीं। सुनतारा के सम्बन्ध में उस ने देवकान्त के सम्मुख यही विचार रखा था कि वह कभी बूढ़ी नहीं होगी। देवकान्त ने पूछ लिया था कि ऐसी क्या बात है जो स्त्री को बूढ़ा होने से बचाये रखती है। कलकत्ता के जीवन का उल्लेख करते हुए देवकान्त ने स्वयं ही तो बताया था कि वहाँ का जीवन तो भाग-दौड़ का जीवन है। वहाँ की दौड़-धूप में आदमी के भीतर न जाने कितना ईंधन जल-जलकर समाप्त होता रहता है। ईंधन जलने के

साथ-साथ आदमी की शक्ति का ह्रास भी होता रहता है। यहाँ दिन में आदमी बार-बार खा लेता है। थोड़ी-थोड़ी देर बाद फिर भूख लग जाती है। जो क्षुधा दिन के समय होती है, रात के समय नहीं होती क्योंकि रात को आदमी आराम से पड़ा रहता है। रात को आदमी के भीतर ईंधन उतने वेग से नहीं जलता, जितने वेग से दिन में जलता है। इसी के उदाहरण में ही तो मैं ने आज अध्यापक जी से सुनी हुई बाम मछली की बात उद्धृत की थी। मैं ने कहा था कि बाम मछली दलदल के भीतर पाँच-पाँच छः-छः मास तक कैसे जीवित रहती है क्योंकि ऊपर से दलदल सूखकर बिल्कुल बन्द हो जाता है। अगली बरसात तक बाम मछली ऐसे ही पड़ी रहती है, जैसे कोई योगी समाधि में बैठा रहता है न शक्ति का ह्रास होता है न नये ईंधन की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे ही अनन्तयौवना स्त्री की बात है। उस के रूप का ईंधन बहुत ही कम जलता है, रूप की शक्ति बनी रहती है।

अब साँझ हो रही थी।

मथुरा की बरसाती में कपड़े पर बैठी शुकतारा का चित्र उभरा। अनन्तयौवना शुकतारा स्वेटर बुन रही है। उस के हाथ में जो कला है, वह और किसी कन्या के हाथ में न होगी। इतना स्वेटर किस के लिए बुन रही है शुकतारा? पहले ही कौन-सा कम स्वेटर बुन रखा है? और उस चादर का क्या बना? गत वर्ष उस ने वचन दिया था कि मेरे लिए मखमली की चादर बुनकर देगी। ममता जी के सम्मुख ही तो शुकतारा ने वचन दिया था! पास से ममता जी ने भी अपनी आवाज मिला दी थी। पर शुकतारा उस दिन की बात भूल गई। मैं ने भी तो उसे स्मरण नहीं कराया था। टक—टक—टक!—शुकतारा का काँटा चल रहा था। बड़े वेग से शुकतारा हाथ चला रही थी। बड़ी देर तक कल्पना के रंग-महल में शुकतारा को देखता रहा।

मैं नाव-घाट की ओर जाना चाहता था, पर यहाँ खड़े-खड़े ही इतनी देर हो गई थी। नाव-घाट तो पास-पास से भी आगे था। उस के पथ पर

की ओर उठ गये।

दूर से कोई व्यक्ति उसे अपनी ओर आता दिखाई दिया। उस ने बड़े ध्यान से पहचानने का प्रयत्न किया। वह डेढ़-डेढ़ डग भरने लगा। यह तो विद्याप्रसाद आ रहा है। और तो है! "कहो मास्टर जी, किधर चले?" उस ने आगे बढ़कर पूछा।

"चलो, बाग-बाड़ तक घूम आऊँ।"

"अब तो घर जाऊँगा, मास्टर जी।"

"तुम्हारा वह देवचन्द किधर चला गया? अब फिर आयेगा या चला गया सदा के लिए? मैं कहता हूँ उस से बचकर रहना। स्वयं तो फँसेगा, तुम्हें भी फँसायेगा।'

अतुल को देवचन्द की बुराई अच्छी न लगी। यदि उसे इस बात का सम्मान न होता कि विद्याप्रसाद से ही उस ने तीन वर्ष तक स्कूल में शिक्षा पाई है, तो वह सामने से बात उठाता। बिना कुछ कहे-सुने ही वह घर की ओर पग उठाने लगा।

विद्याप्रसाद भी आगे बढ़ गया। फिर पीछे से आवाज़ देकर उस ने अतुल को पुकारा: "एक बात सुनते जाओ अतुल!"

अतुल वापस लौटकर विद्याप्रसाद के पास गया तो वह बोला, 'वह बसन्ती है न! आज वह न जाने कहाँ से एक तोता पकड़ लाया। अब इन मूर्खों को कौन समझाये कि तोता तो पेड़ों में उड़ने वाला पक्षी है, उसे पकड़ना तो महा अत्याचार है।"

सात



मालती का विचार था कि कुन्तलारा उसे झट अपने मन की बात बता देगी, पर कुन्तलारा तो बात पर मक्खी नहीं बैठने देना चाहती थी। बातों-बातों में मालती बहुत-कुछ कह गई। दूर से बात को घुमाकर लाती और फिर तिल से तेल निकालने का यत्न करती। पहले वह परी-कथा के उस राजकुमार की ओर संकेत करती रही, जो एक बार किसी की ओर मुस्कराकर देख लेता था तो वह कन्या उस पर मुग्ध हो जाती थी; फिर वह फूलों में हँसने वाली राजकन्या की कथा ले बैठी, जिस ने यह निर्णय कर रखा था कि वह तो उसी से विवाह करेगी जो उसके प्रश्नों का उत्तर दे सकेगा। मालती का विचार था कि जीवन में ठीक वैसे ही नहीं होता, जैसे कथा-कहानियों में होता है।

कुन्तलारा ने जोर देकर कहा, "हृदय तो हृदय ही रहेगा। इसका काम है धड़कना, तो इसे धड़कने से क्यों रोका जाय? पहले आँखें रीझती हैं, फिर स्नेह की छाप लगती है मन पर। आयु-पर्यन्त कन्या माता-पिता के घर भी कैसे बैठी रह सकती है? छोटी और लाडली पुत्री का जन्म भी पराये घर जाने के लिए ही होता है। जो हम से बड़ी हैं, वे कभी की चली गईं अपने-अपने साजन के घर। हम रह गईं। एक दिन तो हमारी बारी भी आकर रहेगी। यह तो जग-लीला है, कुन्तलारा! नाव को पार उतरने से काम। सुहानी रुत आती है, तो फूल अपने आप खिलता है।"

"पर जोर जबरदस्ती से तो फूल भी नहीं खिलता!" कुन्तलारा हँसकर और उसने मालती की गरदन में हाथ डालकर उसे झकझोर दिया।

"अतुल को देखा था आज ?"

"रोज ही देखती हूँ।"

"तो तेरे मन का द्वार इसी प्रकार बन्द रहेगा ?"

"आज तू कैसी बातें कर रही है, भारती !"

कुन्तवाप चाहती थी कि भारती कोई दूसरी बात करे। वह तो वहीं विवाह करायेगी, जहाँ माता पिता चाहेंगे। कई बार वह भारती से कह चुकी थी कि उसका बापू तो उसे मामुली के किसी गाँव में ब्याहना चाहता है। भारती ने सदा इस पर व्यंग्य कसा था। मामुली तो गँवारों का देश है। मामुली वालों को तो यह भी पता नहीं कि नमक और मिश्री की डलियों में कैसे पहचान की जाती है। चखकर तो हर कोई बता सकता है। बात तो तब है कि केवल देखकर बताया जाय। उनका तो गुड़ भी नहीं पक सकता। किसी मामुली वाले के साथ बाँध दिया गया तेरा आँचल, तो आयु-पर्यन्त बैठी अपने भाग्य को कोसेगी। तू अपने बापू से खुलकर कह क्यों नहीं देती, कुन्तवाप ! अब देर मत कर। साफ़-साफ़ कह दे कि वे व्यर्थ ही मामुली में घूम-घूमकर अपनी धूलियाँ न घिसायें। अरी इतनी दूर जाने की आवश्यकता ही क्या है, जब काम इतना समीप बन सकता है ! इस में लाज शरम की तो कोई बात ही नहीं। अपना वर तो स्वयं ही चुनना चाहिए। मेरा बापू तो कभी यह नहीं करेगा। वह तो मुझ से ही कहेगा—ठोक-बजाकर अपनी आँखों से देख ले, भारती ! कच्ची वायन से भी काम नहीं चलेगा। बूढ़े के सामने तो जाना ही होता है, सब भजकर। यही संसार की रीति है। इस में अनहोनी तो कुछ भी नहीं।

भारती न जाने ऐसी-ऐसी कितनी बातें कह गई। कुन्तवाप ने पूछा ही, "आज तू भंग पीकर तो नहीं आई, भारती ?"

भारती थी कि अपनी ही कहे जा रही थी, "विवाह तो काम-लीला है। हमारे पुरखाओं ने विवाह न किया होता, तो आज हम भी न होते। विवाह तो पाप नहीं; जब पाप नहीं तो शरम भी क्या है ? बुरे से मैथुन की बजाय तो अच्छे से मैथुन ही शुभ है। एक बार की भूल पूरे जीवन को नष्ट करती है।

पीले-पीले, लाल-नीले, हरे-सलेटी सभी रंग हैं। बात तो अपने मनपसन्द रंग की है। मैं जानती हूँ तुझे सफ़ेद ही सब से अधिक भाता है। फिर दूर जाने की क्या आवश्यकता! बापू से नहीं कह सकती है तो माँ से कह दे। तुझे लाज लगती हो, तो मैं कह दूँ!"

"न! न! न!" शुकतारा ने आरती के मुँह पर हाथ रखकर कहा।

आरती शुकतारा की पतली-पतली उँगलियों को अपने हाथ से सहलाती रही और उसको तीखी चितवन निहारती रही।

"अपनी बात तो तू कभी कहेगी नहीं। तुझे भी तो एक दिन किसी की आरती उतारनी होगी।"

"मैं कब कहती हूँ कि नहीं उतारूँगी!"

एक-दो बार आरती ने शुकतारा की माथे की बीच बनी हुई माँग पर अपनी उँगलियाँ फेरीं, जैसे वह कहना चाहती हो कि अब वे दिन दूर नहीं जब यहाँ अमर सुहाग का सिन्दूर सज जायगा।

"जाओ आरती, तुम्हें देर हो रही है।"

"नहीं जाती।"

केले के कुंज में दोनों सखियाँ बैठी थीं। एक-दो बार आरती ने सामने वाले बागीचे के मजिस्ट्रेट के पेड़ों की ओर उँगली उठाई। शुकतारा उसका भाव समझ गई, पर उस ने प्रसंग उस ओर न मुड़ने दिया।

शुकतारा जानती थी कि बुद्धि में आरती उस से कहीं अधिक तेज है। आरती की माँ जीवित होती, तो उस पर दोहरा उत्तरदायित्व न आ पड़ता। इस उत्तरदायित्व ने ही उसकी बुद्धि को चमका दिया था। उसका पुश्तैनी घर तो चमका में था, दिसाँग नदी के किनारे; पर जब से आरती की माँ यमराज के मुँह में चली गई थी, जगमोहन ने पुराने घर का [illegible] कर बहुत बड़ी नाव पर एक झोंपड़ी बना ली थी। इस नाव का घर [illegible] पानी-पार और आर-पार के बीच वाले स्थान पर ब्रह्मपुत्र [illegible] नहीं रखना था। नाव पर बनी झोंपड़ी आरती को पसन्द थी। [illegible] में एक खिड़की नदी की ओर खुलती थी। [illegible]

खिड़की में बैठी रहती थी। कई बार कुन्तला को भी वह अपनी झोंपड़ी में बुला लाती और दोनों सखियाँ खिड़की में बैठकर दूर तक फैले ब्र
ब्रह्मपुत्र को देखतीं और न जाने भिन्न-भिन्न प्रसंग पर विचार करने लगतीं।
मालती की बात में सदा कुन्तला की बात से अधिक वज़न होता था।

कल रात धर्मानन्दी ने मालती को बताया था कि वह ब्रह्मपुत्र
कमलिमा चापरी के पास से गुज़र रहा था तब उस ने दूर से सारसों की पाँत को वहाँ बैठे देखा। पाँत तो उड़ गई, पर एक सारस न उड़ सका।
उस ने उड़ पाने की बहुत चेष्टा की। वह कदाचित् बीमार था। बड़ी कुशलता से पीछे से आकर धर्मानन्दी ने उस सारस को पकड़ लिया था।
सारस को पकड़कर वह फूला न समाया था, क्योंकि बहुत दिनों से कुन्तला की माँग थी कि बाबा उसके लिए एक सारस ला दे। धर्मानन्दी ने मालती को बता दिया था कि उसके जी में तो आया था कि पहले इस सारस को लाकर मालती को दिखाये, पर उसे भय था कि कहीं मालती ही इसे अपने पास रखने की ज़िद न करने लगे। इसीलिए वह अपनी नाव को बाल-बाल और पानी-घास के बीच वाले स्थान पर झोंपड़ी वाली नाव के साथ लगाने की बजाय दिसौंग नदी के रास्ते ऊपर की ओर ले गया था, और वहाँ हाट-बाज़ार वाले स्थान पर उतर कर सीधा कुन्तला के घर चला गया था और उसे उसकी सौगात पहुँचा दी थी।

आज सवेरे-सवेरे कुन्तला के घर आकर मालती ने उस सारस को देखा था, जिसे उसका बाबा कल रात दे गया था। सारस बीमार था, इसलिए वह मरणासन्न ज़मीन पर डाले पड़ा था। सारस के पंजों में कुन्तला ने रस्सी बाँधकर उसे एक खूँटी से बाँध रखा था। उसकी रक्षा के लिए उसके पास और बाँस की खपचियों का छाया-सा पिंजरा बना दिया था।

केले के कुञ्ज से वह स्थान साफ़ नज़र आ रहा था, जहाँ बीमार सारस को रखा गया था।

मालती ने गम्भीर होकर कहा, "एक बार बाबा ने मुझे भी वह स्थान दिखाया था, जहाँ ब्रह्मपुत्र के बीच कमलिमा चापरी पर सारसों की पाँ

बसेरा करती है। और भी बहुत से जल-पक्षी यहाँ उतरते हैं। शिकारियों की बन्दूकें भी यहाँ अधिक-से-अधिक फायर करने के लिए तैयार रहती हैं, पर ये शिकारी सब बाहर से आते हैं। रिसौंगमुख या आसपास के किसी गाँव का कोई शिकारी इन परदेसी पक्षियों पर हाथ नहीं उठाता। कोई बीमार या दुर्बल पक्षी उड़ने से रह जाय, तो पाँत उसे छोड़कर उड़ जाती है। वापसी पर वह पक्षी फिर उस पाँत के साथ मिल जाता है।"

कृष्णप्रिया बोली, 'अब यह सारस तो नहीं रोयेगा। मैं उसे रिझा लूँगी।"

'यह तो पाँत का पक्षी है, कृष्णप्रिया! पाँत के बिना तो यह मर जायगा।"

"वैसे तो हम सब पाँत के पक्षी हैं। हम कैसे पाँत के बिना जीवित हैं?"

दोनों सखियाँ उठकर सारस के पास जाकर खड़ी हो गईं। वह उसी प्रकार गरदन जमीन पर गिराये पड़ा था। यह कहना कठिन था कि उसे क्या कष्ट है। कदाचित् उसे सब से बड़ा कष्ट यही था कि वह पाँत से बिछुड़ गया।

कृष्णप्रिया लपक कर एक थोड़े मुँह वाली मटकी में पानी भर लाई और सिरे का मुँह उठाकर यह मटकी उस ने सारस के मुख के पास रख दी।

मालती ने अपने हाथ से सारस का सिर उठाकर उसकी चोंच मटकी के पानी में डुबो दी। कृष्णप्रिया की खुशी की कोई सीमा न रही, जब उस ने देखा कि सारस पानी पी रहा है।

थोड़ी देर बाद दोनों सखियाँ फिर पहले स्थान पर आ बैठीं। कृष्णप्रिया उदास थी, क्योंकि सारस बीमार था।

मालती ने गम्भीर होकर कहा, "यह जो कहते हैं कृष्णप्रिया कि प्रतिदिन का पथ में कौन रिश्ता है चलने में सदा साथ जाना मैं ही सीखना है, यह बात यहाँ तक सच है?'

"यह तो मेरा बापू भी मानता है। पिछली बार बापू पुरी में था, तब

उसे प्रतिपदा का चाँद दिखाई दिया। फिर वही पूजा को होता था। पूरा मास बापू बाबा में रहा।"

फिर भारती ने मीरी लोगों की दबूर-पूजा की बात छेड़ दी। "दबूर पूजा वर्ष में दो बार क्यों होती है?"

"एक बार की पूजा न माने देवता, तो दो बार करनी ही पड़ेगी पूजा।"

"क्या यह ठीक है कि दबूर और इन्द्र एक ही देवता के नाम हैं?"

"मेरे बापू का तो यही कहना है कि दबूर और इन्द्र एक ही हैं। वह कहता है कि दूसरे देशों में, जहाँ वर्षा कम होती है, इन्द्र की पूजा करते हैं जिससे इन्द्र देवता मेघों के साथ अम्बर पर आकर दर्शन दें; और यहाँ हमारे असम देश में तो पहले ही वर्षा बहुत अधिक होती है यहाँ तो इन्द्र देवता से यह प्रार्थना की जाती है कि मेघों को थोड़ा रोक कर रखें। जब कई-कई दिन मूसलाधार वर्षा होती है, तो सब की झोंपड़ियों के भीतर पानी टपकने लगता है।"

"और फिर तूफान में किसी किसी झोंपड़ी की छत ही उड़ जाती है। हमारे साथ भी तो पिछले वर्ष यही हुआ था। बाद पर बनी झोंपड़ी की छत उड़कर जाने कहाँ चली गई, इसका पता ही न लग सका।"

"मैं जानती हूँ। मेरे बापू ने ही तो छप्पर के लिए फूस भिजवाया था।"

"एक बात है, कृष्णकान्त! दबूर-पूजा वर्ष में दो बार करते हैं मीरी लोग। यह तो अच्छा करते हैं, पर एक बात बहुत बुरी करते हैं।"

"यही न भारती, कि पूजा आरम्भ होने पर किसी को बस्ती में नहीं आने देते; कोई आता भी है तो उस के हाथ-पैर बाँधकर उसे वहाँ डाल देते हैं, जहाँ सूअर बँधे रहते हैं।"

"कितनी बुरी बात है।"

"बहुत ही अपमान की बात है। इन्द्र कहो चाहे दबूर, ये क्या केवल मीरी लोगों के ही देवता हैं?"

"बापू तो कभी-कभी कहता है कि देवता-वेवता कोई नहीं होता। ये

सब कहने की बातें हैं। बापू का तो कहना है कि पेट ही सब करता है। पेट भरा हो तो नाच-गाना भी अच्छा लगता है, पूजा भी करते रहो बैठकर पर जब पेट ही खाली हो, तो देवता के गुण-गान से भी पेट नहीं भरता।"

"भूख नाच नचाता है।" मुक्ताप ने जोर देकर कहा, "मैं यह मानती हूँ।"

मालती ने मुँह बनाकर कहा, "जब कई-कई दिन तक वर्षा नहीं थमती, बिजली कड़कती है, बड़े-बड़े पेड़ तूफान में जड़ से उखड़ जाते हैं और नदी में भी बाढ़ आ जाती है, मैं पूछती हूँ, उस समय मीरी लोगों के दबूर और हमारे इन्द्र देवता कहाँ होते हैं। दोनों एक हैं या दो, इस विवाद में पड़ने की बजाय हम जरा यह तो सोचें कि उस समय देवता को अपने भक्तों का ध्यान क्यों नहीं आता।"

मुक्ताप उठकर सारस के समीप चली गई।

मालती अपने स्थान पर बैठी रही।

दूर से मालती ने देखा कि बगीचे के फाटक से अतुल भीतर आ रहा है। उस ने पास आकर पूछा, "मुक्ताप कहाँ है?"

मालती ने हाथ का संकेत किया। अतुल लपक कर मुक्ताप के पास चला गया।

"सारस को पकड़कर रखना तो ठीक नहीं।" अतुल ने बलपूर्वक कहा।

"यह ठीक है या नहीं," मुक्ताप ने मुँह बनाकर कहा, "यह देखना मेरा काम है।"

"पाँख का पक्षी पाँख के बिना मर जायगा।"

"परवाह नहीं।"

"तो तुम्हारे हृदय में तनिक भी दया-भाव नहीं है?"

"यही समझ लो।"

"मैं सारस को मरने नहीं दूँगा। तुम्हें सारस को छोड़ना पड़ेगा। मैं ने धर्मलक्ष्मी बुआ से कह दिया है। बापू मान गये हैं। हम इसे कमलिया सापरी पर छोड़ आयेंगे, जहाँ से बाबा ने इसे उठाया था।"

"मैं सारस नहीं दूँगी।"

"तो मैं धर्मनन्दी बाबा से कह दूँ!"

"कह दो।"

"एक बार फिर सोच लो।"

"सोच लिया।"

भारती सब सुन रही थी, पर उस ने दोनों के बीच में बोलना उचित [illegible] समझा। जब अतुल चला गया तो भारती बोली, "तुम ने अच्छा [illegible] किया, सुनतारा। सारस बीमार है। यहाँ वह अच्छा नहीं हो सकेगा। [illegible] ने भी भूल की जो उसे अमलिया सापरी से उठा लाये। अब उसे वहीं [illegible] अवश्य छोड़ आना होगा; आज नहीं तो कल।"

"यह देखना मेरा काम है।"

"तो तुम अतुल से इतनी रुष्ट क्यों हो?"

"तुम ने देखा नहीं था कि वह कैसे रोब जमा रहा था, जैसे मैं कोई उसकी दहेल हूँ। होगा अतुल अपने घर, सुनतारा कभी किसी से डरने वाली नहीं। यह मेरा और बाबा का मामला है। अतुल कौन होता बीच में बोलने वाला।"

भारती के जोर देने पर सुनतारा मान गई, पर वह बराबर इ[illegible] बात पर जोर देती रही, "अतुल को कोई अधिकार नहीं था कि आकर रोब जमाता। रिर्वांगासुल में और लड़के भी तो हैं, वैसा ही एक अतुल भी [illegible], मसे ही वह उनका पड़ोसी है और गाँव-मुखिया का पुत्र है। पर इसका [illegible] मतलब तो नहीं कि वह सब शिष्टाचार से भी हाथ धो बैठे।"

सुनतारा ने सारस को अपनी बाँहों में उठा रखा था।

भारती बार-बार सारस के सुन पर हाथ फेरने लगती। फिर दोनों [illegible]नों सारस की आँखों में झाँकने का यत्न करती रहीं।

[illegible] तेज-तेज डग भरती चली जा रही थीं। वे जल्दी-से-जल्दी [illegible]री बाबा से मिलना चाहती थीं। आज बाबा मधुमक्खियाँ पकड़ने नहीं [illegible]। भारती ने सुनतारा को घर से आते ही बता दिया था कि बाबा की

निकल अच्छी नहीं।

बब्बा ने मालती और कुन्तारा को आते देखा, तो वह खुशी से नाच उठा। उस ने कुन्तारा के हाथ से सारस को ले लिया। उस ने बताया कि वे रात-भर बुरे-बुरे सपने आते रहे थे। वह सारस को कमलिया सापरी पर छोड़ आना चाहता था।

अब सारस मालती की बाँहों में था।

बब्बा ने झट नाव तैयार की। मालती और कुन्तारा नाव में आ बैठीं। बब्बा नाव को कमलिया सापरी की ओर ले चला।

"सारस के पंख कितने सुन्दर हैं!" बब्बा ने चप्पू चलाते हुए कहा, 'अपनी जन्मभूमि से कितनी दूर आ जाता है सारस साल-के-साल, और फिर ऋतु बदलने पर लौट जाता है। कभी-कभी शीतकाल में सारस की पाँत कमलिया सापरी पर उतरती है, तो मैं कहता हूँ—यहीं रहो, आगे बंगाल की ओर क्या मिलेगा! यहीं विश्राम करो, यहीं से लौट जाना ग्रीष्म प्रारम्भ होने पर। अच्छा, यदि आगे जाना ही है तो थोड़ा आराम कर लो।"

दोनों सखियाँ हँसती रहीं और सारस के सुन्दर पंखों को गुदगुदाती रहीं। "कुन्तारा को सारस मिलने की उतनी प्रसन्नता नहीं होगी," धर्मानन्दी बोला, "जितना दुःख उसे सारस से बिछुड़ने पर होगा। पर यह तो पाँत का पक्षी है, पाँत के बिना तो वैसे ही मर जायगा।"

"तुम तो सब पक्षियों की बोलियाँ जानते हो, बब्बा!" कुन्तारा मुस्कराई।

"बब्बा तो पक्षियों की बोलियाँ बोलकर उड़ते पक्षियों को नीचे उतार सकते हैं।" मालती ने गम्भीर होकर कहा, "और यह काम कोई विरला मनुष्य ही कर सकता है।"

"सब प्रेम की बात है!" धर्मानन्दी मुस्कराया। "प्रेम की भाषा ही ऐसी है। पक्षी भी समझते हैं प्रेम की भाषा!"

कमलिया सापरी पर पहुँचकर धर्मानन्दी सारस को एक झाड़ी के समीप

रस्सा खोला और लौट कर उस ने नाव को पानी में ठेल दिया।

परे से सारसों की पाँत उड़ी आ रही थी।

बाबा ने नाव को वहीं रोक लिया।

सारसों की पाँत धरती पर उतर आई। जब दोबारा वह पाँत उड़ने लगी तो वह बीमार सारस भी पूरा जोर लगा कर उड़ा और एक-दो चक्कर काटकर पाँत में मिल गया। अब सारसों की पाँत नील-निर्मल आकाश पर उड़ी जा रही थी। बाबा ने भी नाव का मुँह त्रिवेणीसंगम की ओर मोड़ दिया।

धरती पर बबूल की ओट में लाल-पीला देखकर धर्ममूर्ती खिल खिला कर हँस पड़ा।

[नवयुग

आठ



अपने गाँव में मुर्गों की तरह बाँगो, ससुराल में मुर्गी की तरह कुड़कुड़ाओ!—गाँव के इस पुराने बोल पर अतुल जितना भी विचार करता, उसे उतनी ही हँसी आती। वह सोचता कि जिसकी ससुराल गाँव में ही हो वह क्या करे। यह पुराना बोल दिलौंगपुर की तीनों भाषाओं में मिलता था और यह कहना सरल न था कि सर्वप्रथम यह बोल किस भाषा से लिया गया था। अब तो इस बोल पर तीनों भाषाओं की छाप थी।

खेत में काम करते-करते अतुल को कई बार सारस की घटना का स्मरण हो आता। वह सोचता कि अन्त में कुम्भाराम ने उसकी बात मान ली थी और वह धर्मानन्दी काका के साथ जाकर सारस को कमलिया बावड़ी पर छोड़ आए थे, जहाँ से काका उसे उठा लाया था। चलो अच्छा हुआ, पाँत का पंछी पाँत में मिल गया। पर जब उसे इस बात का ध्यान आता कि धर्मानन्दी काका बावड़ी पर उसे क्रोध में लाल-पीला देखकर खिलखिला कर हँस पड़े थे, तो उसे धर्मानन्दी पर ही नहीं आती और कुम्भाराम पर भी क्रोध आने लगता। कभी वह सोचता कि सारी भूल तो उसी की थी। जब वह आरम्भ में कुम्भाराम के घर जाकर उससे यह कहने लगा था कि वह घायल और बीमार सारस को छोड़ना स्वीकार कर ले, तो उसे तनिक नरमी से बोलना चाहिए था; मुर्गों की तरह बाँग देने की तो कोई आवश्यकता न थी।

देवकान्त को गये बहुत दिन हो गये थे। चार-छः महीने के लिए गया था, अब तो एक वर्ष से ऊपर हो गया था। जिस दिन सारस वाली घटना हुई थी, उस दिन देवकान्त को भी रहना चाहिए था। कामनी ने तो हँसकर मेरा क्षोभ उतारने का यत्न किया था और अपनी ही बात छेड़ दी थी। भारती ने वही बोल दोहरा दिया था, जिस पर देवकान्त न जाने कितनी बार हँस चुका होगा—'जब भूकम्प आता है तो धरती ही नहीं काँपती, ब्रह्मपुत्र भी काँपता है, ब्रह्मपुत्र की पीतल मछली भी काँपती है, जिसकी पीठ में काँटे-ही-काँटे होते हैं, और पीपल के पेड़ में पत्ते भी काँपते हैं।' इस बोल के सम्बन्ध में भी मधुप का यही विचार था कि असमिया, मीरी और नेपाली तीनों भाषाओं में इसे ग्रहण किया गया है और किसी एक भाषा को यह अधिकार नहीं कि यह इसे अपना ही बोल मनवाने पर तुल रहे। इस उक्ति में तो पूरा दिसाँग मुख बोलता था। पर देवकान्त था कि इसे लोगों के भोले-भाले मन का प्रतीक बताकर इस उक्ति का उपहास करता था। वह कहता था कि यह भ्रम समाप्त होना चाहिए। वह बड़ी कुशलता से भूकम्प का मुख शान्ति की ओर मोड़कर कहता था कि शान्ति से भयभीत होने की तो तनिक भी आवश्यकता नहीं।

उसके खेत के पास ही आपार मीरी का खेत था। उस से आगे खेत सावन मीरी का था। आपार को मधुप सदा काका कहकर पुकारता था पर सावन तो उसका बचपन का मित्र था। मीरी लोगों की एक परम्परा मधुप को विशेष रूप से प्रिय थी। यह परम्परा प्रेतात्मा के सम्बन्ध में थी। जब बहुत सी प्रेतात्माएँ घर पर गुरगुर के रूप में आकर गिरती थीं, अथवा बार-बार फुर से उड़कर छत पर आ बैठती थीं, तो मीरी लोग सदा यह अनुमान लगाते थे कि उनके पुरखाओं की आत्माओं को कष्ट हो रहा है। प्रेतात्माओं को चावल खिलाया जाता था ताकि पुरखाओं का कष्ट दूर हो जाए। इस परम्परा का सहारा लेकर मधुप सदा इस बात पर बल देता था कि केवल प्रेतात्माओं को चावल खिलाने से काम नहीं चल सकता।

क्योंकि छात्रवाएँ तो दूसरे-तीसरे दाव फिर आकर उसी प्रकार छत पर गिरने लगती हैं। असम्पदक्या तो इस बात की है कि रिसौंगमुख के लोग आपस के झगड़े सग के लिए समाप्त कर दें और 'एक शरीर एक आत्मा' होकर रहें। जरा-सी बात पर भी सिर-फुटौवल की नौबत आ जाती है। मुकदमा कचहरी में पहुँचता है। दोनों ओर से रुपया बहा दिया जाता है। कचहरी में इस झगड़ेदार का क्या काम? झगड़वाएँ तो वस्तुतः केवल मीरी लोगों के पुरखाओं का बध बताने ही नहीं आतीं, वे तो असमिया और नेपाली लोगों के पुरखाओं का बध भी बताती हैं।

कुछ दिनों से वाचन मीरी शरारत पर तुला हुआ था, क्योंकि वह बात-बात में अहुल से उलझना चाहता था। वह तो यह बार यहाँ तक कह चुका था कि रिसौंगमुख का गाँव-बूढ़ा अवश्य कोई मीरी ही होना चाहिए। अब इसका उत्तर तो अहुल के पास न था। वह चुप रहता। एक बार उस ने यहाँ तक कह दिया, "देखो वाचन, अब जब नया गाँव-बूढ़ा चुना जायगा, तो मैं तुम्हारे पक्ष में मत दूँगा।" पर लगता था कि वाचन प्रतीक्षा करने के लिए तैयार नहीं, और वह शीघ्र-से-शीघ्र शरारत का बीज बो देना चाहता है।

कई बार अहुल आघार से कहता, "देखो आधार काका! अपने वाचन को समझाओ। असमिया, नेपाली और मीरी घरों में अपनी अपनी भाषा ही क्यों न बोलते हों, जब वे आपस में मिलते हैं तो असमिया से ही काम चलाते हैं।"

पास से वाचन कहता, "यही बात तो मेरी समझ में नहीं आती कि आपस में मिलते समय असमिया क्यों बोलनी पड़ती है। हमारी मीरी भाषा भी तो इस काम के लिए बुरी नहीं।"

इस पर आधार सदा असमिया का ही पक्ष लेता। बात साफ थी। भले ही रिसौंगमुख में असमिया बोलने वाले मुश्किल से रुपये में चार आने थे, पर आसपास के दूसरे गाँव भी तो ये वहाँ असमिया बोली जाती थी। मीरी और नेपाली बाहर एक-दूसरे से मिलने पर असमिया ही

बेसते थे। बहुत दिनों से यही होता आया था। अब इसे कैसे बदला जा सकता था?

सब से आश्चर्य की बात तो यह थी कि चित्ताप्रसाद भी साहब मीरी की हाँ-में-हाँ मिलाने लगा था। यह बात तो समझ में आ सकती थी कि चित्ताप्रसाद को मौजमणि से पुरानी शिकायत है। जब चित्ताप्रसाद पलाश बाड़ी से दिसाँगमुख आ निकला था, तो उसी ने मौजमणि को सलाह दी थी कि अब तक सरकार को यहाँ स्कूल खोलने का ध्यान नहीं आया क्यों न लोग मिलकर अपनी ओर से एक स्कूल खोल दें। यह स्कूल खोल दिया गया था और इसी स्कूल में तीन वर्ष तक अतुल ने भी शिक्षा पाई थी। अतुल के स्कूल छोड़ने के एक वर्ष पश्चात् ही चित्ताप्रसाद को स्कूल से पृथक् कर दिया गया था। चित्ताप्रसाद के विरुद्ध यह शिकायत थी कि उस ने लड़कों की फ़ीस के हिसाब में गड़बड़ की थी। स्कूल से पृथक् होकर चित्ताप्रसाद को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा था। अब तो गत छः-सात वर्ष से चित्ताप्रसाद का कार्य अच्छा चल निकला था। वह रेशम का धन्धा करने लगा था और अब दिसाँगमुख के आगे-पीछे लोगों में उसकी गिनती थी। साहब मीरी की हाँ-में हाँ मिलाकर वह मौजमणि को नीचा दिखाने पर तुला हुआ था।

"दिसाँगमुख का क्या बनेगा, काकाद काका!" अतुल कई बार पूछता। काकाद यही उत्तर देता, "रत्नास को आ जाने दो, सब ठीक हो जायगा।"

रत्नास भी मीरी था। उसकी सब से बड़ी विशेषता यही थी कि उसने अब तक विवाह नहीं किया था। कब से वह चाँदपुरी के बंगले में सरकारी नौकर हो गया था, मुश्किल से आठ-दस बार दिसाँगमुख आया था। पिछली बार वह उस समय दिसाँगमुख आया था, जब अतुल का छोटा भाई मन्ना तीन वर्ष का था।

अतुल को याद था कि मन्ना दिन-भर रत्नास काका की गोद में रहता था। अतुल की छोटी बहन रेणु का तो अभी जन्म भी नहीं

हुआ था।

जब भी मलका और रेणु बहुल की टाँगों से लिपट जाते, वह उन्हें रस्सल काका से सुनी हुई हाथियों की कहानियाँ सुनाने का वचन देकर छुट्टी पाता। रेणु ने तो रस्सल काका को देखा तक न था, मलका को भी रस्सल काका की ओर चाह न थी।

घर में रस्सल काका का नाम इतनी बार लिया जाने लगा था कि लगता था सब से अधिक मलका ही रस्सल काका की बात छेड़ने लगा है। रस्सल के बोरदी से रिटायर होकर सिलाँगमुख आने की सूचना जोसमणि को पहुँच चुकी थी, और इस समाचार से वह बहुत खुश था, क्योंकि सावन मीरी दूर के नाते से रस्सल का भतीजा था। वह आशा भी रखती थी कि वह रस्सल के समझाने पर समझ जायगा और सिलाँगमुख के जीवन में कटुता लाने की चेष्टा नहीं करेगा।

सावन मीरी को यह बात फैलाने में न जाने क्या आनन्द आता था कि सब से पहले मीरी लोग ही आकर सिलाँगमुख में बसे थे। यह बात तो बहुत से पढ़े-लिखे लोग कहते सुने गये थे कि आरम्भ में अबोर लोगों के समान मीरी भी सदिया के उस पार अबोर पहाड़ियों में रहते थे। अबोर और मीरी भाषाएँ वस्तुतः एक ही भाषा की दो बोलियाँ थीं। इस से अबोर और मीरी के पुराने सम्बन्धों पर कुछ प्रकाश पड़ता था। पर सावन के कहने का तो दूसरा ही भाव था। वह तो हर किसी से यह कहता फिरता था, "पहले यहाँ जंगल ही-जंगल था। मीरी लोगों ने इतनी दूर से आकर जंगल को अपने कुल्हाड़ों से साफ किया, और जब भूमि खेती के योग्य हो गई, तो अहोम राजाओं ने अपनी फौज जमा कर यहाँ कुछ असमिया लोगों को भी ला बसाया, जिन में कछारी के अतिरिक्त नामरिया और सद्गोप भी थे। आगे चलकर असमिया बोलने वाले मुसलमानों की आबादी भी यहाँ इतनी हो गई कि आलीसीमा की एक बस्ती मुसलमान बस्ती के नाम से प्रसिद्ध हुई। असमिया मुसलमानों के सम्बन्ध में यह कहना ठीक ही है कि वे उन मुसलमानों की सन्तान हैं जिन्हें अहोम राजाओं ने

मधुल सोचता—काश, रामलाल काका अभी आ जाते! उसकी कल्पना में रामलाल काका के आगे और पीछे हाथी ही-हाथी उभरने लगते; इन हाथियों में उन के बच्चे भी होते, हथिनियाँ भी होतीं—माँ बनने वाली हथिनियाँ भी। वह देखता कि काका झुक-झुक कर, उभर उभर कर हाथी का अच्छा-सा बच्चा ढूँढ रहे हैं—और ऐसा बच्चा जो बहुत ही प्यारा प्रतीत हो रहा हो।

अपनी माँ से भी मधुल रामलाल काका के आने की बात पूछने लगता। वह हँसकर कहती, "मैं ने तो सीखी नहीं ज्योतिष विद्या, मधुल! रामलाल काका कब आयेंगे, मैं कैसे बताऊँ?"

पास से नीलमणि हँसकर कहता, 'मधुल तो बस किसी-न-किसी की बात सोचता रहेगा—कभी देवकान्त की, कभी रामलाल की। अपने-आप का रास्ता किस ने जाना होगा जाने वाला सदा बता कर तो जाता नहीं।"

मधुल के हृदय पर गहरी चोट लगती वह सोचता कि और किसी को रामलाल काका की याद इतनी क्यों नहीं सताती।

बड़े बड़े असमिया अक्षरों में अपना कुछ लिख रहा होता तो मधुल उसकी कापी लेकर उस पर हाथी का चित्र बनाने लगता।

नौ



रात आधी इधर थी और आधी उधर, जब देवकान्त ने आकर मधुप को जगाया। देवकान्त ने मधुप के कान में कुछ कहा। मधुप बोला, "लो अभी चलते हैं।'

वे बाहर निकले। धरमदास भगत के घर की बग़ल से जो पगडण्डी सड़क से नीचे उतर गई थी वे उसी पगडण्डी पर हो लिये। इस पगडण्डी पर वे बहुत बार चले थे। यह पगडण्डी बहुत जानी-पहचानी थी। चलते-चलते देवकान्त अपने दायें कन्धे को सहलाने लगता। उसके कन्धे पर सख्त चोट आई थी। अब तो यह चोट अच्छी हो गई थी, फिर भी थोड़ी तकलीफ़ बाकी थी।

"अच्छा होता कि तुम अपनी माँ से मिल लिये होते।" मधुप ने एक जगह रुक कर कहा।

"समय कहाँ है!" कहते हुए देवकान्त आगे बढ़ गया।

"भारत माता की बात करते हो और अपनी माँ से मिलने के लिए तुम्हें समय नहीं मिलता। चार महीने के लिए कह गये थे, पूरे डेढ़ वर्ष के पश्चात् आये हो।"

"तुम माँ को समझा देना।"

"वह सुनकर रोयेगी।"

"अब एक ही बात हो सकती है—भारत माता के आँसू पोंछूँ या न। माँ के एक साथ दो कार्य नहीं हो सकते। मुझे तो पहला कार्य ही

अधिक आवश्यक प्रतीत होता है।"

"जिस माँ ने तुम्हें जन्म दिया, बुढ़ापे में उसकी सेवा तक न कर सके, इसका तुम्हें जरा भी दुःख नहीं। वैसे वह बेचारी रेशम के कीड़े पालती है और अपने करघे पर रेशम के थान बुन-बुन कर सिताम्बर के हाथ बेच सकती है। तुम डेढ़ वर्ष के पश्चात् लौटकर उस से मिलने के लिए दो मिनट न निकाल सके। कितनी कम हँसाई होगी, जब लोग सुनेंगे।"

"परवाह नहीं।"

मधुप फिर रुक गया। वह देवकान्त के मुख की ओर देखने लगा। अर्धरात्रि के सन्नाटे में उसे लगा कि देवकान्त ने उसे गाली दे डाली।

"माँ का आशीर्वाद लिये बिना क्या भारत माता की सेवा सम्भव है?"

"क्यों नहीं?"

"मेरी समझ में तो आती नहीं तुम्हारी बात।"

"अभी तो आ जायगी। समय लगता है। अपनी अपनी समझ की बात है।"

वे फिर चलने लगे। मधुप को लग रहा था कि उसकी पसलियाँ एक थके हुए बैल के समान दर्द कर रही हैं। चाँदनी में भी कितनी घुटन थी!

"एक बात पूछूँ, देवकान्त? जिस कोख से आसमी का जन्म हुआ, उसे कैसे भुलाया जा सकता है?"

"पहले तो भारत माता की कोख है। क्या यह झूठ है?"

हवा में शीतकाल की ठण्डक थी, चाँदनी में माँ का दुलार था, फिर भी चाँदनी सुरमी की तरह घुम रही थी। चाँदनी रात में लम्बी परछाइयाँ बड़े-बड़े भूतों के समान प्रतीत हो रही थीं, जैसे कोई दाढ़ हिलाये बैठा हुआ बड़े बड़े सुओं से दाढ़ धो रहा हो, या कोई मछुआ अपना जाल फैलाए देख रहा हो कि कहाँ-कहाँ मरम्मत की आवश्यकता है।

"नौ मास तक माँ बच्चे को कोख में रखती है।"

"तो क्या हुआ?"

"भारत माता वाली बात अपने पास ही रखे रहो, मैं तो किसी भारत माता को नहीं जानता। मैं तो अपनी माँ को ही जानता हूँ। माँ के दूध का मोल तो कभी नहीं चुकाया जा सकता।"

"तुम्हें बाहर की हवा नहीं लगी। लग जाती तो तुम भी मेरे ही समान सोचते, फिर तुम भारत माता को अवश्य पहचानते। भारत माता तो माँ की भी माँ हुई। तुम मेरे साथ कलकत्ता गये होते तो मैं ने तुम्हें उन लोगों से मिलाया होता जिन्होंने मुझे भारत माता का चेहरा दिखाया। कितना उदास है भारत माता का चेहरा—हाथ में हथकड़ी, पैरों में बेड़ी। भारत माता चिर-उदासिनी है।"

"और तुम्हारी माँ कम उदासिनी है? चित्तप्रसाद उठे हुए ठेस लगता है। क्या इसीलिए तुम्हें नौ मास तक पेट में रखा था माँ ने कि तुम बुढ़ापे में भी उसकी सेवा न करो?"

देवचन्द एक तिनके की नोक से दाँत कुरेद रहा था। ठेस लग मचला हुआ वह आगे बढ़ा चला जा रहा था और पीछे-पीछे अतुल।

"मैं तो कहूँगा कि अब भी मान जाओ। माँ से मिल आओ। पस्त बहुत है। भोर से पहले-पहले तो हम [illegible] काम से हर हालत में मिल सकेंगे।"

"अब तो समय नहीं।"

"माँ से भेंट करने के लिए भी समय नहीं? मरना है तो क्या करना? नारायण दारोगा से तुम इतना डर जाओगे, यह मैं पहले नहीं जानता था।"

"मरना तो है एक-न-एक दिन—आगे या पीछे। मैं फाँसी की रस्सी पर झूल जाऊँगा हँसते हँसते, और मरने से पहले भारत माता की हथकड़ी और बेड़ी किसी भी ढीली कर सकूँ, इतना ही अच्छा है।"

"दुनिया तुम्हें भगोड़ा कहेगी।"

"कहती है तो कहे।"

"एक बात पूछूँ? भागकर तुम सिंगापुर ही क्यों आये? तुम तो

करा करते थे कि तिलौंगमुन्ग की सेवा भी दूर से ही करना चाहते हो।"

"एक बार मामुली पहुँचा दे मुझे धर्मानन्दी काका, फिर तो नारायण रायेगा का बाप भी मुझे नहीं पकड़ सकेगा। फाँसी की रस्सी पर झूलने से पहले मैं मामुली के लोगों को तैयार करना चाहता हूँ। अकेला तिलौंगमुन्ग तो फिरंगी से लड़ाई नहीं लड़ सकता।"

चलते-चलते महतुल रुक गया। देवकान्त का कन्धा पकड़कर उस ने उसे रोक लिया।

"यह विद्याप्रसाद है न, उस ने हडसन साहब को पटा लिया है। मैं ने तो सुना है कि हडसन साहब को भी यह रेशम के धन्धे में से हिस्सा देता है। विद्याप्रसाद ने पहले-पहल विष्णुराम देवशर्मा के द्वारा साहब को पटाया था। मुझे तब पता चल गया। अण्डी और मूगा के जो दो थान उस ने ले जाकर पहले-पहल साहब को दिखाये, वे तुम्हारी माँ के ही बुने हुए थे। एक आदमी ने मुझे हडसन साहब की बेटी लिली की बात भी बता दी। लिली ने कई बार अपने डैडी को ताना दिया कि आप मेड इन इंगलैण्ड' का आदर्श कहाँ चला गया। लिली भी हमारे विरुद्ध प्रतीत होती है। इसीलिए जब परसों विष्णुराम मुझे लिली की भेजी हुई पुस्तक लाकर देने लगा तो मैं ने लेने से इन्कार कर दिया। धर्मनिया बाइबिल की पोथी थी। मुझे नहीं चाहिए किसी की बाइबिल। मैं जानता हूँ, उस में क्या लिखा होगा। अपनी माँ ही अपनी माँ होती है, यह तो उस में अवश्य लिखा होगा, और यह मैं पहले से जानता हूँ।"

"देर हो रही है, चलना चाहिए।"

"और सुना विद्याप्रसाद तुम्हारी माँ से हर समय यही कहता है—'आदमी की मुक्ति इसी में है कि रेशम के कीड़े के समान काम करते-करते ही मर जाए।' यह सब ठगने के लिए कहता है विद्याप्रसाद। तुम्हारी माँ एक रुपये का काम करती है, तो मुश्किल से अठन्नी उसके हाथ लगती है; बाकी अठन्नी में से दो आने हडसन साहब के और छः आने विद्याप्रसाद के। विद्याप्रसाद ने अपना 'अण्डी-मूगा सहकारी संस्थान' इसी प्रकार खड़ा

| ब्रह्मपुत्र

किया है ।"

"मैं जानता हूँ । पहले वह लड़कों को पढ़ाता था, तो लड़कों की फ़ीस खाता रहा कई महीनों तक । पर फ़ीस के कितने रुपये खा गया होगा आखिर ?"

"कितने भी हों, प्रश्न तो खाने का है । फ़ीस के रुपये उस ने क्यों खाये ? इसीलिए तो बापू ने उसे स्कूल से निकलवा दिया था । बापू से तो वह रुपये से प्यार करता है ।"

'खैर छोड़ो ये बातें देर हो रही है ।'

वे चले जा रहे थे । चाँदनी में बड़े बड़े पत्ते अब कहीं-कहीं गड्मड्ड हो रहे थे ।

धनानन्दी को जगाया गया तो वह झट उठ बैठा । "अभी तो भोर होने में बहुत देर है ।" काका ने हँसकर कहा ।

अतुल ने काका के कान में कुछ कहा ।

"किस की मजाल है कि हमारे देवकान्त को हाथ लगा सके ? मैं उसे माजुली पहुँचा दूँगा ।" काका ने बलपूर्वक कहा ।

आरती नाव चलाने लगी यह सोचकर वह पूछ नहीं सकी कि देवकान्त अब कलकत्ता नहीं जायगा और दिसांगमुख में ही रहेगा । उस ने पूछ ही तो लिया, 'तो फिर माजुली क्या करने जा रहे हो ?"

"ऐसी ही बात है, आरती !" अतुल ने गम्भीर होकर कहा, "हमारा देवकान्त तो अपनी माँ से भी मिलने नहीं जा सका । मैं सो रहा था जब उस ने आकर मुझे जगाया । आप लोग भी सो रहे थे जब हम ने आकर आवाज़ दी ।"

नाव पर बनी हुई मौनरी की खिड़की से ब्रह्मपुत्र की ओर देखते हुए अतुल ने कहा, "ब्रह्मपुत्र हमारा साक्षी रहेगा काका ! देवकान्त से हमारा झगड़ा नहीं है कि वह अपनी वास्तविक माँ को भूलकर भारत माता का दम क्यों भरता है ? यह भारत माता कहाँ है, मैं तो आज तक नहीं देख सका, काका ! देवकान्त कहता है कलकत्ता में रहती है भारत माता । क्या यह ठीक

———१

है, चाचा!"

"मैं भी कब गया कलकत्ता! मैं ने भी कब देखा भारत माता को!"

देवकान्त खामोश बैठा था।

"पहले बताओ, भारत माता क्या खाती है और क्या पहनती है!" मालती ने पास आकर कहा, "फिर मिलेगा चाय का गिलास। मैं पूछती हूँ क्या भारत माता भी पीती है चाय सवेरे-सवेरे! जाड़े में तो भारत माता भी चाय पीती होगी।"

देवकान्त कुछ न बोला।

"कुछ तो कहो, देवकान्त!" धर्मानन्द हँस पड़ा, "नहीं बताओगे, तो मैं भी नहीं ले जाऊँगा उस पार।"

"बताओ, बताओ!" अतुल भी चुप न रह सका।

देवकान्त ने कहना आरम्भ किया:

"कलकत्ता में रहती है भारत माता। वह बहुत भूखी है, बहुत दुबली हो गई है। खाने बैठती है तो कौर भी उसके कण्ठ में ही टूट जाता है। उसके चारों ओर साँप के समान सन्नाटा लहराता है। उसके फेफड़े घायल पक्षियों के समान हैं। उसे चाँद, सितारे और सूरज कुछ भी अच्छा नहीं लगता। उसके फूलदान के सब फूल मुरझा गये। उसके कटोरे में चाँदनी धूप नहीं उँडेलती। उस के बच्चे जेलों में सड़ रहे हैं। उसके बहुत-से बच्चे फाँसी पर झूल गये। जेल में उसके बेटों को जो रोटी मिलती है, उस में रेत और कंकड़ मिले रहते हैं। उसके सामने थाली के भात पर रख जाता है पीला-पीला पानी। भारत माता सब जानती है, सब समझती है। उसके होंठ थरथराते हैं। वह कभी हँसती नहीं, हँस सकती ही नहीं। उसके लिए आँसू, धूप और ओस एक हो गये; उसके लिए हर ऋतु एक समान है। उसके लिए वसन्त तो कभी आता ही नहीं। उसके सब-के-सब बेटे फाँसी पर लटक गये तब वंश समाप्त हो गया। उस के बेटों की हड्डियाँ शून्य पुकार रही हैं। उसके शरीर पर लहू की रेखाएँ हैं। ये सब अत्याचार सहती है भारत माता। फिर वह कैसे गा सकती है! अत्याचार

मैं पास आ रही है, फिरंगी का क्रोध भारत माता के बेटों पर मेघ बन कर बरसता है; गोलियों की वर्षा होती है भारत माता के लालों पर! जी मैं तो आया था कि मैं कलकत्ता में ही रह जाऊँ; वहीं पकड़ा जाऊँ, वहीं फाँसी पर लटक जाऊँ। पर वहाँ मुझे मधुप की बात सदा काँटे की तरह चुभने लगती थी—'कलकत्ता में रहकर तुम दिसाँगमुख का कार्य कैसे कर सकोगे दा?' दिसाँगमुख का कार्य तो दिसाँगमुख से ही आरम्भ करना है। इसीलिए मैं यहाँ चला आया। जब मैं भागा तो मेरे दायें कन्धे पर बहुत सख्त चोट लगी। बहुत खून निकला। किसी प्रकार मैं बच गया। मेरे कन्धे में अभी तक दर्द है, परवाह नहीं। सोचा, कुछ दिन माजुली में छिपा रहूँ, क्रान्ति की आग यहाँ भी भड़का सकूँ तो अच्छा होगा। यहाँ तो पास हैं कमल और हमारा मधुप भी है पर माजुली में तो कोई क्रान्ति का नाम नहीं जानता। यहाँ तो दो ही प्रकार के मनुष्य हैं—या तो वैष्णव सत्रों में हैं भक्त और गोसाईं, जो लोक को भूलकर परलोक का ध्यान करते हैं, या फिर निर्धन और अज्ञानी किसान, मछुए और मावरिया हैं। दिसाँगमुख वाले ही नहीं, आसपास के गाँव वाले भी तो माजुली वालों को मूर्ख ही नहीं महामूर्ख समझते हैं, दादा! दिसाँगमुख वालों ही को लो, किसी को मूर्ख कहना चाहते हैं, तो उसे 'माजुली से आया हुआ' कहकर पुकारते हैं। इसीलिए मैंने सोचा कि फाँसी पर मृत्यु का आलिंगन करने से पहले माजुली के गाँवों में रहूँ और उन्हें रास्ता दिखाऊँ।"

मधुप ने कहा, "भारत माता को तुम कलकत्ता में ही छोड़ आये?"

धर्मानन्द कुछ न बोला। देवकान्त भी चुप रहा।

भारती पास आकर बोली, "छज्जे पर बैठे-बैठे मैं ने सब सुन लिया। देवकान्त, यह तो बताओ कि भारत माता को कलकत्ता में ही छोड़ आये?"

मधुप ने भारती के कान में कुछ कहा।

भारती चकित रह गई।

भारती ने चाय के चार गिलास बनाये। एक-एक गिलास सब के हाथ

में था। भारती ने भी अपना गिलास मुँह से लगा लिया; फिर उस ने घबराकर कहा, "बापू, तुम जल्दी करो। मोर मे पहले ही नाव खोल देनी चाहिए मैं भी चलूँगी।'

अतुल बोला, "पर मेरा साथ जाना ठीक न होगा।"

'तुम नहीं जाओगे।" देवकान्त ने गम्भीर होकर कहा, "यह मैंने पहले ही सोच लिया था।"

"भारत माता कलकत्ता में रह गई।" अतुल ने हँसकर कहा, "त्रिसौंगमुख माता तो नहीं है। अच्छा तुम हो आओ मामूली माता के पास, देवकान्त!"

ये सब माताएँ एक हैं, अलग अलग नहीं।'

धनानन्दी बोला, 'यह तो एक लाख रुपये की बात कही देवकान्त ने!'

फिर धनानन्दी ने नाव तैयार की। देवकान्त और भारती नाव में जा बैठे। नाव चली तो अतुल देर तक खड़ा देखता रहा। जब नाव आँख से ओझल हो गई तो वह भी धीरे धीरे गाँव की ओर हो लिया।

उषा ने आँखें मलकर अभी त्रिसौंगमुख की ओर नहीं देखा था।

दस



मधुप का मस्तिष्क पूर्ण रूप से थक चुका था और वह काम करने में असमर्थ था।

बात जितनी सीधी थी उतनी ही जटिल भी। 'दिल्ली का कोप भारत माता के पैरों पर दिन का मेघ बनकर बरसता है'—देवकान्त का यह बोल उसके मस्तिष्क से टकराता रहा। जितना ही वह इसे भूलने का यत्न करता उतना ही वह विचार उसका पीछा करने लगता, देवकान्त ने यह भी तो कहा था—'कलकत्ता में रहती है भारत माता। वह बहुत भूखी है, बहुत दुबली हो गई है। गाने लगती है तो गीत भी उसके कण्ठ में ही टूट जाता है।' रहती होगी कलकत्ता में भारत माता। मैं तो कलकत्ता नहीं गया, मैं वहाँ जाना भी नहीं चाहता। जाना होता तो देवकान्त के साथ हो जाता। मेरे लिए तो दिरौंगमुख ही अच्छा है मैं तो दिरौंगमुख के लिए जीना चाहता हूँ और दिरौंगमुख के लिए ही मरना चाहता हूँ। मेरे देश की माटी निद्रा में भी मेरा पीछा करती है। जिस माटी से मेरा जन्म हुआ, मुझ पर तो उसी का ऋण है; मुझे तो उसी का ऋण चुकाना है। इसी माटी में मिल जाएगा मेरा शरीर। तब ऋण चुक जाएगा? नहीं, नहीं, बिल्कुल नहीं! जीते जी मुझे कुछ करना होगा, कुछ कर के दिखाना होगा! जीते जी!

खेत में धान भरे हुए बहुत दिन हो गये थे। वह बरामदे के द्वार पर खड़ा था। एक-दो बार उसकी माँ ने आवाज देकर उसे भीतर बुलाया।

उस ने माँ की आवाज़ अनसुनी कर दी। माँ के सम्बन्ध में देवकान्त से कही हुई बातें उसे याद आ रही थीं। ठीक ही तो था। जो माँ जन्म देती है, जो मास पर्यन्त शिशु को पेट में रखती है, वह माँ क्या इतनी शीघ्र भुलाई जा सकती है? इसीलिए तो मैं ने देवकान्त से कहा था—'माँ का आशीर्वाद लिये बिना क्या मातृ माता की सेवा सम्भव है?' जो मातृ माता कलकत्ता में रहती है, उसे मैं नहीं जानता। वह दुखी हो गई, तो मैं क्या करूँ? उसका गीत कण्ठ में ही टूट जाता है, तो मैं क्या करूँ? मुझे तो अपनी ही माँ प्रिय है।

माँ की आवाज़ आई, "भीतर आओ, अतुल!"

उस ने माँ की आवाज़ फिर अनसुनी कर दी, पर उसके मस्तिष्क में ज़ोर का झटका लगा।

मचान से बराबर नये धान की सुगन्ध आती रही।

यह धान उस ने अपने खेत में उगाया था, अपने हाथ से उगाया था इसके लिए उस ने लहू-पसीना एक किया था। डिगाँगमुख की जितनी सुन्दरता थी, उसके पीछे धान की बालियाँ मुस्कराती थीं। धान ही जीवन का ताना बाना था; धान ही त्योहारों का जीवन था। धान या तो गीत और नाच अच्छे लगते थे। धरती की कोख से धान उसी प्रकार उगता था, जिस प्रकार डिगाँगमुख की स्त्रियाँ अपनी सन्तान को जन्म देती थीं।

मचान से हटकर अतुल गोस्वामी की ओर चला गया, जहाँ कपिला गाय बँधी थी। कपिला के साथ घर का मंगल जुड़ा हुआ था। इस बार कपिला का बछड़ा होगा जो बड़ा होकर हल में जुतेगा। पिछली बार भी तो कपिला ने बछड़े को ही जन्म दिया था। उनके घर में तो सात गायें थीं। सबों में कपिला ही सब से अच्छी थी। वह कपिला की आँखों में झाँकता रहा, जैसे कपिला से पूछना चाहता हो कि माँ और मातृ माता के सम्बन्ध में अतुल और देवकान्त में से किसकी बात सच है।

सोनमादी ने बाहर आ कर कहा, "आज तुझे क्या हो गया, अतुल? तू अन्दर क्यों नहीं आता? यहाँ खड़ा क्या कर रहा है?"

इतने में मलना और रेणु आकर अतुल की टाँगों से लिपट गये। सोनपाही उन्हें बढ़ावा देती रही, "छोड़ना मत। पैसे माँगो, भैया की गाँठ खोल लो।"

अतुल ने गाँठ खोलकर भाई-बहन को दो-दो पैसे दे राजी कर दिया। सोनपाही बोली, "आज सवेरे-सवेरे तुम कहाँ गये थे?"

"धर्मानन्दी बाबा के घर।"

"वहाँ क्या था?"

"देवकान्त को पहुँचाने गया था।"

"आधी रात के समय? ऐसा क्या काम था? वह स्वयं नहीं आ सकता था?"

"बताऊँगा, माँ। ऐसा ही कुछ काम था। बेचारा कलकत्ता से सीधा हमारे घर आया। अपनी माँ से मिलने भी तो न जा सका।"

"अब मिल लेगा। माँ की वह कौन परवाह करता है? कलकत्ता ने उसे बिगाड़ डाला। तेरा बापू कहता है कि देवकान्त आवारा हो गया। उस का बापू उसे देखने को तरसता मर गया। अब इस जन्म में वह माँ की सेवा भी करने से रहा।"

"यह तो मत कहो, माँ।" अतुल मुस्कराया, "वह तो पढ़ा-लिखा और सूझ-बूझ लायक है। मैं उस के साथ घूमता हूँ कि बाहर की बुद्धि मुझे भी आ जाय।"

"पर तेरे बापू को देवकान्त के साथ तेरा घूमना अच्छा नहीं लगता। मेरी बात गाँठ बाँध ले। आज का दिन तो आज का दिन, आज से उस के साथ चक्कर न काटना। और बता उस दिन विष्णुराम क्या लाया था?"

"सिली की भेजी हुई असमिया बाइबिल की पोथी। वह मैंने वापस कर दी।"

"अच्छा किया। मेरे बेटे को क्रिस्तान बनायेगी वह चुड़ैल! हरि हरि हे माधव!"

सोनपाही भीतर चली गई। मलना और रेणु मिठाई खाने के लिए भाग गये।

भागसिंह की दुकान की ओर भाग गये।

अनुल ने कपिला की आँखों में झाँक कर कहा—'देवकान्त कहता है कि भारत माता के फेफड़े घायल पक्षियों के समान हैं। उसे चाँद, तारे और सूरज कुछ भी अच्छा नहीं लगता। क्यों कपिला मैया, ठीक कहता है देवकान्त ?' गाय ने सिर हिलाया। अनुल ने इसका यह भाव समझा कि गाय इन्कार में सिर हिला रही है। उसे बड़ी खुशी हुई। गाय ने उस का साथ देकर सराहनीय कार्य किया। वह तनकर खड़ा हो गया। मैं देवकान्त को बता दूँगा कि मैं ने भी व्यर्थ बीजक नहीं लिखाया। मैं अधिक पढ़ लिख नहीं सका, तो क्या हुआ। बापू से तो फिर भी अच्छा हूँ। बापू तो अँगूठा ही लगा सकता है, मैं तो अपना नाम भी लिख सकता हूँ। बापू की सब से बड़ी इच्छा यही है कि मैं एक दिन उस के सामने ही गाँव-बूढ़ा बन जाऊँ माँ भी तो यही चाहती है माँ का आशीर्वाद मिला तो मैं अवश्य बन जाऊँगा गाँव बूढ़ा। पर क्या गाँव बूढ़ा बनना मुझे शोभा देगा ? नारायण दारोगा कई बार लोगों को बुला भेजता है। साधारण से अपराध के बदले वह सटे मढ़ लोगों का लाम्छित करता है अपने बूट की ठोकर से। बहुत बुरा करता है नारायण दारोगा। जिसके वह बूत लगवाता है, वह बहुत *चीखता-चिल्लाता है। उस की चीखें बापू कैसे सुनता रहता है*, उस के आँसू बापू कैसे देखता रहता है ? पर बाहर तो बापू यही कहता है कि उस से नारायण दारोगा का यह अत्याचार बिल्कुल नहीं देखा जाता। तो फिर वह नारायण दारोगा से क्यों नहीं कहता यह बात ? अभी अगले ही दिन भगत जी कह रहे थे कि मन, वाणी और कर्म में अन्तर होने से मनुष्य जीते-जी ही मर जाता है। इसकी बापू के सामने यह बात क्यों नहीं आती ? नारायण दारोगा बापू के सामने जितना अत्याचार करता है, उसे बापू कैसे सह लेता है ? मैं तो यह सब नहीं सह सकूँगा। कपिला ने फिर कुछ इस प्रकार सिर हिलाया जैसे वह अनुल की हाँ-में हाँ मिला रही हो। थोड़ा सँभलकर अनुल ने कपिला के कान में कहा—देवकान्त कह रहा था, कपिला मैया, कि भारत माता के लिए आँसू, प्राण

और फूल एक हो गये। भारत माता के लिए हर ऋतु एक समान है। उसके लिए वसन्त तो कभी आता ही नहीं। उसके सब-के-सब फूल फाँसी पर झूल गये। तुम्हारा क्या विचार है, कपिला मैया! क्या देवकान्त ठीक कह रहा था? कपिला ने सिर न हिलाया। मधुप बिलकुल न समझ सका कि कपिला देवकान्त से सहमत है या नहीं। उस ने दोबारा कपिला के कान में कहा—'देवकान्त यदि इतना ही वीर है तो वह भाग क्यों आया? यदि मारा ही जाना था, तो गया ही क्यों था?' मन वाणी और कर्म में अन्तर होने से यही दशा होती है। इस से तो अच्छा मनुष्य बैठे-बैठे मर जाता है। मैं ऐसा नहीं करूँगा। मैं गाँव छोड़ नहीं सकूँगा। यदि मैं नारायण बाबा का अत्याचार सहन नहीं कर सकूँगा तो उसका साथ भी नहीं दूँगा। यह भी नहीं करूँगा कि सोचूँ कुछ और करूँ कुछ। मैं ने समझ लिया है कि संसार में महान कार्य नहीं हो सकता है जिस के मन वाणी और कर्म में तनिक भी अन्तर नहीं रहता। देवकान्त ने मुझे जितने भी क्रान्तिकारियों की कहानियाँ सुनाई हैं वे सभी ही आदमी थे। वे मरने से डरते न थे जो सोचते थे वही करते थे और वही कहते भी थे। यह बात तो समझ में आती है कि काम घर से ही आरम्भ किया जाता है। भारत माता के दुःख ग्रामीणजन में ही छिपे बैठे। भारत माता कलकत्ता में रहती है तो क्या ग्रामीणजन में नहीं रहती भारत माता!'

धीरे-धीरे चलते चलते कभी पिछवाड़े के पत्थर की ओर चली जाती, कभी उधर से भागती हुई बाहर सड़क की ओर निकल जाती। मधुप मन्त्रमुग्ध सा होकर कपिला की ओर देखने लगता। कभी उसकी दृष्टि छप्पर पर बैठे कबूतरों की ओर चली जाती कभी उसकी कल्पना में शस्य-श्यामला भूमि का पठार घूम जाता था जो सोना उगलता आया था। एक बार फिर उसे विचार आया कि पठार की माटी तो निद्रा में भी उसका पीछा करती है और उसके मस्तिष्क पर दस्तक देती है जैसे पूछ रही हो—मुझे छोड़ कर तो नहीं भाग जाओगे!

सहसा उसे ध्यान आया कि बैलों को चारा तो डाला ही नहीं। मधुप

ग्यारह



"भगत जी, भगत जी !" नीलमणि ने आवाज दी।

'भीतर से बारीक-सी आवाज आई, कौन है !'

नीलमणि गिड़गिड़ाया "गाँव की पगड़ी उतर गई। तुम बैठे भक्ति करते रहो। यह एक दिन होकर रहना था। अब भी समय रहते हम कुछ तो कर सकते हैं।'

'कुछ बताओगे भी !'

'तुम ओढ़े रहो हरि नाम की चादर। हिरोंगमुन बिने मारे मरे, तुम्हें क्या !'

हाथ में लालटेन उठाये भगत जी बाहर निकले। उनकी समझ में यह बात नहीं आ रही थी कि हिरोंगमुन पर ऐसा क्या संकट आ गया है। नीलमणि कहे जा रहा था "और कर आओ तीर्थ-यात्रा। कोई तीर्थ रह गया हो तो वहाँ भी हो आओ। यहाँ तो अपनी नाक कटी जा रही है।"

"ऐसी क्या बात हो गई ?" भगत जी ने लालटेन उठाकर नीलमणि के मुख पर प्रकाश डाला 'मुस्कराते मुस्कराओगे या कुछ बताओगे भी !"

"बनानन्दी और आरती को हिरासत में ले लिया गया !" नीलमणि की आवाज भर्रा गई थी। "यह सब मालपुर दारोगा का नया रंग है। यह हिरोंगमुन को पूरी तरह लांछित और अपमानित करने पर तुल गया है।"

भगत जी कुछ न समझ सके कि मामला क्या है सोच-विचार कर बोले,

| बलयुग

"जहाँ तक आरती की बात है, तो जैसी कुम्हारा वैसी ही आरती। पर धर्मानन्दी की बात दूसरी है। नाम है धर्मानन्दी, पाप करता है घोर अन्धारे! मछलियों का शाप तो लगना ही था एक-न-एक दिन।"

"और भी तो मछुए हैं, अकेला धर्मानन्दी ही तो मछलियाँ नहीं पकड़ता।"

"हमारे गुरुदेव कह गये हैं कि ऐसा युग आयेगा जब मनुष्य ही मछुए होंगे और मनुष्य ही मछलियाँ।"

"ये ज्ञान-ध्यान की बातें तो पीछे हो जायेंगी, भगत जी। अभी थाने चलना होगा। हम धर्मानन्दी और आरती को छुड़ाकर लायेंगे। मारपन्ध दारोगा हम से बाहर भी तो नहीं जा सकता। उसकी धाँधली हम नहीं चलने देंगे।"

"तुम हो आओ थाने।"

"आप नहीं चलेंगे?"

"मैं वहाँ क्या करूँगा?"

मीतमणि को भगत जी से यह उत्तर सुनने की आशा न थी। वह सोचने लगा—तो फिर भगत जी सदा यह दावा क्यों किया करते हैं कि सच्चा वैष्णव वही है जो पराई पीर जाने और पराये काम आये।

वह अकेला ही बेलगाँव की ओर चल पड़ा, जहाँ दिसौंगमुख का थाना था। बार बार उसे ध्यान आ रहा था कि जैसी रेणु वैसी आरती। अकेले धर्मानन्दी को मारपन्ध दारोगा ने हिरासत में लिया होता तो कदाचित् मीतमणि को इतना आश्चर्य न होता। ऐसी घटनाएँ तो आम होती आई थीं। पुलिस का कार्य था शान्ति बनाये रखना, कानून की रक्षा करना। पुलिस के कार्य में रोड़ा अटकाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। अपराध तो अपराध है। वह अपराध धर्मानन्दी करे चाहे कोई और। पर बेचारी आरती के मुँह से तो अभी दूध की बू भी नहीं छूटी। बचपन में बेचारी की माँ मर गई। ममाप्रभु के मुँह में चली गई थी उसकी माँ। धर्मानन्दी ने इतना तो अच्छा किया कि दोबारा विवाह न रचाया। आरती को सौतेली

माँ के हाथों पलना पड़ता तो बेचारी की भावनाएँ बचपन से ही कुचली जातीं। बड़ी ही सयानी लड़की है। हाट-बाजार के दिन छोड़ उसे धर्मानन्दी की सहायता करते देखे। वह तो अपने बापू के लिए लड़का बनकर काम करती है। पर नारायण दारोगा को यह क्या सूझी कि भारती को भी पकड़ कर ले गया!

वह शीघ्रता से चला जा रहा था। उस ने सोचा कि भगत को साथ नहीं लाये थे तो अब्दुलकादिर को ही ले लिया होता। अब्दुलकादिर तो शायद आयु में हम दोनों से बड़ा है। उसे मैं ने ही तो बताया था कि अब तक वह हल पर नहीं आया शिवाँगपुल को ही बाबा मान ले। उस ने हल पर जाने का विचार ही छोड़ दिया है। सच्चा हल तो अपना मन है। मन साफ़ हो तो सब ठीक हो जाता है। फिर उसे विचार आया कि अतुल को क्यों साथ न ले लिया। मेरी आँखों के सामने वह कैसे गाँव-बूढ़ा बनेगा, यदि वह इस प्रकार के मामलों को समझेगा नहीं! उसे पूरा विश्वास था कि नारायण दारोगा उसकी बात रख लेगा और धर्मानन्दी और भारती को छोड़ देगा।

अगले ही क्षण उसे विचार आने लगा कि अब तक तो धर्मानन्दी की लूट पिटाई हो चुकी होगी। पिटाई करने में तो नारायण बहुत चतुर है। पिटाई के नये-नये उपाय निकालता है नारायण। उल्टा लटकाकर पीछे से मूँछे खिंचा खिंचो कर लगवाने का इतना शौक शायद ही किसी और दारोगा को हो। मैं धर्मानन्दी के बदले एक दर्जन मछलियाँ भिजवा दूँगा, अपने घर से दो बोरी धान भिजवा दूँगा और एक जोड़ी कबूतर भी। धर्मसिंह से कहकर तीन मटकी दूध भी भिजवा दूँगा। यदि वह नहीं भेजेगा तो हमारे घर में भी तो तीन गायें दूध देती हैं। किस प्रकार भी हो, मैं नारायण को खुश कर लूँगा। उसकी रग तो मेरे हाथ में है। आखिर मैं हिलाँगपुर का गाँव-बूढ़ा हूँ। मेरा बापू भी गाँव बूढ़ा था और अब तीसरी पीढ़ी में भी गाँव-बूढ़ा की पदवी हमारे पास ही रहेगी। गाँव-बूढ़ा की पदवी के तो सौ लाभ हैं। सारे गाँव में अपना ही राज है। बाप

मेरी ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकता। मीरी, नेपाली और कलमिया—तीनों आपस में कितना भी झगड़ें, मेरी आज्ञा तो तीनों ही मानते हैं।

चलते-चलते वह सोचने लगा—मैं तो खाली हाथ हूँ। खाली हाथ भी किसी का काम बना है? पुलिस का तो किस्सा ही ऐसा है। ये लोग या तो नकद नारायण चाहते हैं या फिर अच्छी-खासी चीज़—कोई मुर्गी सूअर या कबूतर-जोड़ा। उसके जी में तो आया कि उन्हीं पैरों लौटकर नारायण दारोगा के लिए एक मोटा-सा सूअर ही उठवा लाये। सुबह में तो थाने में डाल आने में रही। पर अब इतनी दूर आकर लौट जाना कठिन था। वह जल्दी-जल्दी कदम रखने लगा।

जब वह थाने के द्वार पर पहुँचा तो उस ने तारों की ओर देखा। अभी तो तीन बजे रात थी।

उस ने अपने मन में कहा—मैं भी कितना मूर्ख हूँ!

वह थाने के सामने टहलता रहा। उसके जी में तो आया कि बेलगाँव में किसी के घर जाकर आराम करे, या वहीं से नारायण दारोगा के लिए थोड़ी दक्षिणा ही लेता आये। पर उसे आज इस कार्य के लिए साहस नहीं हो रहा था।

धीरे धीरे भोर हुई। प्रतीक्षा की घड़ियाँ गिन-गिन कर सूरज निकला। पर थाने में अभी तक नारायण दारोगा के दर्शन न हुए।

पहरे वाले सिपाही से नीलमणि ने पूछा "मंगलमती और आरती को दारोगा जी कब छोड़ रहे हैं?"

सिपाही ने बिगड़कर कहा, "यह क्यों पूछ रहे हो?"

नीलमणि बोला, "मैं गाँव-बूढ़ा हूँ।"

सिपाही ने कहा "तो फिर गाँव-बूढ़ा होकर भी दूध-पीते बच्चे बने जा रहे हो, जैसे कुछ मालूम ही न हो। दारोगाजी को सब पता चल गया है।"

"मैं तो कल से शिवसागर गया हुआ था। दारोगा जी को मेरे सामने

को सूचना तो दे दो।"

"हमारी दक्षिणा!" सिपाही हँस पड़ा।

नीलमणि ने जेब में हाथ डाला। जेब में कुछ न था।

किसी प्रकार सिपाही ने दारोगा जी तक गाँव-बूढ़ा के आने की सूच तो पहुँचा दी, पर दारोगा जी ने बाहर झाँक कर भी न देखा।

बारह



बेलसमौंट और मालीसीया के बीच का रास्ता जिस से बातें करते गया। नीलमणि की कल्पना में उस का पर उभरता रहा।

झिलमिलाती बिजली की तरह वह अपने कमरे में घुसने लगा तो पीछे से मनात जी की आवाज आई, "छुड़ा लाये अमानन्दी और भास्को को!"

नीलमणि ने कोई उत्तर न दिया।

वह पायल उठाकर अपने कमरे में चला गया।

सामने लालटेन की रोशनी में अतुल कुछ पढ़ रहा था।

'आ गये, दादू!' अतुल ने उठकर नीलमणि का स्वागत किया।

नीलमणि ने मुँह फेर लिया, जैसे किसी ने उसके चेहरे पर कालिख पोत दी हो।

अतुल एक बार में सब भाँप गया।

नीलमणि कुछ न बोला। वह आज सत्यसत्य दारोगा के हाथों बुरी तरह अपमानित होकर आया था। दारोगा की आज पल-पल पर गिरगिट के समान रंग क्यों बदल रहे थे? हिल-डोलकर बातें भी करते थे, धमकाते भी थे और पुचकारते भी थे। अमानन्दी से ऐसा क्या अपराध हो गया? उसे क्या मालूम था कि देवकान्त भगोड़ा है। यदि कलकत्ता के किसी क्रान्तिकारी दल के साथ उसका सम्बन्ध है और कलकत्ता की पुलिस उसका पीछा कर रही है, तो उसके माथे पर तो नहीं लिखा था कि वह भगोड़ा है।

यदि धर्मानन्दी ने उसे अपनी नाव में उस पार लगा दिया तो कौनसा अपराध किया !

अतुल ने कहा, "धर्मानन्दी काका की बहुत अधिक पिटाई तो नहीं की गई, बापू ! और भारती भी उल्टी तो नहीं लटकाई गई !"

नीलमणि कुछ न बोला। उस ने कुछ कहने का यत्न अवश्य किया, पर उसके आँसू निकल आये, सिर में चक्कर आ गया। सिर को दोनों हाथों में थामकर नीलमणि ने कहा :

"बेटा, देवकान्त कलकत्ता के किसी केस में फँस गया है, और अब वह भागकर आया है। उसकी जान संकट में है। वह अबोध है और वैसे ही तुम भी हो।

"बस इतनी बात थी, बापू !"

"तुम मेरी बात कभी नहीं समझोगे।"

"मतलब ?"

'मतलब यही बेटा, कि सँभलकर और धीरे से पग उठाओ तो गिरने का भय कम रहता है, नहीं तो शत्रु चारों ओर घात लगाये बैठा है।"

"कौन हमारा शत्रु है, बापू ! तुम तो व्यर्थ ही घबरा जाते हो। देवकान्त की देवकान्त जाने। धर्मानन्दी काका और भारती को नारायण दारोगा आज नहीं तो कल छोड़ देगा। उनके साथ कोई अपराध नहीं मढ़ा जा सकता।"

नीलमणि भूमि पर बैठ गया। उस ने अपना सिर दोनों हाथों में थाम रखा था।

'गोली छाती में, फाँसी गले में !" नीलमणि ने दोनों हाथ आकाश की ओर उठाकर कहा "शत्रु घात लगाये बैठा है।"

"नारायण दारोगा ने अवश्य ही कुछ कहा होगा, बापू ! बताओगे न क्या कहा है !"

नीलमणि दोनों हाथों से सिर थामे रहा और कष्टपूर्वक बोला, 'देवकान्त कब तक भगोड़ा बनकर छिपा रहेगा ! नारायण दारोगा उसे पकड़कर ही चैन लेगा। देवकान्त फाँसी पर झूल जायगा। यही उसकी

इच्छा भी थी। पर तुम अब भूलकर भी गाँव में देवकान्त का नाम न लेना, नहीं तो हमारी बहुत हानि होगी, बेटा। मेरी अब से यही इच्छा रही है कि तुम्हें अपनी आँखों के सामने गाँव-बूढ़ा की पदवी पाते देखकर ही आँखें बन्द करूँ।"

अतुल ने कुछ उत्तर न दिया।

तेरह



दरअसल अन्य बाकी यात्रियों के साथ बस से उतरे पहले वह पौंगूड़ी से मोरानी पहुँचे थे; फिर मोरान से जोरहाट के रास्ते शिवसागर की लम्बी यात्रा की तेरह मील का सफ़र अभी सामने था जिसे बाबा पैदल ही तय करना था। बड़े आराम से बाबा ने अपना बिस्तर कन्धे पर रखा।

यह बोझ तो बहुत अधिक न था। बाबा ने केवल एक बार पीछे मुड़कर देखा। पुरानी मोटर की धौंकनी-सी बस वहाँ खड़ी थी। रास्ते-भर इस ने कितनी धूल उड़ाई थी कितने धचके लगे थे कितनी बार बाबा उछले-उछले बच गए थे, यह कहानी बहुत लम्बी थी। दरअसल बस को यह कहानी तिल-तिल याद थी। वह मन ही-मन हँस दिया। यह भी कोई सवारियों में सवारी है। हम ने तो हाथियों की सवारी की है—एक बरस नहीं, दो बरस नहीं पूरे तीस बरस—एक कम न एक अधिक, तीस बरस, पूरे तीस बरस!

यह शिवसागर से दिसाँगमुख जा रहा था। आज से तीस बरस पहले भी यह सड़क कच्ची थी और आज भी वैसी ही है। पहले जितने गड्ढे नहीं हैं। इसी महीने यह मिट्टी डाली गई है। सरकार को ध्यान तो है।

सड़क के दोनों ओर के पेड़ कितने बदल गये थे। पिछली बार जब वह पौंगूड़ी के जंगल से दिसाँगमुख आया था, इस बात को तीस बरस हो गए। सड़क के दोनों ओर के पेड़ बाबा की कल्पना में कुछ दब-से गये थे

अब वे फिर उभर रहे थे।

हर कदम घर की ओर उठ रहा था। अपना घर किसे प्रिय नहीं होता! अपने घर को जाने वाली सड़क किसे प्रिय नहीं होती!

तीस वर्ष पहले उसका चाँदकुची जाने का संकल्प उतना ही दृढ़ था, जितना अब लौट आने का था। सात वर्ष पहले भी वह दिसाँगमुख आया था। अपने गाँव आना किसे अच्छा नहीं लगता! अब तो वह सदा के लिए चाँदकुची से लौट रहा था।

दिसाँगमुख में कोई हाथी न होगा। जंगल तो दिसाँगमुख में भी है— पसमा मिस का जंगल और फाकुली मिस का जंगल। दोनों मौजों के चारों ओर जंगल-ही-जंगल है। बाघ तो हैं इस जंगल में हाथी नहीं हैं। हाथियों के लिए तो चाँदकुची ही सब से अधिक प्रसिद्ध है।

इसी सड़क से वह पैदल शिवसागर पहुँचा था—तीस वर्ष पहले। तब वह जवान था। शिवसागर से गोहाटी और गोहाटी से चाँदकुची उस ने पैदल ही की थी यह ढाई सौ मील से ऊपर की यात्रा। उन दिनों उस ने यह यात्रा कोई बीस दिन में की थी। सवेरे से साँझ तक वह चलता ही रहता था दो जगह बीमार भी तो हुआ था। अब तो वे दिन बहुत पीछे छूट गये थे।

सड़क के दोनों ओर पेड़ थे। अब वह शिवसागर से बहुत दूर निकल आया था। सड़क के दोनों ओर थोड़े-थोड़े अन्तर पर कई गाँव थे। दोनों ओर दूर-दूर तक खेत चले गए थे। खुले पठार में धान की खेती होती थी। यह पठार तो दूर तक चला गया था।

एकाएक बाघा को चाँदकुची के विशाल जंगल की याद आ गई। वहाँ के हाथियों का ध्यान आते ही बाघा की कल्पना में नार्मन साहब का चेहरा उभरा। तीस वर्ष पहले उस ने यह चेहरा पहली बार देखा था और वह नार्मन साहब ही का होकर रह गया था, जैसे वह दिसाँगमुख से चलकर चाँदकुची में नार्मन साहब ही को मिलने गया था। यह बात उस ने नार्मन साहब से भी कह दी थी। यह सुनकर नार्मन साहब आनन्द विभोर हो

रहते थे। उस समय रामदास काका भी खुशी से फूला न समाया था। अब तो काका अपने गाँव को लौट रहा था उसे उस दिन से भी कहीं अधिक आनन्द आ रहा था। नामन साहब तो पिछले महीने अपने देश को लौट जाने का निश्चय कर चुके थे। तब काका को मालूम हुआ कि वे कितनी देर एक-दूसरे के साथ रहे थे।

यह जानते हुए भी कि अब रास्ता कितना रह गया काका वैसे ही किसी आने-जाने वाले से पूछ लेता, "सिसाँगमुख कितनी दूर है?" इस का उत्तर तो यही होता, "पास ही तो है सिसाँगमुख!" यह सुनकर काका को कितनी खुशी होती थी। खुशी तो होती ही है। पर का रास्ता कितना भी कट जाय, पर कितना भी समीप आ जाय, उतनी ही उमंगें बढ़ती जाती हैं।

यह सन्तोष तो काका का सदा ही रहेगा कि वह तीस वर्ष का समय सियाल और घन जंगल में गुजारकर आ रहा है। काका को खुशी थी तो यही कि वह अपनी जन्मभूमि को लौट रहा है, जहाँ दूर तक फैला हुआ शस्य-श्यामल पठार है; जहाँ बचपन के चिर-परिचित लोग होंगे। हाथी भले ही न होंगे आदमी तो होंगे। क्या आदमी हाथियों से अच्छे होते हैं? अरे बाबा, हाथी तो बहुत अच्छे होते हैं। बड़े बड़े काम करते हैं ये हाथी। शान्त गम्भीर और बलवान्, वे सब हाथी तो पीछे रह गये।

काका धुन में मस्त चला जा रहा था। पीठ पर बिस्तर का बोझ कुछ कम न था। उसे ध्यान आया कि हाथी तो बहुत बोझ ढोते हैं। हाथियों के दल नदी किनारे पानी पीते हैं तो उनकी लम्बी परछाइयाँ अस्त होते सूर्य के साथ रात्रि के अन्धकार में विलीन हो जाती हैं। एक स्थान पर रुक कर काका पीछे की ओर देखने लगा, जैसे कौंन्डी का संगम यहाँ से अधिक दूर न हो और वह वहाँ खड़े-खड़े पानी पीते हाथियों को देख सकता हो।

काका चाहता था कि कोई उसे पहचानकर कहे, "कहो रामदास काका, कौंन्डी से कब आये थे?" काका जानता था कि उसका आकार

मगर दूसरों से भिन्न है, उसका बोलचाल का लहजा भी दूसरों से नहीं मिलता। जो आदमी हाथियों के बीच तीस बरस बिताकर आ रहा है, वह दूसरों से भिन्न कैसे नहीं होगा? हाथी कितना बुद्धिमान होता है यह तो कोई मुझ से पूछे। हाथी में दोष भी होते हैं। क्या मनुष्य में दोष नहीं होते? दोष-ही-दोष देखूँ यह तो मेरा धर्म नहीं है। मेरे गुरु ने तो यही सिखाया है कि पहले गुण देखो और पीछे दोष।

अब दिसाँगमुख दूर न था। यहाँ से कोई मील-भर होगा बेलगाँव जो दिसाँगमुख की पहली बस्ती थी। कुछ लोग बेलगाँव को दिसाँगमुख से अलग गिनने लगे थे। अलग कहाँ था बेलगाँव, यह तो दिसाँगमुख की ही एक बस्ती थी। रामलाल काका का घर कालीसीगा की भीरी बस्ती में था। साँझ से पहले-पहले वह अपने घर के द्वार पर पहुँच जाना चाहता था। उसकी कल्पना में मार्गन साहब का चेहरा उभरा। उन से तो मैं ने अच्छी अच्छी बातें सीखीं, मन लगा कर कार्य करना सीखा। काम तो छोटा नहीं होता। कार्य न करो तो मस्तिष्क को जंग लग जाता है। जंग तो लोहे को भी खा जाता है। कार्य करना ही अच्छा है, थोड़ा-सा भी काम क्यों न हो—यही तो कहा करते थे मार्गन साहब। यह भी तो कहा करते थे—'जब एक बार निश्चय कर लो कि यह कार्य करना है, तो उस से पीछे न हटो।' मैं कालीसीगा पहुँच जाऊँ, मार्गन साहब की बातें तो मैं सब को सुनाऊँगा। अवश्य भगत मुझे टोक कर कहेंगे—'थोड़ा ज्ञान ध्यान की बात करो।' पास से अब्दुलकादिर अपनी ही बात छेड़ देगा। वह अभी तक हज को नहीं जा सका होगा। नीलमणि गाँवबूढ़ा तो अब भी उस से यही कहता होगा—'मियाँ जी, जब तक हज को नहीं जा सकते दिसाँगमुख को ही मक्का समझ लो।' मियाँ जी ऐसा नहीं कर सकते। मरने से पहले एक बार तो उन्हें हज पर हो आना चाहिए। यह कार्य आवश्यक है तो इसे करने में देर नहीं लगानी चाहिए। भगत जी ने तो कोई तीर्थ नहीं छोड़ा होगा। पिछली बार मैं दिसाँगमुख आया था, तो भगत जी रामेश्वर होकर आये थे। एक हमारा नीलमणि है कि दिसाँगमुख को ही काशी मान बैठा है। अब-

सिंह का लाइव है भात पिलाना। रसम को दनावस बनवाने वाले चाहिएँ। नीलमणि का बड़ा बेटा मनुस तो अब जवान हो गया होगा। मनुस का छोटा भाई मक्का भी अब तेरह-एक वर्ष का हो गया होगा तीन वर्ष का था, जब मैं पिछली बार दिसम्बर में आया था। तब तो मेरी गोद से उतरता ही न था। अब तो मुझे भूल गया होगा। नये सिरे से पहचान जोड़नी होगी। सुना है शिवाप्रसाद का काम अच्छा चल निकला है। दस्त भाव अपनी और मूँगा लादकर मटियें भाव बेच डालता है। अपना अपना कार्य है। धर्मलक्ष्मी उसी प्रकार मछलियाँ पकड़ता होगा। चेतन नावरिया और बाग्ल नावरिया में उसी प्रकार झगड़े चलते होंगे। चेतन की नाव में तो इंजिन लगा है, जो डोकम घाट से चलता है। वह नाव तो स्टीमर घाट के मैनेजर हरमन साहब की है इस नाव में कुछ ही सवारियाँ बैठती हैं। बेचारे बाग्ल नावरिया का टीकल घाट तो उस की मुसाफ़ी में मवाहित होन वाला रक है। वह तो चेतन से बाकी सवारियाँ ही मिल सकता है। इसलिए वह चेतन की नाव से कुछ किराया लेता है एक सवारी से एक पैसे का, तो कौन बुरा मानता है ? पर बेचारे बाग्ल को चेतन की नाव चलने के पश्चात् ही तो बची-खुची सवारियाँ मिल सकती हैं। इसी को लेकर कभी कभी दोनों में झगड़ा हो जाता है। गाली बकने से तो पेट नहीं भरता। गिर-कुटौवल से भी कहाँ भरता है पेट ? पेट तो मेल मिलाप से कार्य करने पर ही भरता   चलना चाहिए। यह न हो कि कार्य ही न मिले। कार्य ही नहीं होगा तो मनुष्य कमायेगा कहाँ से ? और कमायेगा नहीं तो खायेगा कहाँ से ?

अमरगाँव पीछे छूट गया था। अब तो सामने बकमा बस्ती नज़र आ रही थी। उसे ध्यान आया कि मासन साहब ने उस का पता तो लिख लिया था। वह तो गये थे कि विलायत से चिट्ठी लिखेंगे। भूल तो न जायेंगे। कल्याण भगत को तो मैं ने पिछली बार भी मासन साहब की बातें सुनाई थीं। मासन ने भगत की 'हरि हरि है सपना' की रट लगाने लगते थे, जैसे हरि भी कोई हाथी हो। दूसरे लोगों और भगत को मैं बस इतना ही

अन्तर है कि भगत जी बात बात में 'हरि हरि हे माधव' कहते हैं, तो दूसरे लोग 'पढ़ लिक्खाड़ी' की रट लगाते हैं। उन्हें हर काम बहुत बड़ी लिक्खाड़ी का करतब प्रतीत होता है। लिक्खाड़ी या पढ़ाई क्या है? जो काम करना ठहरा उसे तो करना ही होता है। मैं तो कभी 'पढ़ लिक्खाड़ी' नहीं करता। मैं तो 'हरि हरि हे माधव' भी नहीं कहता। हरि तो भला हाथी का रूप कैसे धारण करेगा? पिछली बार मैं दिसाँगमुख आया था तो भगत जी ने एक राजा की कथा सुनाई थी। वह राजा अगस्त्य ऋषि के शाप से हाथी बन गया था और बरसों तक वह जंगल में घूमता रहा। 'हरि हरि हे माधव' की रट लगाने से वह हाथी फिर मनुष्य-योनि में आ गया था। हाथी की योनि और मनुष्य की योनि—दोनों में अन्तर तो अवश्य है। हमारे मास्टर साहब तो हाथी को भी 'जेन्टलमैन' कहते थे। अब बकमा बस्ती पीछे छूट गई थी। सूर्य अस्त होने में अभी देर थी।

बाबा के कदम अब इतनी तेजी से नहीं उठ सकते थे। वह बहुत थक गया था।

भालीसीमा बाज़ार में पदसिंह और रतन ने रामलाल को प्रणाम किया। फिर शिवप्रसाद ने बाबा को चाय के लिए रोका, पर बाबा घर से लौट आने का वचन देकर आगे बढ़ गये।

हाट बाज़ार वाले मोड़ पर अतुल मिल गया। उस ने कहा, "प्रणाम बाबा!"

रामलाल ने अतुल के सिर पर प्यार का हाथ फेरकर पूछा, "गाँव में सब सुख शान्ति तो है? हमारे गाँव-बूढ़ा के घर में तो सब कुशल मंगल है?"

अतुल ने मुस्कराते हुए बाबा का बिस्तर अपने कन्धे पर ले लिया।

"तुम चलो, अतुल!" बाबा ने कहा, "मैं ब्रह्मपुत्र देवता से मिल आऊँ। देवता के दर्शन किये बिना मन मानता नहीं।"

अतुल घर की ओर चल दिया और रामलाल बाबा ब्रह्मपुत्र की ओर उतर गये।

सड़क से ब्रह्मपुत्र का अन्तर बाबा ने कोई आध घण्टे में तय किया। आज बाबा बहुत थक गये थे। ब्रह्मपुत्र शान्त गति से बह रहा था।

घुटने टेक कर बाबा ने दोनों हाथों से धरती का सहारा लिया। फिर बाबा पूरी तरह झुक कर ब्रह्मपुत्र का पानी पीने लगे फिर दोनों हाथों से पानी लेकर बाबा पानी गिराने लगे।

सूर्य अस्त हो रहा था। दो मेघ-लहरों के बीच सूर्य कितना स्निग्ध प्रतीत हो रहा था, जैसे सूर्य ने बाबा को पहचान लिया हो। आकाश पर एक नयनाभिराम चित्र अंकित हो गया था—दो हाथी दोनों ओर से अपनी अपनी सूँड़ उठा कर बाबा का अभिवादन कर रहे थे।

चौदह



ध्यानजी और मालती अभी तक पुलिस की हिरासत में थे। देवकान्त न जाने कहाँ छिप गया था। नारायण दारोगा की यही ड्यूटी लगाई गई थी कि वह देवकान्त को गिरफ्तार करके पेश करे। पुलिस को सन्देह था कि देवकान्त का सम्बन्ध बंगाल के एक आतंकवादी दल से है और उस दल की ओर से उसे अवध में सरकार के विरुद्ध क्रान्ति की आग भड़काने के लिए भेजा गया है।

एक-दो बार रामलाल कक्कड़ भी नारायण दारोगा के पास हो आये थे और दारोगा ने साफ-साफ कह दिया था कि जब तक देवकान्त हाथ नहीं आ जाता ध्यानजी और मालती को छोड़ना कठिन है।

गजन मीरी तो उलटा मजनूँ को भी इस मामले में फँसाने की चिन्ता में था। उस ने रामलाल कक्कड़ के लाख मना करने पर भी नारायण दारोगा के सामने जाकर गवाही दी कि जहाँ तक उसे ज्ञान है मजनूँ ही देवकान्त को ध्यानजी के पास ले गया था। यदि गाँव के कुछ लोगों ने जिन में सलीम अब्दुल कादिर और जगन्नाथ भगत के अतिरिक्त रामलाल कक्कड़ भी सम्मिलित थे, बीच-बचाव न किया होता, तो बैठे-बिठाये नीलकंठ पर संकट का पहाड़ टूट पड़ता।

गजन को बिलकुल आशा न थी कि रामलाल कक्कड़ बैरी होकर नीलकंठ का साथ देंगे। उस ने तो अब्दुल कादिर को भी यह पट्टी पढ़ानी शुरू कर दी थी, "एक अवसर से मोची और मुसलमान का मेल हो सकता

है। जब मुसलमान और मीरी दोनों ही मुर्दे को दफनाते हैं, फिर कौन कह सकता है कि मुसलमान तो असमिया के ही समीप हैं! यह और बात है कि असमिया और मुसलमान दोनों असमिया बोलते हैं और इस हिसाब से मुसलमानों की गिनती भी असमिया में ही की जाती है।

रामलाल काका के यहाँ पहुँचने के दूसरे दिन ही उनकी अनुपस्थिति में माधव उन्हें 'हाथी काका' कहकर उनका उपहास करने लगा और इस काम के लिए पुरानी लोकोक्ति कहने में भी न हिचकिचाया—'यह हाथी तुमसे छिपे जा रहा है और शीघ्र शहर में बैंगनचोर को पकड़ना चाहता है।' सुनने वालों ने यह खबर रामलाल काका को भी जा सुनाई, पर क्या मजाल कि उन के माथे पर एक भी बल पड़ा हो बल्कि सुन कर हँसने लगे।

रामलाल काका धीरे धीरे काम करने के अभ्यस्त थे। उनके बोलने के ढंग में हाथी को उठाने और बैठाने का ढंग था। बात बात में हाथी का उल्लेख करना उन्हें रुचिकर था। उनका संकल्प दृढ़ था। वे किसी कष्ट से घबराते न थे। यद्यपि काका ने अपने आप को विवाह के चक्कर से अलग ही रखा था। फिर भी उन का विश्वास था कि स्त्री को भी उसी प्रकार सिधाने की आवश्यकता है जैसे हथिनी को।

धर्मानन्दी और आरती किसी प्रकार पुलिस के फन्दे से निकल आयें, रामलाल काका को तो यही चिन्ता खाये जा रही थी। जिस दिन वे शिवसागर पहुँचे थे, धर्मानन्दी और आरती के इस फन्दे में फँसने का यह तीसरा दिन था। आज था पाँचवाँ दिन। काका ने कुछ खाया न पिया उन्हें अर्जुन की प्रतीक्षा थी।

काका के पास तो बड़े-से-बड़े संकट के लिए भी हाथी को सिधाने से बढ़कर दूसरी उपमा न थी। यहाँ पहुँचने के पहले दिन ही अर्जुन देवता के दर्शन करने के पश्चात् जब काका भीमसिंह के घर पहुँचे थे, तो अर्जुन ने ही सर्वप्रथम उन को धर्मानन्दी और आरती के संकट की कहानी सुनाई थी। उसी रात काका ने ध्यान में बैठकर नारायण दासगुप्ता से कहा था, "धर्मानन्दी को आप भले ही चाहे जितने दिन रखें, पर आरती को तो आप

छोड़ देना चाहिए।" फिर काका ने बलपूर्वक कहा था, "लकड़ी को पाने में जाने का मामला तो बहुत छोटा है। इस में तो सारे दिसांगमुख के मान अपमान का प्रश्न है।" पर नारायण कब सुनने वाला था! काका ने नार्मन साहब की प्रशंसा आरम्भ कर दी, वे तो इतने भले आदमी थे कि जब उन्हें पता चलता था कि चाँदकुंवरी का अमुक हाथी बीमार है, तो रात-रात भर जागते रहते थे।" नारायण ने हँसकर कहा था, "यह तो सरकार की पगड़ी पर हाथ डालने का मामला है। इस में तो नरमी नहीं बरती जा सकती।"

कल भी सारा दिन काका ने कुछ नहीं खाया था। वह तो अपनी ही झोंपड़ी में जाकर रहना चाहते थे, पर गाँव-बूढ़ा ने उन्हें बिलकुल न छोड़ा। अतुल भी यही हठ करता रहा था कि अभी वे यहीं रहें। उनके लिए पोखर के किनारे वाली नई झोंपड़ी खाली कर दी गई थी, जो अभी कुछ ही दिन पहले अतुल ने अपने लिए बनवाई थी। कल काका ने प्रातः और सायंकाल एक-एक गिलास चाय अवश्य पी थी, पर नीलमणि और सोनपाही के बार-बार अनुरोध करने पर भी काका के मुँह में चावल का एक भी दाना नहीं गया था। कल्याण भगत और अब्दुल कादिर भी दो-तीन बार मिलने आये थे। उन्हें भी काका के कुछ न खाने की बहुत चिन्ता थी पर वे जानते थे कि काका तो अब उसी समय अनशन तोड़ेंगे, जब धनानन्दी और माखो छूटकर आ जायेंगे, या कम-से-कम नारायण शइकिया माखो को ही अपने फन्दे से निकाल देगा।

काका का विचार था कि नारायण शइकिया भी एक प्रकार का जंगली हाथी है और यत्न करने से उसे अवश्य सिधाया जा सकता है, पर नीलमणि कल रात उन की इस बात पर देर तक हँसता रहा था। काका ने बहुत गम्भीर होकर कहा था, "जैसा हाथी का संस्कार, वैसा ही मनुष्य का, सब ठीक हो जायगा; बुद्धि चाहिए और संयम भी।" पास से अतुल ने पूछ लिया था, "तो क्या आप ब्रह्मपुत्र के संस्कार को भी हाथी का ही संस्कार कहेंगे, काका?" इस के उत्तर में भी काका ने यही कहा था, "हाँ हाँ,

मेरे लिए तो अब्दुल की बात ऐसे ही है, जैसे सौ हाथी मारे चले आ रहे हों। यहीं एक के लिए पाँच सौ हाथी की गिनती कर लो। मशाल चाहिए, फिर कुछ भी कठिनाई नहीं रह जाती।"

आज अब्दुल यहाँ चला गया ! बार-बार बाबा अपने मन से पूछ रहे थे। थाने गया होगा। मुझे भी क्यों न ले गया ? उस ने सोचा होगा कि एक रात और एक दिन की भूल ने ही बाबा को बहुत कमजोर कर दिया है और अब उन को आराम करना चाहिए, पर आराम करने के लिए तो है ही नहीं यह जीवन। कुछ-न-कुछ तो करना ही होता है। नार्मन साहब तो यही कहा करते थे। अपने देश में पहुँचकर भी तो वे खाली हाथ नहीं बैठे होंगे। चलते समय नार्मन साहब ने बताया तो था, "अब हम उसी प्रकार से जाकर रहेंगे, जहाँ हमारा जन्म हुआ था; और जहाँ तक बन पड़ेगा, हम अपने लोगों की निष्काम सेवा करेंगे।" यहाँ मैं भी तो अब यही करूँगा। मुझे तो आते ही काम मिल गया। जिस समय मैं यहाँ पहुँचा और धमानजी की गाथा सुनी, अपना सुख-चैन सब भूल गया। यदि नारायण दरोगा मेरी बात मान लेता, तो उस का क्या घट जाता ? धमानजी को न छोड़ता तो न सही, अरजी को तो छाड़ देता। अब तो मुझे गाँव के सौ-पचास आदमी साथ लेकर जाना चाहिए। मैं देखूँगा कि नारायण कैसे आदमी को नहीं छोड़ता। आज कल्याण भगत भी नहीं आये। अब्दुल धनि भी नहीं आया। धनसिंह और रतन तो क्या शक्ल दिखायेंगे ? उन्हें चाय पिलाने और खुशामद करने से काम। अब तो आधार और साधन मौरी भी आये थे, आज वे भी नहीं आये। साधन तो शायद नाराज हो गया। अब मैं उसकी झोंपड़ी में जाकर क्या करूँगा ? अपना तो न कोई बेटा है न बेटी। साधन दूर के सम्बन्ध में मेरा भतीजा अवश्य है, पर क्या रक्त का सम्बन्ध ही सब से बड़ा सम्बन्ध होता है ? अब मैं धमानजी की चिन्ता में घुला जा रहा हूँ, तो इस में कौन सा रक्त का सम्बन्ध है ?

डाक्टर की स्मृति भी आ निकले। उस के पीछे-पीछे, गुरुजी पर कर

लगाता नीलमणि भी आ गया। बगीचे में बतखों की कें-कें ने एक स्वर ताल बाँध रखा था। कभी-कभी ये बतखें सामने वाले पोखर में तैरने लगतीं।

भगत जी बोले, "बोहाग बिहू में सात दिन रह गये।"

"चैत के अन्तिम सात दिन शेष हैं।" नीलमणि ने गुड़गुड़ी पर कश लगाया, "यह हिसाब तो सीधा है। बोहाग बिहू में सात ही दिन तो रह गये।"

बोहाग बिहू से हटकर बात किस प्रकार कामाख्यापुरी की रथ-यात्रा तक जा पहुँची, इसका रामलाल को पता ही न लगा।

"अब अगली तीर्थ-यात्रा पर रामलाल को भी अपने साथ ले चलना, भगत जी!" नीलमणि ने हँसकर कहा।

"यदि तुम भी संकल्प कर लो तो आज ही तय कर लें।" भगत जी गम्भीर होकर बोले, "अपना क्या है! गुनवाय का विवाह बोहाग बिहू के पश्चात् ही करने का विचार है। फिर तो हमें छुट्टी ही-छुट्टी है।"

"कोई लड़का ठीक कर लिया?" नीलमणि ने गुड़गुड़ी को मुँह के पास लाकर कश लगाया, "कहाँ ठीक किया लड़का? मामुली के किसी गाँव में? लोग हँसेंगे 'मामुली से आया हुआ' वाला व्यंग्य उस पर तो फिर बैठा रहेगा अपना महसूल। बात तो ठीक है। मामुली वाले अभी हम लोगों से तीन सौ वर्ष पीछे हैं। आप हैं कि केवल इसी कारण कि मामुली में चार बड़े वैष्णव सत्र विद्यमान हैं, गुनवाय को मामुली में ब्याहने का संकल्प कर चुके हैं। इस में तो रामलाल की सलाह अवश्य ले लो, भगत जी!"

"रामलाल को तो मामुली अप्रिय न होगी। क्यों, रामलाल भाई!" भगत जी मुस्कराये।

रामलाल चुप रहा।

भगत जी ने अपने बेटे सुधीर की प्रशंसा आरम्भ कर दी। सुधीर का विवाह पिछले वर्ष हो गया था। घर में बड़ी समझदार बहू आई थी। शिकारी गाँव की लड़की थी। मामुली में शिकारी गाँव तो प्रसिद्ध था।

मस्त जी को सिकरी गाँव के साथ लगे हुए कोसारी गाँव में सुश्रुषा के लिए एक लड़का ठीक होने की आशा थी।

अचानक बछड़ों की बें-बें और पक्षियों की ध्वनि के ऊपर उभरकर एक पतली-सी और अस्पष्ट पीड़ा-भरी आवाज सुनाई देने लगी। नीलमणि ने ठुड्डी पर हाथ रखते हुए कहा, "अब मैं ठुड्डी को मूँद नहीं सकता!"

"ऐसी क्या बात हो गई!" रामलाल काका ने झट पूछ लिया।

"यह कोयल की कूक है!" नीलमणि ने आँखों के कोनों में अपनापन और मुस्कान समेटते हुए कहा, "सुन नहीं रहे? कोयल कूक रही है। मैं तो अपने हृदय में कोई पुरानी वेदना जागते देख रहा हूँ।"

"तो यह कहो कि अभी हृदय में यौवन की तरंगें शेष हैं।" मस्त जी मुस्कराये।

वह देर तक कोयल की कूक सुनते रहे और फिर वातावरण का क्रम न जाने किस-किस प्रसंग पर खिसकता रहा। रामलाल काका अन्यमनस्क-से हूँ-हाँ करते रहे। उनके सामने तो एक ही प्रश्न था कि बापपत रहीमा को कैसे छिपाया जाए।

इतने में अतुल दौड़ता हुआ आया।

पुलिस ने धर्मानन्दी और मालती को छोड़ दिया था और वह उन्हें घर पहुँचा आया था। वह बहुत खुश था।

उस पर प्रश्नों की बौछार होने लगी। वह बड़े भय से उत्तर देता रहा; जैसे यह दिसौंगिमुन की विजय हो, जैसे दिसौंगिमुन का अपमान होते होते बच गया हो।

रामलाल धीरे से उठकर धर्मानन्दी से मिलने चला गया।

धर्मानन्दी अपना सामान उठाकर घर से निकलने वाला ही था कि रामलाल वहाँ आ पहुँचा।

"आओ, दादा!" धर्मानन्दी ने मुस्कराते हुए स्वागत किया, "थाँदली से कब आये?"

धर्मानन्दी के मुख पर कोई घबराहट न थी मालती के मुख पर भी और

साथ न थी। जो कुछ हुआ, उसका उन्हें तनिक भी खेद न था। जो कुछ उन्होंने किया, उस पर उन्हें गर्व था।

रामलाल यह देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। बातें करते-करते वह दूर तक उनके साथ गया। धमानन्दी ने नाव पानी में उतारी, रामलाल किनारे पर ही खड़ा रहा। वही धन्धा था, वही पुरानी नाव भारती के हाथ में था चप्पू और धर्मानन्दी के हाथ में था जाल, जो उनके जीवन का अवलम्ब था।

पुरानी नाव चंचल लहरों पर थिरकती जा रही थी। बूढ़ा रामलाल अपनी कमर को सीधा रखते हुए आकाश की ओर देखने लगा जो आज स्वयं ही अपनी नीलिमा पर मुस्करा रहा था फिर वह वायु में रमी हुई कुभाव पर विचार करने लगा—यह तो नेपालियों की चितालिया बस्ती की ओर से आ रही है जिसके पीछे दिसौंग नदी के साथ-साथ दूर तक पाकुली बिल और कलमा बिल का जंगल बसा गया है। फिर जब रामलाल ने देखा कि धर्मानन्दी की नाव आँख से ओझल हो गई तो वह उस बड़ी नाव को निहारने लगा जिस पर धमानन्दी ने झोंपड़ी बना रखी थी। यह नाव सदा यहीं बँधी रहती थी। कलमा बस्ती में अपना घर छोड़कर बहुत दिनों से धमानन्दी नाव पर बनी झोंपड़ी में रहने लगा था।

वहीं खड़े-खड़े रामलाल अपनी कल्पना के पर्दे उठाकर आज से सात बरस पहले का चित्र देखने लगा धमानन्दी गम्भीर मुद्रा में भारती से कह रहा है—तू मेरी बेटी नहीं भारती, तू मेरा बेटा है। फिर अपना तो धन्धा ही ऐसा है, बेटा! सारा निर्सिंगमुख एक ओर, तेरा बापू एक ओर। अपना तो यही विचार है, बेटा! भारती सामने से कुछ नहीं बोलती। धमानन्दी फिर कहता है—मछुए की बेटी किसी से दबकर रहे, यह तो उसके धन्धे की पुकार नहीं है बेटा! आज से तू मेरे साथ चला कर। तेरे हाथ में चप्पू रहे, मेरे हाथ में जाल। हम देखेंगे, कैसे नहीं मिलती मछलियाँ मस्तिष्क को झटका-सा लगा, रामलाल ने सँभलकर सोचा—सात बरस में भारती वैसी ही बन गई, जैसी एक मछुए की बेटी होनी चाहिए!

पन्द्रह



अतुल जानता था कि ब्रह्मपुत्र की धार को भागते हुए हाथियों के झुण्ड से उपमा देना ठीक नहीं, पर लोगों के विरोध की बाढ़ तो अतुल कुछ वैसी ही थी। सब से पहले कल्याण भगत के मुख से ही यह आवाज निकली—'आज भारती भागी गई, कल गुलाब... जायगी!' फिर तो हर कोई अपनी बेटी या बहन का नाम जोड़कर इस आवाज को आगे बढ़ाने लगा, और अब तक अमानन्दी और भारती को लूटकर भागे कई दिन हो चुके थे, लोग इस बात में नमक-मिर्च लगाकर इसे फैला रहे थे। वामन मीरी को भी अपना स्वार्थ सिद्ध करने का अवसर मिल गया। वह कह रहा था, "भीतर से देवकान्त और अतुल दोनों एक हैं। अमानन्दी बेचारा तो निर्दोष है। वह तो अतुल के कहने पर ही देवकान्त को उस पार छोड़ने गया था।' भगत की ... ह अमानन्दी और अतुल दोनों पर ही दोष थोप रहे थे।

पदमसिंह की दुकान पर भारती का उल्लेख कभी 'सिर फिरी हथनी' के रूप में किया जाता, कभी उसे 'जंगल की हिरनी' कहकर याद किया जाता। लम्बी डाल... भारती अपने पिता के साथ मछलियाँ पकड़ने जाती, यह बात भावों को बुरी तरह खटकने लगी—'भारती हिमालय... का नाम डुबायेगी। यह शिवसागर की लड़कियों के समान साड़ी नहीं पहनती है! यह सिर उठाकर क्यों चलती है! बड़ों-बड़ों के मुँह आगे यह तनिक भी क्यों नहीं झिझकती!' ऐसी-ऐसी बातें भारती के सिर थोपकर अनेक

बन्द कर जाते, और अगले ही क्षण बात का रुख बदलकर कहा जाता, "यदि देवकान्त और अतुल जैसे छोकरों को आपा धापी करने की छूट दी गई, तो सरकार हमारे विरुद्ध हो जायगी। फिर पुलिस को अवसर मिल जायगा कि जैसे उस दिन भारती को थाने में बुला भेजा था, वैसे ही दूसरों की बहू-बेटियों को हिरासत में लेकर मामले की पूछताछ करे।"

भगत जी ने तो अतुल से बात करना भी छोड़ दिया था, जैसे अतुल पर सब से अधिक क्रोध भगत जी को ही आ रहा हो। पञ्चानन बाबू के कहने पर भी वे टस-से-मस न हुए। गाँव में दूसरे लोगों से भी पञ्चानन बाबू ने बहुत कहा-सुना। लगता था कि जितने सहज भाव से बाबा ने जंगली हाथियों को सिखाया होगा, लोगों को सिखाना सम्भव नहीं।

घर में नीलमणि भी चुप रहने लगा था। भगत जी की बात उसे ठीक प्रतीत होती थी। साथ ही वह सोचता था कि इस प्रकार तो सरकार में बदनामी हो जायगी और अतुल को गाँव-बूढ़ा की पदवी नहीं मिल सकेगी। नारायण दारोगा के पास जाकर वह बहुत गिड़गिड़ाया कि वे अतुल को समझायें।

एक दिन अतुल को थाने में बुलाकर नारायण दारोगा ने पहले तो एक घण्टे तक उसे पूछा तक नहीं कि वह किस खेत की मूली है, फिर उसे भीतर बुलाकर पुचकारा, 'तुम्हारा तो बाबा भी गाँव-बूढ़ा था। फिर गाँव बूढ़ा की पदवी तुम्हारे बापू को मिली। अब तुम्हारा बापू चाहता है कि यह पदवी तुम्हें मिल जाय। यह कुछ भी कठिन नहीं। तुम देवकान्त का पता बता दो, तो हम देवकान्त को बिलकुल पता नहीं चलने देंगे कि उस का भेद तुम ने ही बताया है।"

'मुझे देवकान्त का बिलकुल पता नहीं।" अतुल ने बलपूर्वक कहा।

नारायण ने दोबारा पुचकारा

"तो फिर चमनलाल को समझाओ कि वह सहायता करे। सरकार इनाम देगी। सरकार कोई भी हो, लोगों का काम है सरकार की आज्ञा मानना और कानून का पालन करना। कानून तो आवश्यक है। कानून के

किया तो शान्ति स्थिर नहीं रह सकती। शान्ति न हो तो किसी वस्तु का ठिकाना ही न रहे। जब अहोम राजा थे, तब उनका कानून चलता था। अब अंग्रेज का कानून है। बहुत सोचकर बनाया गया है कानून। जो मनुष्य कानून को ठोकर देना चाहता है, कानून पर टिकी हुई सरकार को समाप्त कर देना चाहता है, क्या कानून उसे कभी क्षमा कर सकता है?"

अतुल कुछ न बोला।

मायाधर ने फिर कहा, 'तुम चाहो तो तुम्हारे बापू की यह इच्छा पूरी हो सकती है कि एक दिन उसके स्थान पर तुम गाँव-बूढ़ा बनो। केवल एक ही शर्त है कि देवकान्त का पता लगाने में सरकार की सहायता करो। देवकान्त हाथ लगे तो मेरा भी पद बढ़ जाय।"

अगले दिन अतुल ने माँ को बताया तो वह बोली, 'देवकान्त तो सरकार की आँख में काँटे की तरह चुभता है। तुम कुछ दिन बचकर रहो। मैं तो कहती हूँ कि तुम धनानन्दी से भी न मिला करो। कुछ दिनों में बात दब जायगी। यदि देवकान्त ने सरकार का कुछ बिगाड़ा है, तो उसका दण्ड उसे अवश्य मिलेगा। तुम क्यों मुफ्त में बदनाम होते हो?"

अतुल ने कुछ उत्तर न दिया। माँ ने समझा कि उसकी बात से अतुल प्रभावित हुआ है। उस ने बलपूर्वक कहा, "अपने बापू की ओर देख और मेरी ओर भी। तू हमें सुख देना चाहता है या दुःख? यह तो मैं मान ही नहीं सकती कि तू हमें सुख देना नहीं चाहता।"

पास से रामलाल काका ने बात आरम्भ कर दी, "लोग तो पागल हैं जो अतुल और धनानन्दी को दोष देते हैं। देवकान्त के माथे पर तो नहीं लिखा हुआ था कि वह अपराधी है। देवकान्त ने अवश्य घोर अपराध किया है। तो पुलिस का काम है कि उसे पकड़े और कचहरी में ले जाय। अतुल और धनानन्दी का क्या दोष? आरती का तो बिल्कुल ही कोई दोष नहीं था। जब धनानन्दी देवकान्त को उस पार छोड़ने गया, तो आरती हर रोज की तरह नाव का चप्पू चला रही होगी। अब यह तो घोर अपराध नहीं।"

"तो फिर अपराध किसका है ?" सोनदादी ने चकित होकर कहा।

"मुझे पूछो तो अपराध अपदस्थ दारोगा का है।" रामलाल ने जोर देकर कहा।

"दारोगा का क्या अपराध है ?" सोनदादी मुस्कराई।

"मैं उसे जानता हूँ। उस ने ऊँचा पद पाने का रहस्य समझ लिया है। वह सदा ऐसे कार्य करने में ही साहस दिखाता है, जिनकी खबर सदा ऊँचे अधिकारियों तक जा पहुँचती है। हाट-बाजार में या सड़क पर लोगों को ठोकर मारते अपदस्थ दारोगा को तनिक भी संकोच नहीं होता। वह गन्दी से-गन्दी गाली देता है, लोगों को बूट की ठोकर मारता है और अपने अफ़सरों के बूटों के तस्मे खोलते और कसते हुए भी वह बाज नहीं आता।'

"हम तो अपनी बात करें, उसकी बात उसके साथ रही।'

"यह नहीं हो सकता। मुझे अपनी बात तो कहने दो। सिपाही से हवलदार तो जल्दी ही बन गया था अपदस्थ, पर हवलदार से दारोगा बनते उसे बहुत देर लगी। उसकी भारी आकांक्षा मिलकर भीरुता बन गई। यह भीरुता उसे चैन नहीं लेने देती। उसे सदा यही दिखाई देता है कि दुनिया सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रही है। उसके बूट की ठोकर से कौन-कौन भद्र पुरुष लांछित और अपमानित नहीं हुआ होगा ! जब वह हवलदार था, तब से उसका यही काम रहा। इसका यही इनाम मिला कि उसे दारोगा बना दिया गया।"

इतने में नीलमणि भी जाग उठा। उस ने रामलाल की बातें सुनीं तो दोनों हाथों से सिर पकड़ लिया। सवेरे के सूर्य के प्रकाश में रामलाल की मुख-मुद्रा बहुत गम्भीर दिखाई दे रही थी।

रामलाल कब चुप रहने वाला था, वह कहता चला गया, "ये लोग, जो आज अमानन्दी और अकुल को बुरा कहते हैं स्वयं कौन से अच्छे हैं ? देवकान्त का क्या अपराध है, यह मैं नहीं जानता। इसलिए देवकान्त के सम्बन्ध में अभी मैं चुप हूँ।"

मधुसू ने कहा, "शिवसागर में जो कुछ होता है काम, वह भी तो तुम से छिपा नहीं।"

"मुझ से तो कुछ भी छिपा नहीं।" रत्नाम ने हँसकर कहा, "क्यों मैं कुली के बंगले में मैं ने तीस वर्ष गुजार दिये, यह तो सब जानते हैं। मैं हाथियों के बीच रहा, इसलिए हाथियों की बात अधिक जानता हूँ। पर जब मैं सात साल पहले छुट्टी पर घर आया था, तो शिवसागर का हाल मैं ने अच्छी तरह देखा था। गाँव में साधारण झगड़ा होता है। फिर यह झगड़ा मार-पीट में बदल जाता है। थाने वाले सोचते हैं—हम किस लिए हैं! वे नहीं चाहते कि झगड़ा शान्त हो जाय। उनकी ओर से तो यही यत्न किया जाता है कि झगड़ा शिवसागर की कचहरी में पहुँचे। न्याय का नाटक आरम्भ होने से पहले दिसाँगमुख का यह सूत्रधार—यह हमारा [illegible] दारोगा—मंगलाचरण के साथ किसी की प्रशंसा करता है और संक्षेप में वही कहानी दोहराता है जो कचहरी की रंगभूमि पर इस से पहले हजार बार दोहराई जा चुकी होती है।"

नीलमणि ने मुँह बनाकर कहा, "तुम अपनी पेंशन से हाथ धोकर रहोगे!"

"सच्ची बात कहने से पेंशन जाती है तो जाय!" रत्नाम ने गम्भीर होकर कहा, "तीस वर्ष तो हाथियों के बीच बिता दिये। अब थोड़े-से वर्ष मनुष्यों की सेवा में बिताने का विचार है। यह विचार मुझे मामन साहब से मिला। मामन साहब से ही मैं ने यह भी सीखा कि मरने से पहले मनुष्य अपनी जन्मभूमि की थोड़ी निष्काम सेवा अवश्य कर जाय। हाँ, तो मैं कह रहा था कि शिवसागर की कचहरी में हर रोज झूठ का नाटक खेला जाता है। झूठी साखी देने वाले जितने चाहो मिल जायेंगे। हमारे दिसाँगमुख में भी ऐसे लोगों की कमी नहीं। किसे और कोर जाय नहीं, वे झूठी साखी देने में ही मोलाद जैसा सम्पूर्ण कमले कमे पाते हैं। झूठ के बिना तो नाटक का पर्दा गिरता है न उठता है, इसलिए इनको के आदे और रोगी में मर-मर कर भरते शिवसागर पहुँचाये जाते हैं।

मुर्गियाँ और कबूतर, सूअर और मछलियाँ—इनका तो कोई हिसाब ही नहीं रहता। दूध के साथ दूध, दही के साथ दही शिवसागर का पेट ही नहीं भरता। पग-पग पर घूस देकर ही समस्या आगे बढ़ता है। घूस के लिए नये-नये शब्द गढ़े जाते हैं—दक्षिणा, भेंट, श्रद्धा के फूल—ऐसे-ऐसे न जाने कितने शब्द घूस के लिए बरते जाते हैं।"

"यही तो देवकान्त भी कहता है, बाबा !" अतुल मुस्कराया।

"तो फिर वह ठीक कहता है। यह बात कहने से उसे कोई नहीं रोक सकता, यहाँ तक कि आपका दारोगा भी। दारोगा के साथ थाने के सिपाही ऐसे चलते हैं जैसे भूत बैताल। उन सब को दक्षिणा चाहिए। दही-दूध और मक्खन ही नहीं हुए, कबूतर और मुर्गी भी। आपका दारोगा तो भूत-बैताल के देवता ठहरे। उनकी पूजा में चाहिए एक जोड़ा परहंस। वाह रे वाह, फिरंगी राज ! एक बार शिवसागर का यह हाल मैं ने मास्टर साहब को भी सुनाया था। उन्हें विश्वास ही नहीं आया था। मैं ने तो निगींगसुन्न का हाल भी सुनाया था। एक बार हाथ में हाली हुई हथकड़ी को खुलवाने की दक्षिणा सौ रुपये से एक दमड़ी कम नहीं लेते दारोगा जी जैसे काम न बने तो अच्छा पानी पिलवाने की धमकी देते हैं। लाख रोओ धोओ, लाख पैर पकड़ो। पगड़ी उतारकर उनके चरणों पर रखो। दण्डवत् प्रणाम करो, चाहे देवता मानकर मंगलाचरण पढ़ो। वे देवता तो मुफ्त में पसीजने से रहे। कभी सौ से उतरें भी, तो अस्सी पर आ रुके। बात बात में दारोगा जी यही बोल मुँह पर लायेंगे—'जेल तुम्हारी राह देख रही है !' कभी कहेंगे—'जेल का भात खाये बहुत दिन तो नहीं हो गये !' अतुल, मैं तो यही कहूँगा कि जेलगाँव का थाना साँप का बिल है। साँप का मन्त्र मालूम होने पर भी इस बिल में हाथ न डाला जाय, यही अच्छा है—"

"आप उपदेश आज ही सुना डालोगे !" नीलमणि ने रत्नाल को टोका, "सुना नहीं, दीवार के भी कान होते हैं। ये बातें दारोगा जी के कानों तक जा पहुँचीं, तो लेने-के-देने पड़ जायेंगे बैठे-बैठे सब मान-प्रतिष्ठा

अंकुल ने कहा, "शिवसागर में जो कुछ होता है काका, वह भी तो तुम से छिपा नहीं।"

"मुझ से तो कुछ भी छिपा नहीं!" रत्नाक्ष ने हँसकर कहा, "चाँदकुली के जंगल में मैं ने तीस वर्ष गुजार दिये, यह तो सब जानते हैं। मैं हाथियों के बीच रहा, इसलिए हाथियों की बात अधिक जानता हूँ; पर जब मैं दस साल पहले छुट्टी पर घर आया था, तो शिवसागर का हाल मैं ने अच्छी तरह देखा था। गाँव में साधारण झगड़ा होता है। फिर यह झगड़ा मार-पीट में बदल जाता है। लड़ने वाले सोचते हैं—हम किस लिए हैं! वे नहीं चाहते कि झगड़ा शान्त हो जाय। उनकी ओर से तो यही यत्न किया जाता है कि झगड़ा शिवसागर की कचहरी में पहुँचे। न्याय का नाटक आरम्भ होने से पहले दिसाँगमुख का यह सूत्रधार—यह हमारा नारायण टाऊगा—मंगलाचरण के साथ फिरंगी की प्रशंसा करता है और संक्षेप में वही कहानी दोहराता है जो कचहरी की रंगभूमि पर इस से पहले हजार बार दोहराई जा चुकी होती है।"

नीलमणि ने मुँह भुलाकर कहा, "तुम अपनी पेंशन से हाथ धोकर रहोगे!"

"सच्ची बात कहने से पेंशन जाती है तो जाय!" रत्नाक्ष ने गम्भीर होकर कहा, "तीस वर्ष तो हाथियों के बीच बिता दिये। अब थोड़े-से वर्ष मनुष्यों की सेवा में बिताने का विचार है। यह विचार मुझे नार्मन साहब से मिला। नार्मन साहब से ही मैंने यह भी सीखा कि मरने से पहले मनुष्य अपनी जन्मभूमि की थोड़ी निष्काम सेवा अवश्य कर जाय। हाँ, तो मैं कह रहा था कि शिवसागर की कचहरी में हर रोज झूठ का नाटक खेला जाता है। झूठी साक्षी देने वाले कितने चाहो मिल जायेंगे। हमारे दिसाँगमुख में भी ऐसे लोगों की कमी नहीं। जिन्हें और कोई काम नहीं, वे झूठी साक्षी देने में ही होशियार बना सम्पूर्ण बच्चे चले जाते हैं। घूस के बिना तो नाटक का पर्दा गिरता है न उठता है, इसलिए गवाहों के जोड़े और टोकरों में भर-भर कर अपने शिवसागर पहुँचाये जाते हैं।

मुर्गियाँ और कबूतर, सुअर और मछलियाँ—इनका तो कोई हिसाब ही नहीं रहता। दूध के साथ दूध, दही के साथ दही शिकमदार का पेट ही नहीं भरता। पग-पग पर घूस देकर ही मामला आगे बढ़ता है। घूस के लिए नये-नये शब्द गढ़े जाते हैं—दछिया, भेंट, श्रद्धा के फूल—ऐसे-ऐसे न जाने कितने शब्द घूस के लिए बरते जाते हैं।"

"यही तो देवकान्त भी कहता है, बाबा!" अतुल मुस्कराया।

"तो फिर वह ठीक कहता है। यह बात कहने से उसे कोई नहीं रोक सकता, यहाँ तक कि मारधरवा दारोगा भी। दारोगा के साथ थाने के सिपाही ऐसे चलते हैं जैसे भूत बैताल। इन सब को दछिया चाहिए। दही-दूध और मक्खन ही नहीं, हंस, कबूतर और मुर्गी भी। मारधरवा दारोगा तो भूत-बैताल के देवता ठहरे। उनकी पूजा में चाहिए एक जोड़ा पाकहंस। वाह रे वाह, फिरंगी राज! एक बार शिकमदार का यह हाल मैं ने गमन साहब को भी सुनाया था। उन्हें विश्वास ही नहीं आया था। मैं ने तो दिलीपामुख का हाल भी सुनाया था। एक बार हत्या में फाँसी हुए दयकड़ी को छुड़वाने की दछिया सौ रुपये से एक दमड़ी कम नहीं लेते दारोगा जी जैसे काम न बने तो काला पानी भिजवाने की धमकी देते हैं। हाथ जोड़ो-जोड़ो, हाथ पैर पकड़ो। पगड़ी उतारकर उनके चरणों पर रखो। दण्डवत् प्रणाम करो, चाहे देवता मानकर मंगलाचरण पढ़ो। ये देवता तो मुफ्त में पसीजने से रहे। कभी सौ से ऊपर भी, तो असली पर आ रुके। बात बात में दारोगा जी यही बात मुँह पर लायेंगे—जेल तुम्हारी राह देख रही है! कभी कहेंगे—'जेल का भात खाये बहुत दिन तो नहीं हो गये!' अतुल, मैं तो यही कहूँगा कि बेलगाँव का थाना साँप का बिल है। साँप का मन्त्र मालूम होने पर भी इस बिल में हाथ न डालना काम, यही अच्छा है—"

"आप उपदेश भाव ही सुना डालोगे!" श्रीलनरिद ने सवाल का रोका, "सुना नहीं, दीवार के भी कान होते हैं। ये बातें दारोगा जी के कानों तक जा पहुँचीं, तो लेने-के-देने पड़ जायेंगे बैठे-बैठे सब मान प्रतिष्ठा

चली जायगी।"

"छिंगी राज को समाप्त करने की बात तो देवकान्त भी कहता है, काका!" प्रफुल्ल ने गम्भीर होकर कहा, "पर काका, वह तो अलकता से मोर्चा आरम्भ करके दिसौंगमुख से छिंगी राज समाप्त करना चाहता है और यह बात मैं नहीं मानता। दिसौंगमुख का मोर्चा तो दिसौंगमुख में ही लगना चाहिए।"

"तुम चुप भी रहोगे या नहीं, प्रफुल्ल!" नीलमणि ने फटकारा, "देखते नहीं कि गाँव में लोग तुम्हारा और धर्मानन्दी का नाम ले-लेकर क्या कुछ कह रहे हैं! देवकान्त तो एक दिन पुलिस के हाथ पड़कर रहेगा। कहीं आयगा भागकर, तुम भी फँसोगे। मेरा नाम बदनाम करोगे। मेरी पदवी भी छिनेगी और फिर वह पदवी कभी तुम्हें नहीं मिलेगी। तुम्हारे बाबा की आत्मा को कितना कष्ट होगा। तुम न आगे से मुँह ऊँचा करके बात न की, तो मैं कहूँगा मेरे घर से निकल जाओ और अपना रास्ता नापो!"

सोनपाही ने मुस्कराकर कहा, "तुम भी तो अपनी जबान पर काबू नहीं रख सकते। बात को बढ़ाना तो कोई तुम से सीखे। गाँव में हर कोई प्रफुल्ल के विरुद्ध हो रहा है पर मैं भी तुम उसे प्यार-दुलार नहीं दोगे, तो उसका दिल टूट जायगा।"

"प्रफुल्ल कोई मच्छर तो नहीं है कि उसे कोई फूँक मारकर उड़ा देगा।" रत्नकान्त ने गम्भीर होकर कहा, "हमारे मार्गन साहब कहा करते थे कि विवाद करते समय दूसरे की बात ध्यान से सुनो। बात का उत्तर बात से दो, मुक्के से नहीं। मुक्का तानकर बात करना बुद्धिमत्ता का कार्य नहीं। पिता के सामने पुत्र भी बात कर सकता है। जब पिता के कन्धे तक आने लगे पुत्र का सिर, तो पिता को चाहिए कि पुत्र को समानता का दर्जा देना आरम्भ कर दे। बात करते समय तो सब बराबर हैं। मार्गन साहब यह बात मानते थे। और, छोड़ो यह विवाद। आज मैं ने सात वर्ष बाद नीलमणि को गरम होते देख लिया। गाँव-बूढ़ा की पदवी तो सचमुच बड़ी पदवी है; पर यह पदवी और भी बड़ी बन जाती है, यदि सरकार के अतिरिक्त लोग

भी सम्य हों। इसके लिए सचाई का तो न देखा जाय। जिस पदवी को बचाने के लिए भूख की शरण लेनी पड़े, वह भी कोई पंक्तियों में पदवी है।'

सोनपाही ने प्रसंग बदलते हुए कहा, "अतुल, तुम आज अपने ननिहाल अवश्य हो आओ। कौन दूर है गिलसीबाड़ी! मल्लना और रेणु उदास हो गये होंगे उन्हें लेते आओ।"

'हाँ हाँ मल्लना को अवश्य ले आओ, अतुल!' रामपाल की आँखें चमक उठीं, "मल्लना तो मुझे पहचान भी न सकेगा। सात वर्ष का समय कुछ कम तो नहीं होता। और रेणु का तो जन्म ही मेरे पीछे हुआ।"

नीलमणि बोला, "बातें तो बहुत हो लीं। अच्छा अतुल तुम गिलसी बाड़ी हो आओ। जलपान में क्या देर है! आज तो चिड़वा और दही खाने की इच्छा है।"

सोनपाही झट भीगा हुआ चिड़वा और दही लेती आई। झोंपड़ी के बरामदे में चटाई पर बैठे-बैठे जलपान आरम्भ हो गया।

जलपान के पश्चात् अतुल गिलसीबाड़ी चला गया और नीलमणि खेतों की ओर हो लिया।

रामपाल अपनी झोंपड़ी में आ बैठा। वह अपने मन में बातें करने लगा—दिसाँगमुख में कितनी अनबन है! इनका बस चले तो पानी पर भी दीवारें खड़ी कर दें, हवा को भी बाँट लें। कोई बात हुई भला! बड़ा गड़बड़ घोटाला है। मीरी, असमिया और नेपाली में बरसों से लड़ाई चल रही है—खुली लड़ाई और छिपी लड़ाई। मायाराम दारोगा तो यही चाहता है कि लोग आपस में लड़ते रहें, शिवसागर की कचहरी में झूठी गवाही देनी पड़े पर गाँव की भी एक मान-मर्यादा तो होनी चाहिए। जैसे आदमी के सिर पर पगड़ी होती है, वैसे ही गाँव के सिर पर होता है गाँव-बूढ़ा पर पगड़ी के नीचे हाथ पैर और शरीर के दूसरे अंग सब मिलकर रहने चाहिएँ।

झोंपड़ी से निकलकर रामपाल बाँस के झुरमुट की ओर चला गया।

बेगवती वायु में बाँस और भी झुक-झुक कर डोलने लगे। बाँस के पत्तों से छन-छनकर सूरज की चंचल किरणें रामलाल के मुख पर पड़ रही थीं। पत्थर का बना दर्पण के समान झिलमिल कर रहा था। रामलाल विचारधारा में बह गया—सारा गाँव मकुल की बुराई कर रहा है। लोग कह रहे हैं कि मालती को उसी ने थाने भिजवाया। यदि वह देवकान्त को धर्मानन्द के घर न ले गया होता, तो बेचारा धर्मानन्द इस चक्कर में न फँसता। आज मालती थाने गई, कल रूपतारा जाएगी। वैसे एक-दूसरे की जान लेने पर तुले हैं, पर मकुल की बुराई करते समय एक हो जाते हैं। उस समय भी तो एक हो जाते हैं, जब घर में बेटा जन्म लेता है; नेपाली हो चाहे मीरी चाहे असमिया, सभी इस खुशी में ब्रह्मपुत्र पर नारियल चढ़ाते हैं। यह सोचते ही उसकी दृष्टि नारियल के पेड़ों की ओर उठ गई।

बाँस के झुरमुट से चलकर वह नारियल के नीचे जाकर खड़ा हो गया। वह सोचने लगा : 'मौसम का बैंगन पक रहा है—मुझे तोड़ लो, मुझे तोड़ लो!' अरे सबर भी कर, मौसम को तो आने दे। नेपाली और असमिया अपनी-अपनी भाषा में कहते हैं—'मीरी अपनी पत्नी से मिलता है तो उसे पीटता है।' मीरी भी तो अपनी कहावतों में असमिया और नेपाली का उपहास करते हैं और यह तो तीनों ही कहते हैं—'मर नाव का खसा झुलाओ, मर दुलहिन की पिटाई करो!' कहावतों के मामले में भी सब एक हो जाते हैं। 'जल्दी-जल्दी ताम्बूल काटो, यह भी नहीं जानते कि हम कुपने सम्बन्धी हैं!' यह तो पूरे दिसाँगमुख की आवाज है। क्या यह किसी दूसरे गाँव की आवाज नहीं हो सकती? ऐसी संकुचित दृष्टि भी क्या कि इसे दिसाँगमुख की ही सूक्ति माना जाय? 'जिस मछली को खरीद लिया, उस के तो पूँछ तक मांस-ही-मांस है!' यह तो माजुली के किसी गाँव की आवाज भी हो सकती है, जहाँ मगर भी अपनी मनहारा को ज्यादा चाहते हैं। 'वह मछली खरीदो जिसकी नाक बीच की ओर हो, और वह दुलहन घर लाओ जिसकी माँ बहुत भली हो!' अब इस पर भी तो सब को एक होना पड़ेगा। सचाई तो सब के लिए है। मीरी, नेपाली और

अकुनिया के सिर क्या अलग अलग हत्याएँ होंगी? 'एक सौ गोरू मारने के पश्चात् तो बाघ की भी मृत्यु आ जाती है।' इस पर किसे सन्देह होगा? 'सात पीढ़ियों से गाय की शक्ल नहीं देखी, और वह बाँस का चोंगा उठाये दूध दुहने जा रहा है।' जो आदमी वृथा ही डींग मारे उसका तो इसी तरह उपहास किया जाता है। चौंग्कुली के जंगल में भी मेरे मुँह से यही बात निकली थी, यहाँ भी मेरे मुँह से यही शब्द निकलेंगे। राखाल ने पीछे मुड़कर देखा तो धर्मानन्दी चला आ रहा था।

"आओ, धर्मानन्दी!" राखाल मुस्कराया।

"तुम्हें बुलाने आया हूँ, दादा!" धर्मानन्दी ने हँसकर कहा, "अब चलना है, तो जल्दी करो पहले ही देर हो गई। आरती हमारी राह देख रही होगी।"

"मैं तो मल्लाह हूँ, मछुआ तो नहीं कि तुम्हारे साथ जाऊँगा नाव में बैठकर!"

"चौंदकुली तो पीछे छोड़ आये, दादा! वहाँ हाथी होंगे, तो यहाँ ब्रह्मपुत्र है। ब्रह्मपुत्र में मछलियाँ पकड़ना ही अपना धन्धा ठहरा। चलो हमारे साथ। आरती कह रही थी कि काका से चौंग्कुली की कहानियाँ सुनेंगे।"

"अच्छा चलो।"

घाट पर पहुँचकर राखाल ने देखा कि नाव पहले से तैयार है। "आओ, काका!" आरती ने राखाल का स्वागत किया, "घर में बैठे बैठे तो दिल भी नहीं लगता। मैंने बापू से कह दिया था कि पहले काका को लाओ, फिर हम मछलियाँ पकड़ने चलेंगे।"

नाव चली तो धर्मानन्दी ने पूछा, "त्सौंगसुन का क्या बनेगा, काका?"

राखाल कुछ न बोला।

धर्मानन्दी चुप न रह सका, "कुछ तो उपाय करना ही होगा। मायस्प दारोगा से मुझे कोई शिकायत नहीं, न आरती को ही शिकायत

है। देवकान्त तो सुनते हैं कलकत्ता पहुँच गया।'

"क्यों, देवकान्त कलकत्ता क्या करने गया है?"

"यह तो वही जानता होगा।'

मालती मुस्कराई, "वह माखन माता से मिलने गया है, बाबा! उस दिन हम उसे लेकर गये, तो पहले मैं ने सब के लिए चाय बनाई थी। चाय बनाते-बनाते मैं ने देवकान्त की बातें सुन ली थीं। वह कहता था—माखन माता के लिए बसन्त ऋतु नहीं आती सब-के-सब फूल पौधों पर सूख गये। और वह यह भी कहता था बाबा—माखन माता के हाथों में हथकड़ी है, पैरों में बेड़ी, माखन माता गाने लगती है तो गीत उसके गले में टूट जाता है। तुम ने तो माखन माता देखी होगी, बाबा!'

रसलाल ने हँसकर कहा, 'मैं तो एक ही बार गया था कलकत्ता मार्गन साहब के साथ। मैं ने तो कलकत्ता में देखी नहीं माखन माता। वह मुझे मिलना चाहती है, तो उसे दिहिंगमुख में ही आना पड़ेगा।'

"यहाँ आकर माखन माता क्या करेगी?' धर्मानन्दी ने चुटकी ली, "यहाँ हम उसे क्या खिला सकेंगे! अच्छा आये तो सही। हम माखन माता को अपने पुरखाओं से चली आई यह बात अवश्य सुनायेंगे।"

"कौनसी बात, बापू?"

अरे वही—'साल मछली सिंगी मछली से कह रही है—तू भी कुँआरी, मैं भी कुँआरी हम दोनों में से किसी को वर नहीं मिलता।'"

"यह भी बापू, यह भी!" मालती ने अपने स्थान से उछलकर कहा, "'दिखने में चीतल ही ता है इसकी पीठ में तो काँटे-ही-काँटे हैं!'"

सहसा धर्मानन्दी ने कहा, "रुको-ठहरो, मालती! यही स्थान ठीक है।"

उस ने झट अपना जाल फेंकते हुए कहा—सावधान, मछलियो!

"अब देखना चीतल भी फँसेगी और साल भी!" धर्मानन्दी मुस्कराया, "अच्छा दादा, अब बाँदरजुली के हाथियों की ओर कहानी आरम्भ करो।"

सोलह



सुमताप माता-पिता की आँख बचाकर मालती से मिल आना चाहती थी।

वैसे तो वह हर रोज पानी-घाट पर पानी भरने आती थी, पर उस समय तो दूसरी लड़कियाँ भी साथ होती थीं। सब ने लड़कियों को मना कर रखा था। मालती पाँव फिसल जाने में रह आई थी, यही उस पर सब से बड़ा कलंक था। अब यह कलंक जीवन-पर्यन्त नहीं धुल सकता था। कोई-कोई तो यहाँ तक कहता सुना गया था—अब मालती का विवाह भी नहीं हो सकेगा, गन्दा कपड़ा कौन लेगा? ये बातें सुमताप के मन में भी घर चुकी थीं। उसे मालती पर दोष थोपने वाले एक आँख नहीं भाते थे। एक बार मालती से मिलकर वह बताना चाहती थी कि संसार भले ही धर्मानन्दी को त्याग दे, पर सुमताप की आँखों से मालती कभी नहीं उतर सकती।

पानी-घाट से धर्मानन्दी की झोंपड़ी दूर न थी। वह नाव तो वहीं बँधी रहती थी जिस पर यह झोंपड़ी बनी हुई थी। पानी का कलसा भरते भरते सुमताप कनखियों से मालती की झोंपड़ी को अवश्य देख लेती। किसी प्रकार मालती बाहर तो आये, दूर से ही सही। फिर वह सोचती—मालती तो अपने बापू के साथ गई होगी। वह तो बापू को मछलियाँ पकड़ने में सहायता दे रही होगी।

इस बाज़ार में सुमताप ने प्रायः मालती को बापू के साथ बैठे देखा

था, जहाँ वह पहले के समान बैठी पैसे गिनती रहती थी। यह सम्भव न था कि छत के सामने वह भारती से दो बातें कर ले। भारती पर कलंक लग गया था। पर यह कैसा कलंक था? इसे कलंक भी कहा जा सकता है या नहीं, यह भी तो प्रश्न था। देवकान्त तो किसी और की नाव में भी उस पार चला गया होता। अतुल ही देवकान्त को धर्मनन्दी के पास लेकर गया था। बेचारी भारती को तो व्यर्थ ही दैन्य सहना पड़ा।

आज मुनतारा ने भारती से मिलने का निश्चय कर लिया था।

वह बहुत देर से घर से चली। उसके सिर पर खाली कलसा था, आज उसे अपना हृदय भी कलसे के समान खाली लग रहा था। आज वह भारती से अवश्य मिलेगी। वह लौटकर न आई होगी, तो वह उसकी प्रतीक्षा करेगी। दो सखियों को मिलने से कौन रोक सकता है? उन्हें तो बातें करने का अधिकार है। भारती से कोई ऐसा दोष तो हुआ नहीं कि मैं उसकी क्षमा से भी घृणा करने लगूँ। मैं उस से पूछूँगी कि यात्रा में उस पर क्या बीती। किसी ने उसे पीटा तो न था? उसे पीटा गया होगा तो वह मुझे अवश्य बता देगी। न बतायेगी, तो मैं उस से कभी नहीं बोलूँगी। भारतमल रावेगा ने इतना लिहाज तो अवश्य किया होगा। देवकान्त का मामला न होता, तो किसकी मजाल थी कि भारती को थाने ले जाता! अब बेचारी को थाना ही पड़ा थाने, तो उसकी पिटाई करने का तो किसी को साहस न हुआ होगा।

हवा पहले से अधिक तेज हो गई थी। दूर कहीं बगले बोल रहे थे। फिर नीले आकाश पर सारसों की पाँत दिखाई दी। मुनतारा को उस सारस की याद आ गई जिसे धर्मनन्दी काका पकड़कर लाये थे और जिसे वह भारती और काका के साथ जाकर कमलिया सापरी पर छोड़ आई थी, जहाँ से काका ने उसे पकड़ा था। उस सारस के गले में वह माला तो अब तक होगी जो मैं ने डाली थी। उस सारस के साथ उसे अतुल की याद भी आ गई। जिस प्रकार उस ने पाँत बनाने का यत्न किया था। मैं ने भी तो

उसकी एक नहीं सुनी थी। गाँव-भर का लड़का है तो क्या हुआ! जैसे दूसरे लड़के, वैसा ही अतुल। मैं उसे यह भूल तो न करने दूँगी कि वह मुझे अपनी रखैल समझे। उस दिन के पश्चात् आज तक तो उसे साहस नहीं हुआ कि मुझ से आकर बोले। कहीं भी वह सामने से नज़र आ जाता है, मैं कभी आँखें नहीं झुकाती। भला मैं क्यों झुकाने लगी आँखें!

घाट पर पहुँचकर वह सीधी आरती की झोंपड़ी की ओर चली गई। आरती अभी तक अपने बापू के साथ बाज़ार से न आई थी। उस ने निश्चय किया कि आज वह आरती से मिले बिना वापस न जायगी। वह बाँध पर चली गई और झोंपड़ी के बन्द द्वार के सामने जाकर बैठ गई।

जब भी सूनताप का दिल उचटने लगता, वह उँगलियों से पीतल के कलशे पर हलकी-सी थाप देने लगती। जब किसी की प्रतीक्षा हो तो या तो कुछ भी अच्छा नहीं लगता या साधारण-सी आवाज़ भी भली प्रतीत होने लगती है।

सूरज डूब रहा था। सूनताप ने मन ही-मन सूरज को प्रणाम किया। सूरज तो रोज़ ही डूबता था, रोज़ ही चढ़ता था। हवा चंचल थी। उसे याद आया कि जब उस दिन तालाब के मामले को लेकर अतुल ने उस पर धौंस जमानी चाही थी तो उसके माथे पर बालों का गुच्छा झुक आया था। अतुल की धौंस में न आकर मैं ने वीरता का प्रमाण दिया था। वाह री वाह! बड़े आये गाँव-भर के बेटे! अभी कोई पक्षी बोल उठता, कभी किसी मछली के उछल कर डुबकी लगाने की ध्वनि सुनाई देती। वह बनकर बैठी रही। सूरज डूब रहा था।

आरती की नाव न जाने किस समय आकर घाट पर लगी। सूनताप को पता ही न चला। सूनताप को देखकर आरती ने आवाज़ दी। नाव से उतरकर वह झट झोंपड़ी के द्वार पर आ गई। उस ने सूनताप के गले में बाँहें डाल दीं।

धनमती मछलियाँ उतार रहा था। सूनताप ने पूछा "अच्छे तो हो, बाबा!"

"हमारे घर का रास्ता कैसे भूल गई, कुन्ताला ? धर्मानन्दी ने मछलियाँ उतारते हुए कहा, "तुम्हारे घर मैं तो मछली नहीं पकड़ती और अपना तो धन्धा है मछलियाँ पकड़ना।"

"यह तो अपना-अपना धन्धा है, काका।"

"नावरिया का अपना धन्धा है। वह हमारा पवन नावरिया है न, वह बादल नावरिया से झगड़ता ही रहता है उनका झगड़ा कभी समाप्त न होगा।"

"झगड़ा क्यों होता है, काका ?"

"*लोग कहते हैं, पेट झगड़ता है झगड़ा। मैं तो कभी नहीं झगड़ता* पेट की खातिर। झगड़े को बढ़ाओ तो बढ़ जाता है, घटाओ तो घट जाता है।"

"गाँव में सब ने तुम्हारे साथ बोलना छोड़ रखा है, काका। इसका तुम्हें दुःख तो होगा।"

"दुःख होगा भी तो किसी को बताने से क्या लाभ ?"

"कभी तो तुम सोचते होगे काका, कि तुम ने देवकान्त को पार ले जाकर भूल की।"

"यह तो मैं कभी नहीं सोचता।"

"तो क्या देवकान्त अच्छा लड़का है ?"

पास से आरती ने हँसकर कहा, "और क्या बुरा लड़का है देवकान्त ? वह बुरा है तो क्या प्रफुल्ल ही अच्छा है ?"

"प्रफुल्ल की तो गाँव में हर कोई बुराई कर रहा है। सब यही कहते हैं कि प्रफुल्ल ने ही काका को फँसाया और नहीं आरती को भी थाने मिल जाने का दोषी है। आरती, तुम्हें तो किसी ने हाथ नहीं लगाया होगा।"

"लगाया भी हो, तो अब यह बात सोचने से क्या लाभ ? देवकान्त को हम ने पार न लगाया होता, तो पुलिस उसे पकड़ लेती। अब तो सुना है वह कलकत्ता पहुँच गया माधव माता के पास।"

"पर देवकान्त की अपनी माँ भी तो है ?"

"माँ से बढ़कर तो यह भारत माता को समझता है अपनी-अपनी समझ की बात है।"

"माँ चाहे भूखी मर जाय, पर भारत माता बच जाय!"

"यह तो तुम्हें देवकान्त से ही कहना चाहिए, पर अब शायद तुम उस से यह न कह सको यह अवसर शायद तुम्हारे हाथ न आये। देवकान्त उस से पहले ही फाँसी पर झूल जायगा।"

"क्यों, उस ने ऐसा क्या अपराध किया है? फिर कलकत्ता चला जाता था, तो वहाँ से आया ही क्यों था?"

"अब यह तो देवकान्त ही जानता है।"

वानानन्दी सब मछलियाँ ऊपर ले आया था। उस ने अपनी ही बात प्रारम्भ कर दी, "आज बड़ा हाट-बाजार है। अच्छे-अच्छे पैसे बन जायेंगे। ब्रह्मपुत्र की कृपा बनी रहे। यह हमारे लिए कोठार खोल और न जाने कौन-कौनसा मछली लाता है। हमारा जाल बना रहे, हमारी भुजाओं में शक्ति बनी रहे। पेट ही सब काम कराता है। जैसी जल-जैसी वैसी बन-सनी!

दोनों सखियाँ झट अपना अपना कपड़ा उठाकर पानी-पास पर चली गईं।

अपना कपड़ा भरकर मालती अपनी कोठरी में छोड़ आई। फिर वह सुनयना को उसके घर तक छोड़ने गई। रास्ते में मालती देर तक मनुज की प्रशंसा करती रही। वह इस पर जोर देती रही कि मनुज को तो देवकान्त भी अच्छा लड़का समझता है।

"सब लोग तो मनुज को बुरा समझने लगे हैं। तेरा क्या मत है, सुनयना?" मालती ने सुनयना के कन्धे पर थपकी देकर पूछा।

"जो सभी का मत है, वही मेरा भी!" सुनयना मुस्कराई।

"यह तू क्या कह रही है, सुनयना! सोच तो सही, कहीं प्यारे का दिल ही न टूट जाय!"

"दिल टूटता है उसका दिल, तो आज टूट जाय! मैं क्या करूँ?"

मारती ने मतुल और देवकान्त के वार्तालाप का उल्लेख करते हुए कहा, "मैं ने तो दोनों की बातें सुनी थीं। दोनों में यही अन्तर है कि अतुल दिसाँगमुख में ही कार्य कर के दिसाँगमुख को नारायण दारोगा के पंजे से छुड़ाना चाहता है, तो देवकान्त के सम्मुख सफलता से कार्य आरम्भ कर के दिसाँगमुख जैसे अनगिनत गाँवों को पुलिस के पंजे से स्वतन्त्र कराने का ध्येय है। इस पर तेरा क्या मत है ?"

सुनतारा खिलखिलाकर हँस पड़ी, जैसे वह भारती की बातों पर विश्वास ही न कर रही हो।

भारती ने आगे बढ़कर सुनतारा का रास्ता रोक लिया।

"देर हो रही है, भारती !"

"चैत मास बीत रहा है ; बोहाग बिहु दूर नहीं। मैं तो नहीं आ सकूँगी। मेरी बात याद रखना। बोहाग बिहु के नृत्य में अतुल से दूर दूर न रहना। देखना कहीं उस का दिल न टूट जाय !"

"उसका दिल खिलौना है, तो भले ही टूट जाय।" सुनतारा खिल खिलाकर हँस पड़ी।

"पिछले-से-पिछले वर्ष तो तुम ने भी अतुल की प्रशंसा की थी। मुझे भय है कि कहीं अतुल बिहु में सम्मिलित ही न हो। बिहु तो रुक नहीं सकता, तुलसी आस से आ रहा है !"

सुनतारा के घर का पिछवाड़ा आ गया था। भारती पीछे लौट गई।

सुनतारा ने डरते-डरते फाटक उठाकर भीतर प्रवेश किया। फिर सँभल कर वह केले के गाछ के सामने एक-दो पल के लिए रुक गई। वह सोचने लगी, भारती ने यह क्यों कहा था—बोहाग बिहु के नृत्य में अतुल से दूर दूर न रहना ! और वह पग बढ़ाकर रसोई तक आ पहुँची।

माँ ने सुनतारा को फटकारा, "तेरे ये लच्छन तेरे बापू को अवश्य रुलायेंगे। इतनी देर !"

सुनतारा ने डरते डरते कहा, "मुझे भारती पिछवाड़े तक छोड़ने आई थी।"

"तो तू मालती से लिपटी रही ! तुझे कितना रोका था !"

पास से सुधीर की पत्नी बोपिली हँसकर बोली, "जाने भी दे, माँ ! मुक्तारा और मालती तो बचपन की सखियाँ हैं।"

मुक्तारा के सिर से बोपिली ने पानी का कलसा उतरवा लिया था। मुक्तारा कुछ न बोली। पिछले-से-पिछले बरस के बिहु की स्मृति उसकी कल्पना का इकतारा बजाने लगी—तुन् तुन् तुन्। इस ताल पर उसे लगा कि सामने लड़कियाँ नाच रही हैं—बड़े गोलाकार में दायें से बायें, बायें से दायें उनके सामने लड़के नाच रहे हैं झूम-झूम कर—मृदंग, पेपा और बाँसुरी बजाते हुए; दायें से बायें बायें से दायें कभी लड़कियाँ उछलकर पीछे और आगे डोलने लगतीं, कभी वाद्य बजाने वाले युवक उन्हीं का अनुसरण करते हुए उन से मिल जाने का यत्न करते। उसे लगा कि सामने वाली युवतियों की पाँत में एक सुहासिनी रूपसी झूम-झूम कर नाच रही है, पाँत के ठीक बीच में, उस के जूड़े का फूल नीचे नहीं खिसकता रूपसी के सम्मुख युवकों की पाँत में एक गौर-छबीला है, जिसके माथे पर बालों का एक गुच्छा झुक आया है वह बाँसुरी बजा रहा है। कल्पना के चित्रपट पर वह रूपसी मुक्तारा में बदल गई, वह युवक अतुल बन गया बिहु नृत्य हो रहा था, इस नृत्य की आनन्द-परिधि असीम थी।

"हाथियों के छोटे-छोटे बच्चे मेरी आँखों के सामने बड़े हुए। क्या हाथी क्या हथिनी, मैं ने दोनों की सवारी की; दोनों मेरी आज्ञा मानकर चलते थे।

"तुम गिरे नहीं, बाबा!" मुन्ना हँस पड़ा।

'वह महावत ही क्या हुआ बेटा, जो हाथी के ऊपर से गिर जाय!" रामलाल ने गम्भीर होकर कहा "हाथियों के दल-के-दल मेरे एक संकेत पर रुक गये, मेरे एक संकेत पर वे चल पड़े।"

"हमारे मास्टर जी तो कहते हैं—हाथी बहुत बड़ा होता है; हाथी से बड़ा कोई नहीं होता!"

'हाथी से बड़ी है महान।'

"यहाँ तो एक भी हाथी नहीं है फिर आप यहाँ क्यों आये, रामो बाबा!"

'ऐसे नहीं बोलते!" मधुप ने कनिका के आगे हाथ प्यारा डालते हुए कहा "मुन्ना तुम्हें मास्टर जी ने अभी तक बोलना भी नहीं सिखाया! जाओ, तुम्हें स्कूल के लिए देर हो रही है।'

मुन्ना स्कूल के नाम से चौंका।

'आज तो छुट्टी है बाबा!"

"तो भीतर जाकर खेलो।"

मधुप और रामलाल बाबा पिछवाड़े की ओर जाकर पोखर के किनारे टहलने लगे।

"गिलहरीबाड़ी में तुम ने तीन दिन लगा दिये।'

"नानी तो आने भी नहीं आने देना चाहती थी, बाबा! कहती थी गिलहरीबाड़ी का बोहाग बिहू देखकर जाओ। मैं ने तुम्हारा नाम लिया बाबा, तो नानी ने मुझे छोड़ा।'

बाबा ने मौंगूरी की कहानी आरम्भ कर दी। बार बार बाबा इस बात पर जोर देते रहे—'मनुष्य का आदर वही करता है जिसका अपना भी कुछ अनुभव होता है। बात में बात निकलती चली गई। अभी इस ब्रह्मपुत्र।

प्रकार जैसे पेड़ के खुरदरे तने से नई कोंपल फूटती है, कभी देखें किस प्रकार महाकाय हाथी को वश में कर लेता है; अतुल को लगता जैसे सूँड उठाये कोई हाथी भी काका की बातें सुन रहा है।

"पहले हाथी उत्पन्न हुए या मनुष्य ?" राखाल ने गम्भीर होकर कहा, "इस प्रश्न का उत्तर तो हमारे नार्मन साहब भी नहीं दे सकते थे। वैसे हाथी और मनुष्य की आयु एक समान होती है। समान आयु में दोनों होश सँभालते हैं। मैं तो नौकरी में रहा, नार्मन साहब बीच बीच में चले जाते थे। सोचने की बात है सच-झूठ का हिसाब नार्मन साहब के माथे। दलदल में एक हाथी इतनी बुरी तरह फँसा कि फिर बाहर न आ सका। पास वाले डाक-बँगले में, जहाँ नार्मन साहब ठहरे हुए थे, रात-भर हाथी की चीखें सुनाई देती रहीं। सातवें दिन जाकर किसी मालगुजार ने अपने सधाये हुए हाथियों की सहायता से उस दलदल के बन्दी को बाहर निकलवाया। बाहर निकलने के घण्टा-भर बाद ही वह मर गया। जीवन का अन्त नहीं, पर मृत्यु तो आकर रहती है। हाथी के मृत शरीर को जंगल में दलदल के किनारे ही छोड़ दिया गया। गीदड़, चीते और सुअर, जिन्हें उस हाथी ने कई बार पानी से दूर रखा होगा, कई दिन तक उस हाथी की देह पर प्रीति-भोजन का आनन्द लेते रहे। हमारे नार्मन साहब दूसरी बार वहाँ पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि हाथी की विचित्र-सी हड्डियाँ ही शेष रह गई हैं। उन हड्डियों के बीचों बीच एक शाही और उसके बच्चे लेटे रहे थे। हमारे नार्मन साहब तो—"

"बेचारा हाथी!" अतुल ने टोक कर कहा, "हाथी के सम्बन्ध में यह भी तो कहते हैं काका कि जीवित हाथी एक लाख का और मरा हाथी सवा लाख का!"

"मृत्यु तो आकर रहती है!" राखाल ने गम्भीर होकर कहा, "जब जंगली हाथी बहुत बूढ़ा हो जाता है, तो उसे पता चल जाता है कि प्रतिदिन मृत्यु उसकी ओर बढ़ रही है। वह हाथी कहीं दूर एकान्त में नदी-किनारे जाकर बैठ जाता है और धीरे-धीरे अपनी ओर आती हुई

मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगता है। लंका के हाथियों के सम्बन्ध में यह बात एक यात्री ने अपनी पोथी में लिखी थी, पर हमारे मार्गन साहब तो लंका के किसी जंगल में ऐसे एकान्त और शान्त किनारे का पता न चला सके, जहाँ जंगल के हाथी मरने के लिए जाते हों।"

सहसा अनुप की कल्पना में चौदहपुरी के हाथी घुस गये। वह सोच रहा था—मनुष्य की आयु थोड़ी है, कार्य अधिक है। भगत जी तो कहते हैं कि मनुष्य चाहे तो सौ बरस तक सहज ही जीवित रह सकता है। चौदहपुरी में बाबा के जीवन के तीस वर्ष व्यतीत हो गये—भरपूर जीवन के तीस वर्ष! अच्छा हुआ कि बाबा यहाँ आ गये। बाबा की तो एक-एक बात में अनुभव बोलता है।

रत्नलाल ने प्रसंग बदलते हुए कहा, "मुझे एक दिन कल्याणजी अपने साथ ले गया था। जब हम कार्यक्रम के पश्चात् लौट रहे थे कल्याणी ने कलंकिया घाटी के समीप कार रोक ली जिसके सम्बन्ध में गगन बावरिया की कथा प्रसिद्ध है।"

"यह कथा तो मुझे भी अच्छी लगती है, बाबा!" अनुप ने गम्भीर होकर कहा, "यह कल्पना सचमुच कितनी सुन्दर है कि किसी समय कलंकिया घाटी पर गगन बावरिया रहता था। गगन हमारे बागल नावारेपा का पुरखा था। उसके घर वाले तो दिलगिसुम में रहते थे पर अकेला ही उस घाटी में रहता था। बाद में एक बार कलंकिया घाटी बह गई। गगन बावरिया डूब मरा। पर गगन की आत्मा अब भी उस स्थान पर मँडराती है।"

"कल-कल कर तक बसी रहती है यह घाटी।"

"इस पर बादलों की पाँत भी अवश्य अटकती है, बाबा!"

रत्नलाल की आँखें चमक उठीं। वह कहता चला गया, "साँझ उतर रही थी, जब हम कलंकिया घाटी से तीन मील इधर थे। वहाँ तक पहुँचते पहुँचते रात हो गई। छिपे हुए रात में हम ने गगन बावरिया का गान सुना। कल्याणजी कहता है कि उस ने यह गीत पहले भी कई बार सुना है।"

"गगन मर गया, पर उसका नाम बचा रह गया।"

"किसी का महान् कार्य हो, तो उस के पीछे उसका नाम रह जाता है। ऐसे ही गगन नावरिया का नाम है। बाढ़ के दिनों में जब बड़े-बड़े नावरिया ब्रह्मपुत्र में नाव खोलते डरते हैं, गगन नावरिया का नाम ब्रह्मपुत्र की लहरों पर गूँजता रहता है, जैसे गगन आज भी ब्रह्मपुत्र को चुनौती दे रहा हो।"

पीछे से आकर किसी ने पलास के कन्धों पर हाथ रख दिया, "हम आ गये, हाथी काका!"

पलास ने मल्लना के सिर पर प्यार का हाथ फेरते हुए कहा, "हम मल्लना के हाथी काका ही तो हुए। हम इसे हाथी का बच्चा लाकर देंगे—बड़ा प्यारा-सा हाथी का बच्चा!"

"परसों बोहाग बिहू है, मल्लना!" अतुल ने प्रसंग बदलकर कहा "काका से कहो कि तुम्हें अपने साथ रखें।"

अठारह



नीलमणि का गाँव-भरा उत्सव, बिहू की खुशी में ग दिन पूर्व ही उस ने गोहाली का छप्पर बदल दिया था। बोहाग बिहू के सात दिन माने गये थे, पर बिहू नाच पूरे बैशाख-भर चलता था।

बैशाख के लिए असमिया शब्द था बोहाग, बैशाख का पहला दिन 'मानु बिहू' कहलाता था— मानु अर्थात् मनुष्य। उस दिन घर के सभी बिहू मनाने के लिए तैयार होते थे। प्रात: तड़के से पहले सवेरे-सवेरे नीलमणि ने कदम की दातुन से दाँत साफ किये, फिर तेल मलकर स्नान किया, नये वस्त्र पहने।

चैत के आरम्भ से ही घरों और खेतों में बिहू पक्षी का स्वर गूँजने लगता था। कुछ लोगों का विचार था कि बिहू पक्षी कोई अलग पक्षी नहीं है, बल्कि कोयल को ही बिहू पक्षी का नाम दिया गया है। चैत की अन्तिम तिथि से बैशाख की षष्ठी तक बोहाग बिहू का त्योहार मनाया जाता था। न जाने बिहू पक्षी को पहले ही कैसे पता चल जाता था कि बिहू आ रहा है। चैत का अन्तिम दिन विशेषकर 'गोरू बिहू' के नाम से प्रसिद्ध था, क्योंकि इस दिन पशुओं को ब्रह्मपुत्र में मल-मल कर नहलाया जाता था। बिहू का आरम्भ इसी प्रकार किया जाता था। भोर से पहले ही उठकर घर की स्त्रियाँ हल्दी और उड़द की पीठी रगड़कर तैयार करती थीं। फिर कलों का तेल और पीठी मल-मल कर पशुओं को ब्रह्मपुत्र में स्नान कराने के लिए निकला जाता था। जब पशुओं का स्नान समाप्त हो

जाता, तो उस पर गाँव की पोखरी में भरे हुए लौकी और बैंगन के छोटे-छोटे टुकड़े फेंक कर उन की पूजा की जाती थी, और गुरुजनों के शब्दों में कहा जाता था—'यह ले लौकी, यह ले बैंगन, प्रतिवर्ष फलो-फूलो। तुम्हारी माँ कद में छोटी है, और पिता भी भगवान् करे तुम्हारा डील डौल बड़ा निकले।' गोशाला की सफाई की जाती थी। धूप जलाकर गोशाला को सुगन्धित किया जाता था। पशुओं को नई-नई रस्सियों से बाँधा जाता था। घर में त्योहार के उपलक्ष्य में विशेष रूप से बनाई गई मिठाई का एक भाग पशुओं को भी मिलता था।

दोपहर तक हाट-बाज़ार वाले स्थान पर गाँव के युवक भी आ गये और युवतियाँ भी। विशेषभुक्त का बिहू तो दूर-दूर तक प्रसिद्ध था। उस ने 'लाओ पानी' भी रखा था। बड़े ही मादक स्वरों में बिहू का मंगलाचरण आरम्भ किया गया :

बिहू बा बराव करे बिहू बिहू
मामार बिहू कापर नाई
समनियाई सुधिसे कमे किने दुली
खबरे मरीसे भाई

[बिहू पक्षी बिहू बिहू की रट लगा रहा है। मेरे पास तो बिहू के लिए वस्त्र ही नहीं। संगी-साथी बुलायेंगे, तो मैं बहाना कर दूँगा—बचपन ही में मेरी माँ चल बसी थी।]

बिहू नाचें और 'लाओ पानी' अर्थात् चावल के मादक पेय का बाँध न टूटे, यह कैसे सम्भव था। बोहाग बिहू के कई नाम थे। कोई इसे 'सात बिहू' कहता था क्योंकि यह सात दिन तक तो कम-से-कम चलता ही था। इसे 'रंगाली बिहू' भी कहते थे, क्योंकि नृत्य और संगीत के इस पर्व पर रस रंग की मदिरा छलक उठती थी।

सामने बड़े-गोलाकार में युवतियाँ नाच रही थीं। उनके सम्मुख ढोल, बाँसुरी और पैपा बजाने वाले युवक उछल-उछल कर आनन्द विभोर हुए जा रहे थे। ऐसे-ऐसे कई दल पृथक्-पृथक् नाच रहे थे। मध्योत्तर के

रूप में गान गाये जा रहे थे। वायु में झूमते फूलों के समान युवतियाँ नाच रही थीं, जैसे यह नृत्य-पर्व दोबारा न आवेगा।

बचपन के मित्रों ने आज नीलमणि को भी 'लाओ पानी' पिलाकर छोड़ा, गाँव में अकेला बलवाण भगत ही ऐसा आदमी था जिस ने आज भी 'लाओ पानी' को मुँह नहीं लगाया था।

एक दल में मृदंग, झाँझ, पैपा और बाँसुरी का ठाठ था और बीच में अतुल मृदंग बजा रहा था। सामने युवतियों की पंक्ति में प्रत्येक सुन्दरी एक-से-एक बढ़-चढ़ कर आई थी। इधर से युवक एक गान अलापते, उधर से युवतियाँ उत्तर देतीं। बिहू की रस-सुषमा और संगति-माधुरी द्वारा युवक-युवतियों में नई जान पड़ गई। युवतियों की पंक्ति में कृष्णाप्रिया को पृथक करके देखना सहज न था पर अतुल की दृष्टि उसी पर थी उसके जोड़े का फूल सब से सुन्दर था।

नया धान घर आये छः-सात मास ही हुए होंगे अब नया धान रोपने में थोड़े दिन शेष थे। बोहाग बिहू तो वस्तुतः नये धान का त्योहार था। प्रत्येक घर का भण्डार नये धान से भरपूर था, प्रत्येक प्राणी नूतन उल्लास का प्रतीक था।

युवतियों ने एक गान आरम्भ किया

बिहू मारिं वाणिज्यार, मने कोई समरो
बिहू मारिं वाणिज्यार मन
बिहू मारि वाकोते घूसुवाई निनिवा
मरिवा लागिवा धन

[बिहू गाती रहती जाऊँ, यही की चाहना है प्रियतम, बिहू गाते रहने का भी चाहना है। बिहू गाते-गाते मुझे भगाकर न ले जाना, वरन मरना पड़ेगा।]

युवतियाँ बार-बार यह गान गा रही थीं, जैसे युवकों ने सामने से कोई उत्तर न देने का निश्चय कर लिया हो। अतुल को लगा जैसे यह केवल कृष्णाप्रिया की आवाज हो, जैसे वह और किसी की आवाज सुन ही न

रहा हो ।

युवकों को भी जोश आ गया । उन्होंने वह गान आरम्भ किया जिस में कहा गया था :

इस वर्ष बिहू आया अति सुन्दर,
खिल गये नाहर फूल;
उड़ी गन्ध, गोरी का मन अति चञ्चल,
टूट गई पैरों के नीचे चरखे की हर धूल ।

फिर युवतियों ने गाना आरम्भ किया :

नाचो तो अब खुलकर नाचो,
साथी देख सकें जी भर कर
छूट जायेंगे साथ एक दिन
नीड़ करेंगे भिन्न पेड़ पर ।

अब मधुप ने गान आरम्भ किया :

नहीं दामिनी मैं कि चमक कर रूप निहारूँ,
और न बहता ब्रह्मपुत्र हूँ
मैं पंछी भी नहीं कि उड़ते-उड़ते रूप निहारूँ,
हाय कहीं यदि मेरे भी दो पंख होवें !

बिहू के उल्लास में एक-से-एक बढ़कर गान गाये जा रहे थे—नये-पुराने सभी गान । कुछ गान अभी रचे जा रहे थे ।

मन्त्रमुग्ध-सा मधुप जैसे किसी दूसरे ही लोक में पहुँच गया था । उसे लगा कि सुनतारा किसी दूसरे की नहीं हो सकती । अगले ही क्षण उसकी कल्पना को देवकान्त ने छू लिया । न जाने वह इस समय कहाँ होगा, क्या कर रहा होगा । उसे भी दिसौंगमुख का ध्यान तो है । वह कहता था—भारत माता कलकत्ता में रहती है और उसके कण्ठ से गान छूट जाता है । यहाँ आकर देखे भारत माता ! यहाँ तो एक भी गान बीच से टूटने से रहा । यहीं क्यों नहीं आती भारत माता ! उसे कलकत्ता ही क्यों इतना प्रिय है !

नृत्य समाप्त हो गया था। हर कोई घर चलने की चिन्ता में था। अतुल भी अपने घर की ओर चल पड़ा। पर सहसा पीछे से आवाज आई।

अतुल ने पीछे मुड़कर देखा। कुन्तारा अपनी भावज कोपेली के साथ हँसती इठलाती चली आ रही थी। अतुल ने देखा कि आगे आगे दोनों ननद-भावज हैं और उनके पीछे हैं सुधीर, भगत जी और कुन्तारा की माँ। उसे यह पता चलते देर न लगी कि उसे भगत जी ने आवाज दी थी।

वह रुक गया।

कुन्तारा और उसकी भावज लपक कर आगे निकल गई। उनके पीछे-पीछे सुधीर और उसकी माँ भी लपक कर चले गये। भगत जी अतुल के सामने आकर रुक गये। आज बहुत दिनों के पश्चात् भगत जी ने अतुल को बुलाया था।

"आज तो तुम सब से अच्छा नाचे।" भगत जी मुस्कराये "हडसन साहब और उनकी पुत्री लिली भी बहुत प्रसन्न प्रतीत होते थे एक बार नारायण दारोगा भी आया था, पाँच-छः सिपाहियों सहित।"

'बिहू में पुलिस का क्या काम!"

'तुम ऐसी बातें न किया करो, अतुल! ऐसी बातों के लिए देवकान्त जो है। पता नहीं वह कहाँ भटक रहा होगा माँ की सेवा होती नहीं, चला है भारत माता के पैर दबाने! धन्य हैं देवकान्त पर उनके गुरु न उसे ठीक पाठ नहीं पढ़ाया।"

अतुल चाहता तो बुरी तरह भगत जी के गले पड़ जाता, पर वह चुपचाप चलता गया। साथ-साथ भगत जी चले जा रहे थे। आज अतुल ने खूब डटकर 'लाओ पानी' पिया था। बिहू और 'लाओ पानी' का तो पुराना मेल था। उसका अंग अंग थिरक रहा था। आज उसे तनिक भी थकान अनुभव नहीं हो रही थी।

घर पहुँचकर अतुल ने माँ से फिर 'लाओ पानी' माँगा। आज तो

'लाओ पानी' माँगने में कोई लाज न थी। 'लाओ पानी' पीते-पीते उसकी कल्पना में मुस्कान का चित्र उभरा, जैसे वह भी 'लाओ पानी' पीना चाहती हो और भगत जी का भय उसे बुरी तरह सता रहा हो; फिर जैसे किसी ने मुस्कान के चित्र को उलटा कर दिया। अरे, अरे, यह तो लिली है—वही लिली जिस ने अगले ही दिन मेरे लिए अपने डैडी के रेवरेण्ड विष्णुराम के हाथ असमिया बाइबिल की पोथी भिजवाई थी और मैं ने उसे लेने से इन्कार कर दिया था। लिली, तुम नाराज तो नहीं हो गईं! सामने से जैसे लिली ने उत्तर दिया—मैं क्यों नाराज होने लगी! मैं तो तुम्हारा बिहू देखने आई थी। तुम तो मुस्कान से भी अच्छा नाचे!

अनुकूल जानता था कि लिली की माँ बहुत दिनों से बीमार है। लिली की माँ शिवसागर के अस्पताल में थी। लिली तो असमिया भी बोल लेती थी। एक बार ब्रह्मपुत्र पर नाव में आते-जाते लिली से उसकी भेंट हुई थी। लिली अपने डैडी की लाडली पुत्री थी, बापू को डैडी कहती थी। उसके डैडी तो दिसाँगमुख पर कुछ रहते थे उनका रेवरेण्ड विष्णुराम नारायण दारोगा से मिला हुआ था। लोगों से बेगार लेते उसका दिल कभी नहीं भरता था। उसकी कल्पना में लिली मुस्करा उठी, जैसे वह लिली के सामने नाच रहा हो। वह लिली से कहना चाहता था—बिहू में तो 'लाओ पानी' चलता है, बिहू में तो कोई बेगार नहीं ले सकता!

यह कदाचित् 'लाओ पानी' की मादकता का प्रभाव था कि अनुकूल ने मन-ही-मन हाकिम साहब को बुरी तरह कोसना आरम्भ कर दिया। नारायण दारोगा को तो वह आज बड़ी-से-बड़ी गाली दे सकता था। वह जानता था कि थाने में कमलकान्ती की बहुत पिटाई हुई थी। वह यह भी जानता था कि थाने में तो औरतों को भी क्षमा नहीं किया गया था। इस समय नारायण दारोगा कहीं मिल जाता, तो अनुकूल उसका सिर तोड़ डालता। हमें नहीं चाहिए दारोगा। बिहू से पुलिस का क्या सम्बन्ध! ये लोग हमें क्यों चिढ़ाते हैं! ये लोग बिहू में क्यों आते हैं!

नशा कुछ-कुछ उतरने लगा, तो वह फिर से 'लाओ पानी' का गिलास

कहा गया। डोनपाही बोली, "लाओ पानी तो बहुत ठण्डा लगता है।"

"तो मुझे एक गिलास और दो, माँ!" अतुल मुस्कराया।

आज तो मलना और रेणु को भी मिल गया था 'लाओ पानी'। आज तो बिहू था, एसलाल बाबा भी कुछ नशे में आ रहे थे। बाबा कह रहे थे, "आज तो मार्गन साहब को भी 'लाओ पानी' पिलाते, यदि वे यहाँ होते!"

एसलाल बाबा उठकर अपनी कोठरी के सामने चले गये। मौलमणि भी वहीं जा बैठा। उसके लिए 'लाओ पानी' का मटका वहीं भिजवा दिया गया।

एक गिलास 'लाओ पानी' डोनपाही भी चढ़ा गई। 'लाओ पानी तो सरकार भी बन्द नहीं कर सकती!' डोनपाही ने मुँह बनाकर कहा, "एक बार सरकार ने चाहा तो था कि 'लाओ पानी' बनाना बन्द कर दिया जाय पर जब सरकार के सम्मुख यह विचार रखा गया कि 'लाओ पानी' बेचने के लिए नहीं बनाया जाता, तो सरकार ने रोक लगाने की बात छोड़ दी। आपका हमेशा का बस चले तो आज 'लाओ पानी' पर रोक लगा दें!"

अतुल बचपन से ही देखता आया था कि 'लाओ पानी' दो प्रकार से तैयार होता था। एक घड़े में भात और सेर की राख मिलाकर उस में एक बूटी मिलाते थे। इस घड़े को मिट्टी में दबाकर नहीं, वैसे ही रख देते थे। पाँच दिन के पश्चात् उस में पानी मिला देते थे और उस दिन उसे बाँस की नलकी से चूसकर पीना आरम्भ कर देते थे। 'लाओ पानी' बनाने का दूसरा प्रकार भी ऐसा ही था; अन्तर केवल इतना ही था कि उस में सेर की राख नहीं मिलाते थे, भात और बूटी मिलाकर ही काम चला लिया जाता था। दोनों प्रकार से बनाये गये 'लाओ पानी' का नशा अलग-अलग होता था।

अतुल जानता था कि डिब्रूगढ़ के मीरी 'लाओ पानी' के सब से बड़े रसिया थे। उनके घरों में त्योहारों पर ही नहीं, वैसे भी 'लाओ पानी' पीने की प्रथा थी। बच्चों को भी देते थे 'लाओ पानी', पर मात्रा में बहुत कम;

लड़कियों को भी मना नहीं करते थे।

मधुल बरामदे में चटाई डालकर लेट गया।

रेणु और मल्ला रसोई में माँ के पास बैठे गप शप कर रहे थे। उनकी बातें मधुल के मस्तिष्क पर चोट कर रही थीं, पर उस में इतना साहस न था कि उन्हें चुप रहने को कहता।

गोशाली की ओर से गोबर और सूखी घास की विचित्र-सी गन्ध आ रही थी। वह उठकर कपिला के पास जाना चाहता था, पर अभी उस में इतनी शक्ति न थी कि अपने हाथ से कपिला का दूध दुहता। पर पत्थर पर लेटे-लेटे वह कल्पना में गाय का दूध दुहने लगा, जैसे दूध की धार पड़ने की आवाज़ उसे प्रिय लग रही हो। वह जानता था कि दूध दुहते समय गाय को भी एक विशेष प्रकार का आनन्द आता है, जैसे वह दोनों हाथों से कपिला के थन दबा-दबा कर दूध दुह रहा हो और दुग्ध-धारा से मधुर संगीत फूट रहा हो।

उन्नीस



वे माजुली के शिकारी-गाँव में लौट रहे थे। पाटल नावरिया के मझीले नीलकण्ठ और बन्सी नाव चला रहे थे। दोनों के घुँघराले बाल थे। दोनों जुड़वाँ भाई थे। एक-सा रंग-रूप। वे जो भी काम करते मिलकर करते पल-भर के लिए भी उन्हें एक-दूसरे से पृथक् होना अप्रिय था। माजुली में उनका बचपन बीता था, इसलिए कभी यहाँ आना होता तो वे बस किनारे पर आ खड़े हो जाते।

नीलकण्ठ के हाथ में था चप्पू और बन्सी के हाथ में डाँड़। कहीं पानी कम गहरा होता, तो डाँड़ से ज़ोर लगाकर नाव को आगे धकेलना पड़ता। बन्सी डाँड़ उठाये आँखों पर लटकते बालों में से हँसी के झुरमुटे झाँकता हुआ नीलकण्ठ की ओर देखता; नीलकण्ठ ज़ोर-ज़ोर से चप्पू चलाते हुए कभी बड़े-बूढ़ों के समान 'बाह हिचकारी' पर तान तोड़ता, कभी कल्याण भगत की विशिष्ट शैली में 'हरी-हरी है माधव' का उच्चार करने के पश्चात् एक दम गम्भीर नज़र आने लगता। उस समय कल्याण भगत सोचता कि नीलकण्ठ पर उसका रंग चढ़ रहा है।

आज प्रातः नाव खोलने से पहले नीलकण्ठ ने बन्सी के कान में पूछा था, "तुझे कल्याण भगत का रूप पसन्द है या रामलाल काका का?" और बन्सी ने उसे अलग ले जाकर कहा था, "मुझे तो दोनों ही किसी नाटक के सूत्रधार प्रतीत होते हैं।" बन्सी का विचार कहाँ तक ठीक था,

लड़कियों को भी मना नहीं करते थे।

अप्रतुल बरामदे में चटाई डालकर लेट गया।

रेणु और मल्ला रसोई में माँ के पास बैठे गप-शप कर रहे थे। उनकी बातें अप्रतुल के मस्तिष्क पर चोट कर रही थीं, पर उस में इतना साहस न था कि उन्हें चुप रहने को कहता।

गोशाला की ओर से गोबर और सूखी घास की विचित्र-सी गन्ध आ रही थी। वह उठकर कपिला के पास जाना चाहता था, पर आज उस में इतनी शक्ति न थी कि अपने हाथ से कपिला का दूध दुहता। पर चटाई पर लेटे-लेटे वह कल्पना में गाय का दूध दुहने लगा, जैसे दूध की धार पड़ने की आवाज़ उसे मिल रही हो। वह जानता था कि दूध दुहते समय गाय को भी एक विशेष प्रकार का आनन्द आता है, जैसे वह दोनों हाथों से कपिला के थन दबा-दबा कर दूध दुह रहा हो और दुग्ध धारा से मधुर संगीत फूट रहा हो।

उन्नीस



वे मामुनी के शिकारी-गाँव से लौट रहे थे। बारेन मावरिया के भतीजे नीलकण्ठ और बन्शी नाव चला रहे थे। दोनों के घुँघराले बाल थे। दोनों जुड़वाँ भाई थे। एक-सा रंग-रूप। वे जो भी काम करते मिलकर करते; पल-भर के लिए भी उन्हें एक-दूसरे से पृथक् होना अप्रिय था। मामुनी में उनका बचपन बीता था, इसलिए कभी यहाँ आना होता तो वे कम दिनों पर भी राजी हो जाते।

नीलकण्ठ के हाथ में था चप्पू और बन्शी के हाथ में डाँड़। कहीं पानी कम गहरा होता, तो डाँड़ से ज़ोर लगाकर नाव को आगे धकेलना पड़ता। बन्शी डाँड़ उठाये बाँसों पर लटकने वालों में से हँसी के कुल्ले छोड़ता हुआ नीलकण्ठ की ओर देखता; नीलकण्ठ ज़ोर-ज़ोर से चप्पू चलाते हुए कभी बड़े बूढ़ों के समान 'ना भिखारी' पर तान तोड़ता कभी कल्याण भगत की विशिष्ट शैली में 'हरे हरी हे माधव' का अलाप करने के पश्चात् एक दम गम्भीर नज़र आने लगता। उस समय कल्याण भगत सोचता कि नीलकण्ठ पर उसका रंग चढ़ रहा है।

आज प्रातः नाव खोलने से पहले नीलकण्ठ ने बन्शी के कान में पूछा था, "तुम्हें कल्याण भगत का रूप पसन्द है या कल्याण बाबा का?" और बन्शी ने उस प्रसंग से हटकर कहा था, "मुझे तो दोनों ही किसी नाटक के सूत्रधार प्रतीत होते हैं।" बन्शी का विचार कहाँ तक ठीक था,

लड़कियों को भी मना नहीं करते थे।

मधुप बरामदे में चटाई डालकर लेट गया।

रेणु और मल्लना दालान में माँ के पास बैठे गप शप कर रहे थे। उनकी बातें मधुप के मस्तिष्क पर चोट कर रही थीं, पर उस में इतना साहस न था कि उन्हें चुप रहने को कहता।

गोशाला की ओर से गोबर और सूखी घास की विचित्र-सी गन्ध आ रही थी। वह उठकर कपिला के पास जाना चाहता था, पर आज उस में इतनी शक्ति न थी कि अपने हाथ से कपिला का दूध दुहता। पर चटाई पर लेटे-लेटे वह कल्पना में गाय का दूध दुहने लगा, जैसे दूध की धार पड़ने की आवाज़ उसे प्रिय लग रही हो। वह जानता था कि दूध दुहते समय गाय को भी एक विशेष प्रकार का आनन्द आता है, जैसे वह दोनों हाथों से कपिला के थन दबा-दबा कर दूध दुह रहा हो और दुग्ध धार से मधुर संगीत फूट रहा हो।

उन्नीस



वे मामुली के शिकारी-गाँव से लौट रहे थे। भागल नावरिया के भतीजे नीलकण्ठ और बन्सी नाव चला रहे थे। दोनों के घुँघराले बाल थे। दोनों जुड़वाँ भाई थे। एक-सा रंग-रूप। वे जो भी काम करते मिलकर करते। पल-भर के लिए भी उन्हें एक-दूसरे से पृथक् होना अप्रिय था। मामुली में उनका बचपन बीता था, इसलिए कभी वहाँ जाना होता तो वे कम किराये पर भी राजी हो जाते।

नीलकण्ठ के हाथ में था चप्पू और बन्सी के हाथ में बाँस। जहाँ पानी कम गहरा होता, तो बाँस से जोर लगाकर नाव को आगे धकेलना पड़ता। बन्सी बाँस उठाये काँधों पर सम्भले पानी में से हँसी के छल्ले छोड़ता हुआ नीलकण्ठ की ओर देखता। नीलकण्ठ जोर-जोर से चप्पू चलाते हुए कभी बड़े बूढ़ों के समान 'बड़ दिग्धारी' पर तान तोड़ता, कभी कल्याण भगत की विशद शैली में 'हरी-हरी हे माधव' का आलाप करने के पश्चात् एक दम गम्भीर नज़र आने लगता। उस समय कल्याण भगत सोचता कि नीलकण्ठ पर उनका रंग चढ़ रहा है।

आज प्रात नाव खोलने से पहले नीलकण्ठ ने बन्सी के कान में पूछा था, "तुम्हें कल्याण भगत का रूप पसन्द है या रामलाल काका का?" और बन्सी ने उस प्रश्न से चौंककर कहा था, "मुझे तो दोनों ही किसी नाटक के सूत्रधार प्रतीत होते हैं।" बन्सी का विचार कहाँ तक ठीक था,

लड़कियों को भी मना नहीं करते थे।

मधुल बरामदे में चटाई डालकर लेट गया।

रेणु और ममता रसोई में माँ के पास बैठे गप-शप कर रहे थे। उनकी बातें मधुल के मस्तिष्क पर चोट कर रही थीं, पर उस में इतना साहस न था कि उन्हें चुप रहने को कहता।

गोशाला की ओर से गोबर और सूखी घास की विचित्र-सी गन्ध आ रही थी। वह उठकर कपिला के पास जाना चाहता था, पर आज उस में इतनी शक्ति न थी कि अपने हाथ से कपिला का दूध दुहता। पर चटाई पर लेटे-लेटे वह कल्पना में गाय का दूध दुहने लगा, जैसे दूध की धार पड़ने की आवाज उसे प्रिय लग रही हो। वह जानता था कि दूध दुहते समय गाय को भी एक विशेष प्रकार का आनन्द आता है, जैसे वह दोनों हाथों से कपिला के थन दबा-दबा कर दूध दुह रहा हो और दुग्ध धारा से मधुर संगीत फूट रहा हो।

उन्नीस



वे मामुली के शिवमरी-गाँव से लौट रहे थे। काहल नावरिया के मछीले नीलकण्ठ और बन्ती नाव चला रहे थे। दोनों के घुँघराले बाल थे। दोनों कुन्वाँ मार थे। एक-सा रंग-रूप। वे जो भी काम करते मिलकर करते; पल-भर के लिए भी उन्हें एक-दूसरे से पृथक् होना अप्रिय था। मामुली में उनका बचपन बीता था, इसलिए कभी वहाँ जाना होता तो वे कम किराये पर भी राजी हो जाते।

नीलकण्ठ के हाथ में था चप्पू और बन्ती के हाथ में डाँड़। कहीं पानी कम गहरा होता, तो डाँड़ से ज़ोर लगाकर नाव को आगे धकेलना पड़ता। बन्ती डाँड़ उठाये आँखों पर लटकते बालों में से हँसी के लच्छे छोड़ता हुआ नीलकण्ठ की ओर देखता; नीलकण्ठ बार बार से चप्पू चलाते हुए कभी बड़े-बूढ़ों के समान 'बड़ बिहारी' पर तान तोड़ता, कभी कस्यास्य भगत की विचित्र शैली में 'हरी हरी है मायना' का आलाप करने के पश्चात् एक दम गम्भीर नज़र आने लगता। उस समय कस्यास्य भगत सोचता कि नीलकण्ठ पर उसका रंग चढ़ रहा है।

आज प्रातः नाव खोलने से पहले नीलकण्ठ ने बन्ती के कान में पूछा था, "तुम्हें कस्यास्य भगत का रूप पसन्द है या उन्माद बाबा का?" और बन्ती ने उसे असमंजस में डालकर कहा था, "मुझे तो दोनों ही किसी नाटक के सूत्रधार प्रतीत होते हैं।" बन्ती का विचार कहाँ तक ठीक था,

नीलकण्ठ यह निश्चय नहीं कर सका था। भगत जी थे कि दाढ़ी-मूँछ मुँड़वाकर रहते थे, और रतनलाल काका भगत जी से बिलकुल उलटे थे—गर्दन तक लटकते हुए सफ़ेद बाल लम्बी सफ़ेद दाढ़ी, बड़ी-बड़ी मूँछें—एक महावत का चेहरा तो इसी रूप में अच्छा लग सकता था।

'भगत जी के चक्कर में आकर रतनलाल काका ने भी चेहरा सफ़ाचट करा लिया, तो छिपे हुए आलू जैसा निकल आयेगा!" बन्ती ने हँसकर कहा। इस पर नीलकण्ठ खिलखिलाकर हँस पड़ा भगत जी और रतनलाल काका भी हँस पड़े।

भगत जी की आवाज़ बहुत पायदार थी। जब वह बात करते, तो हँसली की हड्डी उभरकर ऊपर उठ जाती। उन्हें शिकायत थी कि रतनलाल ने आज तक माजुली का एक भी सत्र क्यों नहीं देखा। माजुली में तो चार सत्र थे। इतने बड़े धार्मिक स्थान और कहाँ थे—गडमूर, आउनिआटी, कमलाबारी और दक्षिणपाट। वैष्णव महापुरुष शंकर देव और उनके शिष्य माधव देव ने ये सत्र इसलिए स्थापित किये थे कि वे लोग, जो दूर दूर के तीर्थों की यात्रा न कर सकें, इन में से किसी एक सत्र में बैठकर हरि के निराकार रूप की उपासना करें। माजुली के इन सत्रों में तो सैकड़ों ब्रह्मचारी और भक्त लोग आनन्दपूर्वक रहते थे। सत्राधिकार सत्र का संचालन करता था। "जैसे महावत हाथी को चलाता है, वैसे ही सत्राधिकार सत्र को चलाता है!" रतनलाल ने हँसकर कहा, "एक महावत को तो ऐसी मुक्ति नहीं चाहिए, जिसके लिए उसे हाथी बनना पड़े और किसी सत्राधिकार को अपने कन्धों पर महावत के रूप में बिठाना पड़े!"

"यह तो मिथ्या कल्पना है, दादा!" भगत जी ने गम्भीर होकर कहा 'सत्राधिकार तो महाप्रभु हुए। उनकी कृपा हो जाय, तो बड़े-से बड़ा संकट टल जाय।'

भगत जी ने उस सत्र की बात छेड़ दी जो माजुली के बीचों बीच लम्बाई के बल सब से ऊँचे स्थान पर बनी हुई थी। वर्षा ऋतु में जब चतुर्दिक जल-ही-जल हो जाता था, या जब कभी ब्रह्मपुत्र की बाढ़ के कारण

दूर-दूर तक पानी फैल जाता था और माजुली के गाँव सिपाहियों के समान पानी में डूब जाते थे, तो माजुली की यही सड़क तल से ऊँचे स्थान पर स्थित होने के कारण पशुओं की रक्षा में सहायक सिद्ध होती थी। कई-कई सप्ताह के लिए लोग अपने पशुओं को सड़क पर ले आते और स्वयं आसपास के वृक्षों पर मचान बनाकर दिन बिताते। खेतों में तब गुड़िया नाव चलने लगती थी। रसलाल ने एक-दो बार माँ-जूली की कहानी आरम्भ करने का यत्न किया। भगत जी के सम्मुख आज रसलाल काका एक अतिथि के रूप में बैठे थे। कदाचित् इसीलिए आज वह माजुली के सम्बन्ध में एक-एक बात में अपना अनुभव दूध में मिश्री की तरह घोलकर प्रस्तुत करने को उत्सुक थे।

वर्षा ऋतु में माजुली को जिस कठिनाई का सामना करना पड़ता था, उस से पार पाने के लिए लोग 'हरि हरि हे माधव' कहते रहते थे। कम-से-कम भगत जी का तो यही विचार था। "सारी धरती में सब से बड़ा कौनसा है?" रसलाल ने बड़ा प्रश्न कर दिया।

"वह तो महाप्रभु का नाम है!" भगत जी बात टाल गये।

प्रवाह के विपरीत नाव चलाते हुए नीलकण्ठ का पसीना छूट रहा था। रसलाल काका हँसकर बोले, "हमारे मार्गन साहब कहा करते थे कि एक दिन अँग्रेज ब्रह्मपुत्र पर भी पुल बनाने में अवश्य सफल होकर रहेगा।"

"यह नहीं होगा!" भगत जी बोले "हरि हरि हे माधव!"

नीलकण्ठ बोला, "यह ठीक कही! बाबा यह तो कभी न होगा। ब्रह्मपुत्र बाबा ने आज तक अपने ऊपर पुल नहीं बनने दिया, तो अब कैसे बनने देंगे!"

कम्मी ने हँसकर कहा, "भगत जी की तोप-कथा की बधाई! सुनते सुनते तो हमारे कान पक गये। बाबा, एक बार भगतजी ने ही तो बताया था कि फिरंगी ने गंगा और गोदावरी पर पुल बना लिये, और तुम ही तो एक बार कह रहे थे बाबा, कि फिरंगी के मन में एक बार जो बात आ

आप, उसे वह पूरा करके छोड़ता है। तो भला वह ब्रह्मपुत्र पर पुल बनाने में ही कैसे हार मान लेगा!"

नीलकण्ठ बोला, "हम तो कहेंगे कि ब्रह्मपुत्र पर पुल न बने और बने भी तो गोहाटी की ओर ही बने, हमारे दिसाँगमुख में तो बिलकुल न बने।"

"क्यों?" रत्नलाल मुस्कराया।

"दिसाँगमुख में पुल बनने से हमारी नाव में बैठकर कौन पार जायगा! सब लोग पुल पर वैसे ही चलेंगे जैसे वे सब सड़कों पर चलते हैं।"

भगत जी बोले, "इसे कहते हैं स्वार्थ! मेरा नीलकण्ठ तुम यह क्यों सोचते हो कि दिसाँगमुख में पुल बन गया तो तुम्हारा नाव चलाने का धन्धा ही समाप्त हो जायगा?"

"फिर तो केवल नागरिया की इंजिन वाली नाव पर भी कोई नहीं चढ़ेगा, बाबा!" बन्ती भी चुप न रह सका।

भगत जी ने प्रसंग बदलते हुए कहा

"एक बात याद आ गई। आउनियाटी सत्र के महाप्रभु ने एक बार अपने उपदेश में बताया था कि आसाम में सर्वप्रथम हिन्दू धर्म का किस प्रकार प्रवेश हुआ। वैसे तो उन्होंने कहा था कि आसाम अनेक युगों से कामरूप के नाम से प्रसिद्ध रहा है। यह कथा तो आप में से हर किसी ने सुनी होगी कि जब पार्वती की मृत्यु के पश्चात् महादेव शोकग्रस्त थे, तो देवताओं के निर्णयानुसार हमारी इस भूमि में कामदेव को भेजा गया था ताकि वह महादेव के मन में सृष्टि-रचना की भावना को नये सिरे से जन्म दे सके। यह भी प्रसिद्ध है कि महादेव ने तीसरी आँख से कामदेव की ओर देखा और वह भस्म हो गया। हमारे महाप्रभु—"

"महादेव की तीसरी आँख वाली बात कभी मेरी समझ में नहीं आई।" रत्नलाल ने टोककर कहा, "पर हमारे नामन साहब ने तो हमारे शास्त्रों का अनुवाद अंग्रेज़ी भाषा में पढ़ रखा था वह भी मानते थे कि

शिव की तीसरी आँख से अवश्य आग निकली होगी।"

भगत जी ने क्यों मुस्काते हुए सिर पर हाथ फेरते हुए कहा ' शिव की तीसरी आँख से निकली हुई आग से जब कामदेव भस्म हो गया, तो इस भस्म से एक बार फिर कामदेव ने नया रूप धारण कर लिया।'

"कामदेव कहाँ भस्म हुआ था, बाबा!" नीलकण्ठ ने हँसकर पूछा, "और कामदेव दोबारा कैसे जीवित हो गया था?"

'यह यहीं है हमारा असम, जिसे प्राचीन ग्रन्थों में कामरूप भी कहा गया है यहीं कामदेव दोबारा जीवित हो गया था तब देवताओं की शक्ति से!"

चम्पी बोला, "कभी कामदेव भी भस्म हुआ है, बाबा!'

नीलकण्ठ ने चप्पू चलाते हुए कहा, "अब यह प्रसंग समाप्त करो। ब्रह्मपुत्र को देखो। भाग छोड़ता नया पानी आ रहा है। ऊपर पहाड़ों पर बहुत वर्षा हुई है!

रासाराम बाबा बोले "बिहू के तीसरे दिन तो शिवसागर में भी वर्षा हुई थी।

"आज तो आकाश निर्मल है।" नीलकण्ठ ने हँसकर कहा "आज कहाँ चले गये काले-काले मेघ!"

"काले मेघों को तो ता-थै-थैया नाचने में ही आनन्द आता है!" चम्पी ने बताया दिया 'इस बार बोहाग बिहू दिन-भर बन्द रहा था। अब अपने अपने घर में तो बन्द नाचने से रहा। नाच का आनन्द तो मिलकर नाचने में ही है।"

नाव चली जा रही थी। नीलकण्ठ का अंग-अंग फड़क रहा था। उस ने चप्पू की गति में और भी वेग लाते हुए कहा, "दुनगाया के लिए लाचा ठीक हो गया, बाबा!"

' तुम्हें तो पसन्द है लड़का।" भगत जी खाँसकर बोले, "घर जाकर विचार करेंगे।"

चम्पी ने अपनी ही हाँकी, "गाँव ही में लड़की की अनुराग हो, यह तो होना ही नहीं चाहिए।"

"क्यों, इस में क्या बुराई है ?" रामलाल ने झट पूछ लिया।

"जहाँ लड़की के संयोग होते हैं, वहीं उसकी ससुराल बसती है।" भगत जी मुस्कराये, "माता-पिता कुछ सोचते हैं—"

"होता कुछ और है !" रामलाल ने बात रोककर कहा, "एक बात सुन लो। यह लड़का, जो तुम कुन्तला के लिए ठीक कर रहे हो, कुन्तला की माँ को बिलकुल पसन्द नहीं आयेगा।"

भगत जी ने चौंककर रामलाल की ओर देखा।

नीलकण्ठ और बन्सी कुछ न बोले। वे तो तमाशा देखना चाहते थे।

भगत जी ने बात बदलने के विचार से कहा, "भवसागर से पार लगाने के लिए भी एक नावरिया चाहिए। ऐसे ही नावरिया हैं आउनियाटी सत्र के महाप्रभु। गुरुदेव की वाणी को हमारे महाप्रभु नाव की तरह लेते हैं। इस नाव पर वे अपने भक्तों को बिठा लेते हैं। हमारे महाप्रभु एक बार अपने सत्संग में कह रहे थे कि आज तक तो किसी इंजीनियर ने जन्म नहीं लिया जिस ने ब्रह्मपुत्र पर पुल बनाया हो। वे कह रहे थे—'ऐसा दिन कभी नहीं आयेगा जब अन्य नदियों के समान ब्रह्मपुत्र भी किसी पुल के नीचे से बहेगा और पुल पर खड़े होकर मनुष्य यह अनुभव करेगा कि ब्रह्मपुत्र तो उसकी टाँगों के नीचे से बह रहा है।' तुम्हारा क्या विचार है, दादा ?"

रामलाल बोला, "एक दिन अवश्य यह भी कर दिखायेगा।"

भगत जी ने हँसकर कहा "हमारी नाव भी एक प्रकार की डोंगी है। लहरों की ताकत है और हम—"

"और हम दिसाँगमुख जा रहे हैं।" रामलाल ने हँसकर कहा, "अब यह भी कोई कहने की बात है ! मेरा संकेत तो तुम समझोगे नहीं। कुन्तला की ससुराल तो दिसाँगमुख में ही बनेगी।"

"तो आप स्वयं ही मुझे मिला रहे हैं घूम घूम कर।" नीलकण्ठ हँस दिया। "एक बात याद आ गई। एक दिन शिवसागर के एक आदमी को मैं दिसाँगमुख से माजुली पहुँचाने गया, तो वह आदमी रास्ते में बोला—'नाव में बैठे बैठे तो लगता है जैसे हम घोड़े पर सवार हैं और घोड़ा

सरपट दौड़ रहा है!' यह सुनकर मुझे तो हँसी आ गई। मैंने कहा—'इतनी सरपट तो नहीं दौड़ सकती हमारी नाव!' मैंने यह बात देवचन्द और मधुप को सुनाई तो वे दोनों हँस दिये। देवचन्द ने छूटते ही कहा—'सरपट भी दौड़ सकती है हमारे देश की नाव यदि नारायण जैसे दरोगा का आतंक समाप्त हो जाय।

"और मधुप ने क्या कहा था?" रामलाल ने बातडोर सँभाली।

"मधुप को क्या कहना था?" बन्सी बोला, "मधुप तो देवचन्द का ही पिट्ठू है। यह तो समझो कि इतना अन्तर रह गया कि देवचन्द भाग गया और मधुप अभी गाँव में है। नारायण दरोगा ने तो बड़ों-बड़ों को भारी चने चबा दिये। यह तो बस गाँव-भूखा का लिहाज है। मधुप गाँव-भूखा का लड़का न होता तो—"

"तो अब तक जेल में होता!" नीलकण्ठ ने बन्सी के मुँह से बात छीनते हुए कहा। "पता नहीं ये लोग नारायण दरोगा से क्यों टक्कर लेना चाहते हैं।"

भगत जी बोले, "मैं तो मधुप को कई बार समझाते-समझाते हार गया कि चंद्रकी थाने का दारोगा तो शिव की तीसरी आँख के समान है।"

"वाह, वाह!" नीलकण्ठ हँस पड़ा, "क्या रूपक बाँधा! एक दिन इस आँख से निकलने वाली आग से मधुप भस्म हो जायगा।"

"और यह भी तो कहो कि इस भस्म से मधुप दोबारा भी उठेगा, कामदेव के समान।" बन्सी ने बात का दूसरी ओर घुमा दिया, "मधुप को उस दिन शिवू चाप में नहीं देखा था? उधर कुसुमलता बैठी थी युवतियों की पंक्ति में, और सामने मधुप नाच रहा था। भगत जी भी तो उस समय वहीं थे। देखने वाले कह रहे थे—'यह जोड़ी अच्छी रहेगी। बस इनके माता-पिता को समझ आ जाय। मधुप का घर भी तो कुसुमलता के सामने है। मायके और ससुराल के बीच यदि केवल एक सड़क का अन्तर रहे, तो क्या बुरा है?'"

भगत जी कुछ न बोले। रामलाल ने नई बात को उठा लिया, "किन

ने भी यह बात कही, कुछ चुप तो नहीं कहा। मैं तो कई बार यह सोच चुका हूँ।"

भगत जी चुप न रह सके, "छोड़ो यह बात, दादा! इस में क्या रखा है! एक बात याद आ गई। बड़ी सुन्दर बात है। एक बार हमारे महाप्रभु ने यह बात अपने उपदेश में भाठियापाटी सत्र के भक्तों को सुनाई थी। यह बात—"

"यह बात हम भी सुनेंगे।" नीलकण्ठ हँस पड़ा।

"अवश्य।" कमली ने आग्रहपूर्वक कहा।

"सुना तो रहा हूँ।" भगत जी कहते चले गये, "यह बहुत पहले की बात है। पाँच सौ वर्ष पहले की बात होने में तो कोई सन्देह नहीं। शिवसागर राजधानी से बाहर गया हुआ था एक अहोम राजा, क्योंकि चुटिया लोगों से राजा का युद्ध चल रहा था। राजा की दो रानियाँ थीं—एक बड़ी, एक छोटी। छोटी रानी राजा को बहुत प्रिय थी। उस समय वह गर्भवती थी। बड़ी रानी ने छोटी रानी के विरुद्ध षड्यन्त्र रचकर उसे मरवा डालने का प्रबन्ध कर लिया। यदि वह गर्भवती न होती, तो उसके वध में तनिक भी विलम्ब न होता; पर बड़ी रानी ने जिस मन्त्री को यह कार्य सौंपा, उसे छोटी रानी पर और अनागत शिशु पर दया आ गई। बड़ी रानी को तो उस ने यही सूचना दी कि छोटी रानी का जीवन समाप्त कर दिया गया है, पर वह उसे लकड़ी के तख्तों से बने हुए बेड़े पर बिठाकर ब्रह्मपुत्र में ठेल आया। एक ब्राह्मण ने छोटी रानी की रक्षा की, और वह उसे अपने घर ले गया, जहाँ एक राजकुमार को जन्म देने के पश्चात् रानी ने प्राण त्याग दिये। अहोम परम्परा के अनुसार इस राजकुमार का नाम 'सुफाँग फा' रखा गया। सुफाँग फा को उस ब्राह्मण ने अपने बच्चों के साथ पाला-पोसा। हमारे महाप्रभु कहते थे—"

"यही कहते होंगे महाप्रभु कि छोटी रानी को शिवसागर में ही बेड़े पर बिठाकर ब्रह्मपुत्र में ठेला गया था।" नीलकण्ठ ने हँसकर कहा, "और यह भी कहते होंगे कि मामूली के किसी ब्राह्मण ने ही रानी की रक्षा की

थी और सुदाँग फा का पालन-पोषण किया था।"

"जब सुदाँग फा पन्द्रह वर्ष का हो गया, तो मातुली के उस ब्राह्मण ने शिवसागर जाकर अहोम राजा के महा-मन्त्री को यह सूचना दी कि महाराज—"

"बड़ी ही सुन्दर कथा है।" पत्लान ने गम्भीर होकर कहा, "कहते जाइये, भगत जी!"

"हाँ तो सूचना दी कि महाराज हमारे घर में अहोम राजकुमार सुदाँग फा बड़े आनन्द से समय बिताकर बहुत ही बुद्धिमान बन गया है, और वह अहोम परम्परा के अनुसार राज सिंहासन पर बैठने का पूर्ण अधिकारी है क्योंकि उसके सभी अंग पूर्ण हैं। अब यह उन दिनों की बात है जब सुदाँग फा का पिता मार डाला गया था और सिंहासन के लिए राजकुमार की आवश्यकता थी। राजकुमार की मुखाकृति अपने पिता की सी थी। उसे पूरी तरह पहचानकर उसका राज्याभिषेक किया गया। हमारे महाप्रभु कहते थे—"

"यही कहते होंगे महाप्रभु कि सुदाँग फा ने राजा बनकर मातुली के उस ब्राह्मण को मालामाल कर दिया और उसके लड़कों को राज-दरबार में रख लिया। क्यों भगत जी?" नीलकण्ठ हँस पड़ा।

मन्त्री बोला, "इस कथा से यह शिक्षा मिलती है कि जिस की भगवान् रक्षा करे उसे कोई नहीं मार सकता।"

"मैं तो दूसरी ही बात सोच रहा था।" नीलकण्ठ ने वेगपूर्वक कन्धे बचाते हुए कहा, "सुदाँग फा का किसी सुन्दर राजकुमारी से विवाह हुआ होगा, क्योंकि शिव की तीसरी आँख से निकलने वाली ज्वाला में भस्म होने के पश्चात् भी कामदेव ने हमारे इस कामरूप में नया रूप तो बहुत पहले ही धारण कर लिया था। यह भी कह सकते हैं कि कामदेव कभी भस्म हुआ ही न था।"

पत्लान ने अपनी सफ़ेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा, "नीलकण्ठ ठीक कहता है।"

"आज भर में विचार करते समय मङ्गल का नाम न भूलिए, ममत जी!" प्रकाश ने गम्भीर होकर कहा, "विवाह के मामले में संयोग तो मिलना ही चाहिए, पर बुद्धि से काम लेना भी कुछ कम आवश्यक नहीं। बुद्धि भी एक प्रकार का तारा है इसकी चाबी तो अपने पास रहती है, कहीं दूर आसमान में नहीं।"

बीस



आज फिर मालती प्रतिदिन के समान जाल बना रही थी। मनमोहनी जाल को देखकर सोच रहा था—यह कितना पुराना हो गया, फिर भी काम दिये जा रहा है।

मालती की कल्पना में देवकान्त का मुस्कराता हुआ चेहरा उभरा। वह भगवान् से प्रार्थना करने लगी कि पुलिस की दृष्टि देवकान्त की छाया तक भी न पहुँचे। फाँसी का ध्यान आते ही वह डर गई। न बाबा मुझ से तो फाँसी पर कभी नहीं चढ़ा जायगा। मुझे तो अपने प्राण प्रिय हैं। अपने प्राण किसे प्रिय नहीं होते। जाल फेंकने से पहले बापू कहा करता है—सावधान, मछलियो! प्राण तो मछलियों को भी प्रिय होंगे। मृत्यु तो मनुष्य से कभी सावधान होने को नहीं कहती। यह तो हमारा धन्धा है जो मछलियों पर भी दया भाव दिखाये, वह किस का मछुआ है!

उसे ध्यान आया कि जब उसका बापू पाँचवें दिन हवालात से छोड़ा गया था तो किस प्रकार उसके शरीर पर पिटाई के चिह्न दीख रहे थे। स्वयं उसे भी उसका लड़खड़ा गया था। यदि वह देवकान्त के सम्बन्ध में झूठ-मूठ भी कुछ बताना स्वीकार कर लेती, तो कदाचित् उसे उसका न लड़खड़ाना पाता। उसका बापू भी तो देवकान्त के सम्बन्ध में कुछ बताने से अन्त तक इन्कार करता रहा था, इसीलिए तो उसकी पिटाई हुई थी। पिटाई तो स्वयं उसकी भी हुई थी। वह थाना ही क्या हुआ, जहाँ पिटाई

"आप घर में विचार करते समय मधुरा का नाम न भूलिये, भगत जी!" रामदास ने गम्भीर होकर कहा, "विवाह के मामले में संयोग तो मिलना ही चाहिए, पर बुद्धि से काम लेना भी कुछ कम आवश्यक नहीं। बुद्धि भी एक प्रकार का ताला है, इसकी चाबी तो अपने पास रहती है, कहीं दूर मामुली में नहीं!"

बीस



आज फिर भारती प्रतिदिन के समान साथ चला रही थी। अमानवी कांड को देखकर क्षोभ रहा था—वह कितना पुराना हो गया, फिर भी क्रम लिये जा रहा है।

भारती की कल्पना में देवकान्त का मुस्कराता हुआ चेहरा उभरा। वह भगवान् से प्रार्थना करने लगी कि पुलिस की दृष्टि देवकान्त की छाया तक भी न पहुँचे। फाँसी का ध्यान आते ही वह डर गई। न बाबा, मुझ से तो फाँसी पर कभी नहीं चढ़ा जायगा। मुझे तो अपने प्राण प्रिय हैं। अपने प्राण किसे प्रिय नहीं होते। जाल फेंकने से पहले बापू सदा कहता है—सावधान, मछलियो!

'प्राण तो मछलियों को भी प्रिय होंगे। मृत्यु तो मनुष्य से कभी सावधान होने को नहीं कहती। यह तो हमारा धन्धा है; जो मछलियों पर भी दया भाव दिखावे, वह शिकार का मछुआ है!

उसे ध्यान आया कि जब उसका बापू पाँचवें दिन हवालात से छोड़ा गया था तो किस प्रकार उसके शरीर पर पिटाई के चिह्न दीख रहे थे। स्वयं उसे भी उलटा लटकाया गया था। यदि वह देवकान्त के सम्बन्ध में झूठ-मूठ भी कुछ बताना स्वीकार कर लेती, तो कदाचित् उसे उलटा न लटकाया जाता। उसका बापू भी तो देवकान्त के सम्बन्ध में कुछ बताने से अन्त तक इन्कार करता रहा था, इसीलिए तो उसकी पिटाई हुई थी। पिटाई तो स्वयं उसकी भी हुई थी। वह भाग्य ही क्या हुआ, जहाँ पिटाई

"आज पर मैं विचार करते समय अतुल का नाम न भूलिये, ममता भी।" रसाल ने गम्भीर होकर कहा, "विवाह के मामले में संयोग तो मिलना ही चाहिए, पर बुद्धि से काम लेना भी कुछ कम आवश्यक नहीं। बुद्धि भी एक प्रकार का ताला है इसकी चाबी तो अपने पास रहती है, कहीं दूर मामुली में नहीं।'

यह भी धारणा था कि सवेरे-सवेरे मछलियाँ अधिक मिलती हैं या फिर साँझ के पश्चात्। वैसे तो वह भी बास डलता जाता, यह थोड़ा-बहुत भ्रम तो कर ही दिखाता था। अभी भोर होने में देर थी।

धर्मानन्दी ने माथ ठुकता कर बाल खैंचते हुए कहा, "सावधान, मछलियो! आराम से चली आओ हमारे जाल के भीतर। सरकार जो पैसे देते हैं, मुफ्त तो हमें कोई मछलियाँ नहीं पकड़ने देता।"

आरती को स्मरण हो आया कि पिछले वर्ष तो देवकान्त हर तीसरे चौथे दिन उसके साथ नाव में आ बैठता था और आरम्भ कर देता था कलकत्ता की कहानियाँ। कलकत्ता में उसकी पढ़ाई के दिनों में बहुत बार इंजन साहब की बेटी मिली ने उसकी सहायता की थी, यह तो देवकान्त ने कई बार बताया था। साथ ही उस ने यह भी तो कहा था—'यदि किसी प्रकार मिली को इस बात का पता चल जाता कि मैं क्रान्तिकारियों के निकट सम्पर्क में हूँ, तो कदाचित वह मेरी सहायता करने का विचार ही छोड़ देती।' सहसा उसे ध्यान आया कि देवकान्त की खातिर बापू भी कितनी पिटाई हुए थी। अब उन भी तो उलटा लटकाया गया था। इसी पर बस नहीं की गई थी। उनके बाल ऐंठे गये थे उन्हें पीने का पानी नहीं दिया गया था उनके बाल नोचे गये थे; सीने से हण्टर भी लगाये गये थे। कोई भी निदा नहीं चाहता। पिटना तो मामूली बात नहीं। अपनी बात किसे प्रिय नहीं होती! सावधान, मछलियो! हमारे जाल में आराम से चली आओ। सरकार जो पैसे देते हैं। थाने में हमें उलटा लटकाया जाता है, नाचे से हण्टर लगाये जाते हैं। सावधान, मछलियो, सावधान। इस समय देवकान्त न जाने कहाँ होगा! मन-ही-मन आरती देवकान्त के लिए प्रार्थना करने लगी।

वह बार आरती नौकाओं को गिनने लगती जो पास से गुजर रही थीं।

सहसा उसे ध्यान आया—ब्राह्मण का लड़का मांझ तो मछुआ बन सकता है, पर मछुए की कन्या तो इस जन्म में ब्राह्मण की बहू बनने से रही।

न की जाती हो। भारतमाता के हत्थे चढ़ने का मतलब है मृत्यु की राह देखना। हम तो भाग्यशाली थे कि मुक्त होकर आ गये, पर अब भी क्या भरोसा है! देवकान्त पुलिस के हाथ नहीं लगा। पुलिस चाहे तो बापू को और मुझे दोबारा हिरासत में रख सकती है।

अब तो उसे देवकान्त का कोई पता न था। उसे देवकान्त का पता होता तो वह उसे मौका पहुँचाने जाती, पुलिस की तनिक भी परवाह न करती। वह देवकान्त से माघ मास की बात पूछती। वह उस से पूछती कि माघ मास दिसौंगमुख कब आयेगी। इसके उत्तर में देवकान्त नाक सिकोड़ता। वह उस से कहती—पहले मछली और भात खाओ, देवकान्त! फिर माघ मास की बात बताना। अभी अगले ही दिन वह देवकान्त की माँ से मिलने गई थी। माँ को इस बात का तो तनिक भी दुःख नहीं कि बेटा इस पथ पर क्यों चल रहा है पर उसे इस बात का बहुत दुःख है कि कलकत्ता से लौटकर उसका बेटा एक बार भी उस से मिलने नहीं आया।

देवकान्त जैसे बेटे की माँ होने का तो भला किसे गर्व न होगा! करघे पर कपड़े या मूगा का वस्त्र बुनते हुए माँ सदा यही सोचती है कि देवकान्त जैसा बेटा तो प्रत्येक स्त्री को मिले। माँ का यह विचार तो बिलकुल नहीं कि देवकान्त का कार्य शीघ्र समाप्त हो जायगा और फिर वह दिसौंगमुख में आकर रहेगा। मैं सोचती हूँ कि अपने कार्य से छुट्टी पाकर देवकान्त के लिए यह बिलकुल कठिन नहीं हो जायगा कि वह दिसौंगमुख में आकर रहे। देवकान्त ब्राह्मण है। मछुए की कन्या तो क्या सचमुच बनेगी ब्राह्मण की बहू! ब्राह्मण का लड़का तो मछुआ बन सकता है" वह चप्पू चलाते-चलाते बोली, मछलियों का ध्यान रखो, बापू! कहाँ डालोगे जाल?"

'तुम चप्पू चलाती रहो, मालती! मछलियाँ कहाँ मिलेंगी, यह देखना मेरा काम है।"

महाजनी जानता था कि मछलियाँ कहाँ अधिक मिलती हैं। वह

यह भी मान्यता थी कि अँधेरे-अँधेरे मछलियाँ अधिक मिलती हैं या फिर साँझ के पश्चात्। वैसे तो अब भी जाल डाला जाता, पर थोड़ा बहुत काम तो कम ही दिखता था। अभी भोर होने में देर थी।

रामानन्दी ने नाव रुकवा कर जाल फेंकते हुए कहा, "सावधान मछलियो! आराम से चली आओ हमारे जाल के भीतर। सरकार को पैसे देते हैं, मुफ्त तो हमें कोई मछलियाँ नहीं पकड़ने देता!"

मालती को स्मरण हो आया कि पिछले वर्ष तो देवकान्त हर तीसरे चौथे दिन उनके साथ नाव में आ बैठता था और आरम्भ कर देता था कलकत्ता की कहानियाँ। कलकत्ता में उसकी पढ़ाई के दिनों में बहुत बार हडसन साहब की बेटी लिली ने उसकी सहायता की थी, यह तो देवकान्त ने कई बार बताया था। साथ ही उस ने यह भी तो कहा था— 'यदि किसी प्रकार लिली को इस बात का पता चल जाता कि मैं क्रान्तिकारियों के निकट सम्पर्क में हूँ, तो कदाचित् वह मेरी सहायता करने का विचार ही छोड़ देती।' सहसा उसे ध्यान आया कि देवकान्त की खातिर बापू की कितनी पिटाई हुई थी। स्वयं उसे भी तो उल्टा लटकाया गया था। इसी पर बस नहीं की गई थी। उसके कान ऐंठे गये थे, उसे पीने का पानी नहीं दिया गया था, उसके बाल नोचे गए थे; नीचे से हंटर भी लगाये गये थे। कोई भी पिटना नहीं चाहता। पिटना तो आसान काम नहीं। अपनी खाल किसे प्रिय नहीं होती! 'सावधान, मछलियो! हमारे जाल में आराम से चली आओ। सरकार को पैसे देते हैं। थाने में हमें उल्टा लटकाया जाता है, नीचे से हंटर लगाये जाते हैं। सावधान, मछलियो, सावधान! इस समय देवकान्त न जाने कहाँ होगा!' मन ही मन मालती देवकान्त के लिए प्रार्थना करने लगी।

कई बार मालती मछलियों को गिनने लगती जो पास से गुज़र रही थीं।

सहसा उसे ध्यान आया—ब्राह्मण का लड़का चाहे तो मछुआ बन सकता है, पर मछुए की कन्या तो इस जन्म में ब्राह्मण की बहू बनने से रही।

मुफ्त में तो सरकार किसी को मछलियाँ पकड़ने का धन्धा करने की आज्ञा देने से रही। अपने खाने के लिए भले ही कोई दो-चार मछलियाँ पकड़ कर ले जाय, पर कोई इस धन्धे को अपनायेगा तो उसे सरकार को पैसे देने ही होंगे। पैसे देने के विरुद्ध तो नहीं है बापू। मछुए से तो महसूल लेना भी पैसे लेना होंगे। ब्रह्मपुत्र में चाहे जितनी मछलियाँ पकड़ते रहो, यह तो अपना परिश्रम है। फिर सरकार पैसे क्यों लेती है? देवकान्त ने बताया था कि कलकत्ता में हजारों गलियाँ हैं। मन-ही-मन वह उन गलियों को गिनने लगी। उन हजारों गलियों में रहने वाले लोग कैसे होंगे? वे अपने ही दुख-सुख में खोये रहते होंगे। देवकान्त ने एक बार मुझे कलकत्ता दिखाने का वचन दिया था। मैं अवश्य कलकत्ता देखने जाऊँगी। कलकत्ता देखकर यहाँ आ जाऊँगी। फिर मैं यहाँ के लोगों को "कलकत्ता से भी कहीं अच्छी-अच्छी कलकत्ता की कहानियाँ सुनाया करूँगी।

धर्मानन्दी बोला, "आज तो पूरी सौ मछलियाँ फँसनी चाहिएँ।"

भारती का ध्यान परे से आती नाव की ओर था। फिर उस का ध्यान देवकान्त की ओर चला गया। ब्रह्मपुत्र का लड़का चाहे तो अवश्य मछुआ बन सकता है। पहले वह अपने काम से छुट्टी तो पा ले, फिर वह दिसाँगमुख में आकर रहेगा। वह मन-ही-मन ब्रह्मपुत्र की मछलियाँ गिनने लगी। मुझे बार-बार पुलिस ने देवकान्त का भेद बताने के लिए विवश किया था, बार बार मेरे इनकार करने पर मेरे मुँह पर थूका गया था। पुलिस का अत्याचार मैं ने बड़े धैर्य से सह लिया था।

धर्मानन्दी के शरीर पर अभी तक पुलिस की चोटों के निशान नजर आ रहे थे। भारती ने कई बार पूछा—'बापू, तुम्हें किसी ने कुछ कहा तो नहीं था थाने में?' धर्मानन्दी ने हर बार यही उत्तर दिया—'वे मुझ से पूछते रहे और मैं खामोश रहा। मुझे किसी ने हाथ नहीं लगाया।' अभी अगले ही दिन मैं मुक्ताराम को उस के घर तक छोड़ने गई, तो रास्ते में उस ने मुझे कनकलता की कथा सुनाई थी। कनकलता की कथा तो मैं पहले भी जानती थी,

पर उस दिन कुन्तलता के मुख से यह कथा सुनकर कितना आनन्द आया था। कुन्तलता ने कमली की कथा सुनाने के बाद कहा था—'तेरी कथा तो बहुत मन्द है, मालती! एक दिन दिसौंगमुख वालों को मालूम हो जायगा कि मालती ने एक बार फिर कमली की कहानी को जीवित कर दिखाया।' मैं ने उसे चुप कराते हुए कहा था—'क्या पता, पुलिस के कोड़े और अत्याचार से ही तुम्हारी मालती मकबीर हो जाती और देशभक्त का मेर बना देती! फिर जैसे उसकी कल्पना में देवकान्त की आवाज गूँज उठी—एक दिन मैं अपनी कमली से मिलने आऊँगा। जेलखाना में कार्य समाप्त करने के पश्चात् मैं दिसौंगमुख ही में पहुँचूँगा। मैं मछुआ बन जाऊँगा। फिर तो तू खुश होगी, मेरी कमली!

रमाकान्ती ने न जाने क्या सोचकर कहा, 'यह कहावत तो तुम ने अवश्य सुनी होगी, मालती!''

'कौनसी बापू!'

''वही—'चोरी के लिए घड़ों की कुछ बूँदें ही काफी हैं।' बड़ी गहरी बात है।'' रमाकान्ती ने दोनों हाथ मालती की ओर उठाकर कहा, 'आज कितने बादल घिर रहे हैं। वर्षा होगी।'

मालती बोली, 'यह चोरी वाली कहावत भी अच्छी है, बापू! मैं सोचती थी तुम वह साँप और मछली वाली कहावत सुनाओगे।'

''अरे हाँ मालती! वह कहावत भी अच्छी है—'देखो बहन देखो, तुम्हें साँप ने डस लिया और मैंने मछली पकड़ ली!' इस कहावत का मतलब बहुत गहरा है।''

मालती कुछ न बोली। आसाम के इतिहास की वह मुस्लिमकालीन कथा नाटक के दृश्य के समान उसकी कल्पना में सजीव हो उठी—आसाम का अत्याचारी अहोम राजा 'चुप्तिका' था, जिस ने कामरूप अहोम सिंहासन पर अधिकार जमा लिया था, मेघ पर की ऊपर की मंजिल में मेहराब वाले द्वार से सिर बाहर निकाले खड़ा है। नीचे खुले मैदान में, जहाँ कभी नृत्य हुआ करते थे या नाटक खेले जाते थे, आज लोगों की रंगभूमि पर अभी

जयमती की खाल उतारी जा रही है। उसके शरीर पर सड़ाक-सड़ाक कोड़े लगाये जा रहे हैं। सात दिन से वह भूखी और प्यासी है। वह यह जानती है कि उसका पति गदाधरसिंह कहाँ है, पर वह बताती नहीं। उसे बुरी तरह सताया जा रहा है। सब-के-सब अहोम राजकुमारों को अहोम परम्परा के अनुसार सिंहासन के अयोग्य ठहराने के लिए चूलिक फा ने अपने सेनापति को आज्ञा दी थी कि वह उषा की प्रथम किरण फूटने से पूर्व ही प्रत्येक अहोम राजकुमार की एक-एक उंगली या एक-एक कान काट कर और सोने के बड़े थाल में सजाकर प्रस्तुत करे। सेनापति आज्ञा पालन के लिए चला। सब राजकुमारों को सिंहासन के अयोग्य बना दिया गया, क्योंकि अहोम परम्परा के अनुसार राजा भगवान् का प्रतीक माना जाता था इसलिए सिंहासन पर वही राजकुमार बैठ सकता था जो शारीरिक दृष्टि से सवांग पूर्ण हो। जयमती के पति गदाधरसिंह को किसी प्रकार सूचना मिल गई। वह भाग निकला। सड़ाक-सड़ाक जयमती के शरीर पर कोड़े लगाये जा रहे हैं ताकि वह अपने पति का भेद बता दे। जयमती कुछ नहीं बोलती। वह मृत्यु से खेल रही है। हजारों लोग रानी पर किया जा रहा यह अत्याचार देख रहे हैं, सब की आँखों में आँसू हैं सब यही चाहते हैं कि गदाधरसिंह नागा वीरों की सेना समेत आ पहुँचे, जयमती को बचा लिया जाय और अत्याचारी चूलिक फा का शासन सदा के लिए समाप्त कर दिया जाय। देखते-देखते जयमती के प्राण-पखेरू उड़ गये। गदाधरसिंह अपने मित्रों की सहायता से चूलिक फा को उसके अत्याचार का दण्ड देता है और स्वयं सिंहासन पर बैठने में सफल हो जाता है जयमती के नाम पर शिवसागर में जयसागर खुदाया जा रहा है जयसागर के किनारे जयमती के बलिदान के उपलक्ष्य में जयदोल बनवाया जा रहा है आरती की कल्पना में जयमती के बलिदान का दृश्य फिर से घूम गया। फिर जैसे जयमती ने आरती का रूप धारण कर लिया। चूलिक फा के स्थान पर नारायण दारोगा आकर खड़ा हो गया। छत से एक मड़ची उसकी लटकाई गई है नीचे से उसके हण्टर लगाये जा रहे हैं।

नई बस्ती से नये गदाधरसिंह का पता पूछा जा रहा है। इमानदारो! सुमर का बची! क्या वह सेठ देवकान्त यहाँ है?

वह अपनी ओर आती नौकाओं को गिनने लगी—एक, दो तीन। फिर वह जैसे अपने बापू को सुनाकर कहने लगी, "ब्रह्मपुत्र बाबा पर तो हमेशा नौकाएँ चलती रहेंगी। सावधान, मछलियो! हमारे जाल में आराम से चली आओ। ब्रह्मपुत्र पर महल्ली की छाप है और असम के इतिहास पर बस्ती की। बनी बस्ती, छोटी बस्ती। नौकाएँ आ रही हैं—एक दो तीन। जाल में मछलियाँ फँस रही हैं—एक, दो, तीन। देवकान्त यहाँ भी है, मुझे रहे—एक, दो तीन। कलकत्ता में रहती है मारवा मरा—एक, दो, तीन। मेरा माता बहुत दुखी हो गई है—एक, दो, तीन। मैं आपर स्टीमापुर के थाने में डर से इतनी जल्दी-जल्दी मर गई थी—एक दो, तीन। मैं फिर से जीवित हो गई थी—एक, दो तीन!

इक्कीस



दो दिन से वर्षा बन्द नहीं हुई थी। स्टीमर की खिड़की से वर्षा का दृश्य बहुत भला प्रतीत हो रहा था।

सिली जानती थी कि वर्षा ऋतु गाँव वालों के लिए संकट लेकर आती है। साथ ही उस ने यह भी सुन रखा था कि बंगाल और आसाम के नये और पुराने कवि वर्षा ऋतु का गुणगान करते नहीं थकते।

इसी स्टीमर पर सिली का जन्म हुआ था। जब उसका जन्म हुआ तो यह स्टीमर कलकत्ता से दिसाँगमुख आ रहा था। कलकत्ता से चलने के तीसरे दिन स्टीमर ही में सिली ने संसार में आकर पहली बार साँस ली। तब भी यही महीना था—बोहाग बिहू से डेढ़ माह बाद यही आज का दिन था। यह सोचकर कि आज उसका जन्मदिन है सिली मन ही-मन फूली न समाती थी। यह स्टीमर भी उसे बहुत अच्छा लगने लगा जो उसके निवास के लिए स्टीमर-घाट पर ही खड़ा रहता था।

जब से देवकान्त दिसाँगमुख से भाग गया था, सिली उसके सम्बन्ध में कुछ अधिक सोचने लगी थी। कलकत्ता जाने से एक दिन पूर्व वह सिली को मिलने आया था, पर कलकत्ता से लौटकर तो उसे स्टीमर-घाट पर आने का समय ही नहीं मिल सका था।

देवकान्त के दृष्टिकोण से जीवन को देख सकना सिली के बस का रोग न था। उसके डैडी ने अंग्रेज जाति की विशिष्टता की भावना उसके मस्तिष्क में कूट-कूट कर भर दी थी। न जाने कब से सिली यह सुनती आई

थी—'जब तक हम यहाँ रहेंगे, इसके के जोर पर रहेंगे।' इसके उत्तर में वह प्राय मौन रहती उसके डैडी यही सोचते कि लिली उन से सोलह आने सहमत है।

जब लिली सैकेण्ड इयर में पढ़ती थी तो देवकान्त फोर्थ इयर में था। दोनों [illegible] कलकत्ता के दो अलग-अलग कालेजों में पढ़ते थे। लिली जानती थी कि देवकान्त एक असमिया पत्रिका का कार्य कर छोड़ता है और इसके बदले में कलकत्ता की उस पत्रिका का सम्पादक देवकान्त की सहायता करता है। देवकान्त दिसाँगमुख से कैसे कलकत्ता पहुँचा इसकी लम्बी कहानी थी जो लिली ने कई बार स्वयं देवकान्त के मुख से सुनी थी। यह कहानी सुनते वह हर बार बुरी तरह बोर हुई थी फिर भी उस ने तीन-चार अवसरों पर देवकान्त की आर्थिक कठिनाइयों में उसका हाथ बटाया था। उस ने केवल मानवता के धरातल पर खड़े होकर ही देवकान्त की सहायता की थी। आखिर उन दोनों का बचपन दिसाँगमुख ही में बीता था और लिली के लिए यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण थी। बचपन ने ही दोनों की कल्पना में रंग भरा था। वैसे ही देवकान्त यह न सोच सकता था कि लिली एक बीवेल लम्बी होते हुए भी दिसाँगमुख के सम्बन्ध को इतना महत्व दे सकती है।

लिली ने हाथ निकालकर मिलो वर्षा के बूँदों को अपनी मुट्ठी में दबाने का यत्न करने लगती। उस के मुख पर हवा मुख फेर रही थी। हवा की चपलता लिली को प्रिय थी, पर उस की कल्पना से यह बात भी कुछ दूर न थी कि यदि हवा ने तूफान का रूप धारण कर लिया तो हो सकता है कि दिसाँगमुख के बहुत से लोगों की कुटें उड़ जायें। पिछले वर्ष इन्हीं दिनों आसलोछीगा की मुसलमान बस्ती की अधिक नहीं तो चालीस-पचास झोंपड़ियाँ ताश के पत्तों की तरह ढेर हो गई थीं।

कलकत्ता आने से पहले दिन देवकान्त लिली से मिलने आया था, तो न जाने किस सम्बन्ध में यूनानी नाटक की चर्चा होने पर देवकान्त ने कहा [illegible]।

था—'यूनानी नाटक में मृत्यु ऐसे आती है जैसे पैमाने से सीधी रेखा खींची जाती है, पर अब जबकि साइन्स की इतनी प्रोग्रेस हो चुकी है और यह सिद्ध कर दिया गया कि कोई भी रेखा सीधी नहीं होती, यह और भी आवश्यक हो जाता है कि नाटक में ट्रेजेडी का रंग पैदा करते समय सीधी रेखा के ढंग पर मृत्यु को लाने की बजाय इसे जीवन के समीप लाया जाए।' इसके उत्तर में यह पूछने पर कि मृत्यु को जीवन के समीप लाने से उसका क्या तात्पर्य है, देवकान्त ने कहा था—'एक मृत्यु वह थी जो क्राइस्ट को प्राप्त हुई, एक मृत्यु वह भी है जो एक देशभक्त को प्राप्त होती है।'

यदि अपने डैडी के इस विचार से सिल्वी पूरी तरह सहमत हो सकती कि अंग्रेज सदा डण्डे के जोर पर ही इस देश पर राज्य करेगा, तो शायद वह कभी देवकान्त को यह आज्ञा न देती कि उनके स्टीमर में आकर वह अपने देश के सम्बन्ध में इतनी तीव्रता से बात कर सके।

वर्षा जैसे आज ही अपना पूरा जोर दिखाने पर तुल गई थी। अब तो प्रतीत होता था कि तूफान का रंग उभर आ रहा है। आज फिर दिबाँगमुख की झोंपड़ियों के छप्पर उड़ जायेंगे। आज फिर बहुत-सी झोंपड़ियाँ पिछले से पिछले वर्ष के समान नीचे बैठ जायेंगी। सिल्वी को खिड़की में खड़े-खड़े याद आया कि एक बार कलकत्ता में उस ने देवकान्त को एक होटल में डिनर पर बुलाया था। डिनर के पश्चात् उन्हों ने एक खेल देखा था। उस खेल में जीवन और मृत्यु का द्वन्द्व दिखाया गया था। खेल समाप्त हुआ तो देवकान्त कह उठा था—'यह मृत्यु नहीं, मृत्यु का उपहास है। मृत्यु तो वही है जो फाँसी पर झूलते हुए क्रान्तिकारी से गले मिलती है।' अब तो तुम्हारे मन की साध पूरी होकर रहेगी, देवकान्त! तुम अंग्रेजों का डण्डा सहने से इन्कार कर रहे हो। यही तुम्हारी क्रान्ति का सन्देश है। मेरे डैडी गलत कहते हैं। डण्डे का उत्तर तो सदा डण्डे से दिया जाता है, चाहे पहले या पीछे। क्राइस्ट की शिक्षा तो यह नहीं है। वह तो प्रेम का सन्देश लेकर आया था।

इस सन्देश के अपराध में उसे दण्ड मिला। उसे अपनी सूली स्वयं ही उठाकर ले जानी पड़ी थी। उसके हाथों और पैरों में मेखें गाड़ दी गई थीं।

सामने वाली दीवार पर एक चित्र लटक रहा था। वह एक चरवाहे का चित्र था। चित्र का चरवाहा हू-ब-हू अतुल प्रतीत हो रहा था। जिस ने भी अतुल से परिचित होने के पश्चात् यह चित्र देखा, उस ने यही कहा कि यह अतुल का चित्र है।

शिली जानती थी कि वर्तमान युग के सब से अधिक गीत तो टैगोर ने ही लिखे हैं। कलकत्ता में रहते हुए उस ने बँगला भी सीख ली थी। असमिया तो वह पहले ही जानती थी। देवकान्त के साथ मिलकर उस ने कई बार टैगोर के गीत गाये। देवकान्त के समान तो अच्छा वह कैसे गा सकती थी फिर भी टैगोर के गीतों की स्वर-माधुरी उसे प्रिय थी। इसीलिए दोनों एक बार कवि टैगोर से मिलने शान्तिनिकेतन गये थे। बड़ा-सा चोगा पहने कवि आराम कुर्सी पर बैठे थे। फूलों की प्रशंसा में लिखी हुई नई कविता कवि ने अपनी लोचदार आवाज़ में सुनाई थी। जब देवकान्त को न जाने क्या सूझी उस ने कवि से प्रश्न कर दिया—'फूल की भी तो मृत्यु आती होगी और क्या फूल वैसे ही नहीं मरता जैसे शक्तिशाली पंखों पर भूला जाता है !' इसके उत्तर में कवि ने मुस्करा कर कहा था—'फूल की मृत्यु ही फूल का जीवन है !' शान्तिनिकेतन से लौटते हुए गाड़ी के डिब्बे में देवकान्त ने कहा था—'जब मनुष्य अपने सिद्धान्त के लिए मृत्यु से भी नहीं डरता, तो वह आदर्श बन जाता है कभी वह मुस्करा कर विषपान करता है !'

पथ के अनेक दृश्य, जिनका वर्णन न जाने किस-किस पुस्तक में हुआ था, शिली की कल्पना में उभरते चले गये। फिर कल्पना की सुई अतुल की ओर घूम गई। अतुल में सब-कुछ शुद्ध है, देवकान्त में तो बहुत कुछ बाहर का मिश्रण है। मैं भी अपने को शुद्ध नहीं कह सकती। शुद्ध तो हैरो भी नहीं रहे। चित्रप्रसाद के मरदी-मूगा के कन्धे में ममपुत्र।

डैडी का भी हिस्सा है। डैडी चाहते हैं कि वह यहाँ रुपये के जोर से रहना चाहते हैं प्रेम के जोर पर तो चाहे कोई लाखों-करोड़ों वर्ष तक रह ले, रुपये के जोर पर तो कठिन है। रुपये का नशा उतरता है। हम लोग क्राइस्ट की शिक्षा भूल रहे हैं। क्राइस्ट हमारा चरवाहा था। हम क्राइस्ट की भेड़ें हैं। क्राइस्ट ने अपनी भेड़ों को एक ही शिक्षा दी कि लोगों के मन प्रेम से जीतो, सेवा से जीतो। सहसा लिली को उस दिन की याद आ गई जब उस ने अपने डैडी के हेडक्लर्क विष्णुराम के हाथ अतुल के लिए असमिया बाइबिल भिजवाई थी। इसे अतुल ने स्वीकार नहीं किया था। पहले उसे अतुल पर बहुत क्रोध आया था, पर अब तो वह सोचती थी—अतुल को बाइबिल की आवश्यकता ही नहीं वह पहले से ही क्राइस्ट की शिक्षा पर चल रहा है।

पीछे मुड़कर लिली ने चरवाहे का चित्र देखा। यह चित्र वह शान्ति निकेतन से लाई थी। चरवाहे का चित्र अतुल से कितनी आश्चर्यजनक समता रखता था। अतुल चरवाहा है या देवदूत?—यह प्रश्न लिली के मस्तिष्क में बार-बार उठता रहा।

बाहर वर्षा हो रही थी। लिली ने ग्रामोफोन पर नवीं सिम्फनी का रिकार्ड लगा दिया। उसकी कल्पना में बीथोविन का चेहरा उभरा, जैसे बीथोविन कह रहा हो—मुझे इस सिम्फनी की प्रेरणा एक चरवाहे के गीत से मिली थी। वह एक क्लासिक गीत था। मेरी सिम्फनी में उस क्लासिक गीत का क्लासिक बीज खूब फला-फूला। पास वाले कमरे से डैडी की आवाज सुनाई दी, "नवीं सिम्फनी पर तो हमारी लिली जान देती है!" फिर मम्मी की आवाज आई, 'मुझे तो स्कॉच धुन ही अधिक प्रिय है!" लिली ने डैडी और मम्मी की आवाजों को अनसुनी करते हुए वर्षा के आर्केस्ट्रा पर कान लगा दिये।

बाईस



रामलाल काका की नई झोंपड़ी वर्षा ऋतु से पहले ही बनकर तैयार हो गई थी।

शायद मेरी अन्तिम इच्छा तक मन करता रहा कि काका गाँव-भूरा के चक्कर से निकलकर मेरी बस्ती में आकर रहें। उसका विचार था कि अब काका अब्दुल कादिर के चक्कर में फँस गये। नई झोंपड़ी के लिए काका ने अब्दुल कादिर से ज़मीन ली थी। उसके घर की बगल में ज़मीन का यह टुकड़ा बहुत दिनों से खाली पड़ा था। वहाँ एक पोखरी पहले से मौजूद थी, जिस में अब राजहंसों का जोड़ा तैरता नज़र आता था। राजहंसों का यह जोड़ा मामूली से आया था। काका ने इसे दिलसाँगपुर के हाट-बाज़ार से खरीदा था।

काका की झोंपड़ी के द्वार के दोनों ओर सेमल का एक-एक पेड़ खड़ा था। ये पेड़ इस भूमि पर पहले से मौजूद थे। यह कहना तो कठिन था कि इन पेड़ों ने झोंपड़ी की शोभा बढ़ा दी थी या झोंपड़ी ने इनकी सुन्दरता में चार-चाँद लगा दिये थे। झोंपड़ी के पीछे थी पोखरी, जिस के पीछे एक ओर केले का कुंज था और दूसरी ओर बाँसों का झुरमुट। झोंपड़ी का द्वार सड़क से बहुत दूर न था। नीलमणि [illegible] मगर और अब्दुल कादिर का यही विचार था कि झोंपड़ी बहुत पीछे हटकर बनाई जाय, पर काका ने किसी की एक न सुनी। काका ने यह स्थान सड़क के कारण ही चुना था। इसलिए झोंपड़ी का द्वार सड़क के अधिक महत्त्वपूर्ण।

से अधिक समीप रखा गया। यह तो सेमल के पेड़ों का लिहाज रखा गया, नहीं तो यदि ये पेड़ पहले से वहाँ मौजूद न होते और काका के मस्तिष्क पर इस बात की छाप न होती कि चाँदकुची में उनकी झोंपड़ी के समीप सेमल के पेड़ दूर तक चले गये थे और फागुन में इनके लाल-लाल फूल लाल रंग के झण्डे झुलाते थे, तो काका ने ठीक सड़क पर ही झोंपड़ी बनाई होती।

धनसिंह की दुकान पर भी काका कम ही जाते थे। अपने हाथ से खाना पकाते, अपने हाथ से चाय बनाते। किसे भी उन से मिलना होता, उनके पास खिंचा चला आता। उनकी प्यारी-प्यारी बातें ज़िन्दगी के सम्बन्ध में होतीं। जो कोई भी एक बार काका की बातें सुन लेता, फिर सदा के लिए उनकी बातों का रसिया बन जाता। नीलमणि के घर में बिताये हुए दिन काका को प्रायः स्मरण हो आते और वे सदा यही सोचते कि वहाँ वे उनके ही होकर रह गये थे, अलग से सोच ही नहीं सकते थे।

अब्दुल कादिर हँसकर कहता, "अकेले बैठे-बैठे तो आदमी का दिल उकता जाता है। दिल से बातें करते तुम घण्टों कैसे बैठे रहते हो, काका!"

काका यही उत्तर देते, "एक दुनिया बाहर है, तो एक दुनिया अपने अन्दर भी तो है। बाहर वाली और अन्दर वाली दुनिया में मेल बना रहे, यही तो देखना होता है। आयु के उतार में एकान्त तो आवश्यक है। मुझ पर तो रब की कृपा है किसे भी मिलना होता है, यहीं चला आता है।"

काका की झोंपड़ी में आने वालों में सब प्रकार के लोग थे। भोटी, असमिया और नेपाली, सभी काका की कहानियाँ पसन्द करते थे। कभी ऐसा भी होता कि दो-दो तीन-तीन दिन तक एक भी आदमी काका से मिलने न आता, पर काका को इसकी विशेष चिन्ता न होती। मलय से मिलने के लिए काका के दिल में अवश्य उमंग उठती। अब मलय को भी आना होगा तो यहीं चला आवेगा, यह विचार काका को कह बार

आता, पर लगता था कि मक्खना काका को बिलकुल भूल गया।

काका किसी दुकान से कुछ खरीद रहे होते, तो पास से गुजरता हुआ मक्खना बार बार चाहता कि अभी जाकर काका की टाँगों से लिपट जाय और कहे—मुझे भूल गये, काका ! मैं हूँ मक्खना !

जब भी मक्खना स्कूल जाता, उसके जी में यही आता कि काका की झोंपड़ी में जाकर बाप और काका का कुशल-समाचार पूछकर ही आगे बढ़े। सायंकाल को स्कूल से लौटते हुए वह भीतर जाकर काका का गम्भीर चेहरा देखने का विचार सहज ही भुला न सकता। कई बार वह दूर से देखता कि काका झोंपड़ी के बाहर मजे से बैठे हैं और उनके सामने बैठा उनकी कहानियाँ सुन रहा है। मक्खना सोचता—वह दिन शीघ्र आयेगा जब काका अकेले होंगे उसे पास आते देखकर काका उसे प्यार से बुलायेंगे वे उस से बातें करेंगे, प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरेंगे। वह चाहता था कि काका के सशक्त हाथों को थामकर घण्टों उनके पास बैठा रहे। वह अभी नादान ही तो था। कभी वह सोचता—काका तो बड़ा आदमी है, मैं तो बहुत छोटा हूँ। वह मन-ही-मन फैसला कर लेता कि काका तो बड़ा आदमी है और बड़ा आदमी कभी अच्छा नहीं होता। फिर भी काका का ध्यान आता रहता। कभी वह सोचता कि काका मुझ से मिलना आरम्भ कर देंगे; वे मुझे बुलायें तो सही मैं उनके घर जाकर उन से बोलूँगा नहीं। कभी वह सोचता कि वह अपनी बहन रेशु को भी साथ लेकर काका से मिलने जायगा। रेशु कितनी खुश होगी। पर हम क्यों काका के घर जाने लगे ! काका क्यों हमारे घर से चले गये ! वे फिर से क्यों हमारे घर में आकर नहीं रहने लगते ! सोचते-सोचते उसकी कल्पना में जंगल उग आता इस चित्र में बाघ और हाथी होते, लोमड़ी के बच्चे होते; खरगोश और हिरन, गीदड़ और मोर, और न जाने क्या-क्या। वह सोचता—मैं रत्नाम काका के साथ हाथी पर बैठकर जालीकीया की सड़क से गुज़र रहा हूँ; रेशु रो रही है कि काका ने उसे अपने साथ क्यों नहीं बिठाया मनविंद पर रहा है—'बाप हम शिकार और हाथी की सवारी करें

मलखा !' वाह रे वाह ! मैं जमीन से कितना ऊँचा हो गया भगसिंह से भी ऊँचा, धनसिंह की दुकान से भी ऊँचा ! कल्पना के शिखर पर मलखा को काम कितना अच्छा लगने लगता।

मलखा के पैर रुक गये। वह बाबा की झोंपड़ी के सामने खड़ा रहा। साँझ उतर रही थी। फिर रात का अन्धकार फैल गया।

मलखा ने सोचा—घर जाना चाहिए; माँ मेरी राह देख रही होगी रेणु भी मुझे ढूँढ रही होगी। द्वार पर खड़ी मुस्कराए मुझे इतनी देर से आते देखकर कहेगी—'अब छुट्टी मिली ! भीतर से निकलकर माँ कहेगी—'तू कहाँ रह गया था ?' रेणु दौड़कर आयेगी और कहेगी— हम इसी का खेल खेलेंगे, मलखा !'

मलखा भीतर चला गया और खिड़की से झाँककर देखने लगा। लालटेन के प्रकाश में बाबा का चेहरा पत्थर से तराशा हुआ प्रतीत हो रहा था। बाबा बैठे गुनगुना रहे थे। उनकी आँखों में आँसू थे। उनकी आवाज भर्राई हुई थी। वह न तो भीतर जा सकता था न भाग सकता था। बाहर अन्धकार था। वह बाबा से डरता भी था और उनकी ओर खिंचा भी जा रहा था। वे उसके हामी बाबा थे। उस ने उन्हें इस नाम से पुकारा था। अब तो वह उनका घर छोड़ कर आ गये थे। उसकी आँखों ने बाबा के होंठ हिलते देखे; उसके छोटे-छोटे कानों ने बाबा की आवाज सुनी। उसके सारे शरीर में एक नई स्फूर्ति जाग उठी। वह भागकर झोंपड़ी के भीतर चला गया। वह बाबा के गले लग गया और फूट-फूट कर रोने लगा।

मलखा को अपने हाथों पर उठा कर रामलाल खड़ा हो गया और बड़े प्यार से रामलाल बोला :

"मेरे बेटे !"

मलखा कुछ न बोला। आवाज उसके कण्ठ में ही कहीं अटक गई। बाबा समझ गये कि क्या बात है। बाबा ने प्यार से पूछा, 'इतने दिन तुम क्यों न आये ! जानते हो मलखा किसे कहते हैं !"

"यह तो मैं नहीं जानता।"

"मास्टर जी ने भी नहीं बताया ?"

"नहीं ।"

"माँ ने भी नहीं बताया ? अच्छा, हम बताते हैं । जिस हाथी के दाँत होते हैं, उसे कहते हैं दन्ताल ।"

'यह तो मैं भी जानता हूँ ।'

"अच्छा तो मकना किसे कहते हैं ?"

'यह तो नहीं जानता ।'

जिस हाथी के दाँत नहीं होते, उसे कहते हैं मकना ।"

मकना को जैसे विश्वास न आ रहा हो कि बाबा ठीक कहते हैं । शायद मकना का यही मतलब है, शायद बाबा उपहास कर रहे हैं । वह अपने हाथी बाबा के पास बैठ गया ।

तेईस



आज मीरी बस्ती में दबूर-पूजा का त्योहार मनाया जा रहा था। पूजा के लिए मीरी भाषा का शब्द था 'उइ'। इसलिए स्वयं मीरी लोग इस त्योहार को 'दबूर उई' कहते थे। असमिया और नेपाली लोगों का विश्वास था कि दबूर इन्द्र देवता का ही मीरी रूप है, इसलिए वे दबूर-पूजा के स्थान पर इन्द्र पूजा कहना पसन्द करते थे।

वर्ष में दो बार यह पूजा की जाती थी। पहली पूजा चैत में की जाती थी—वर्षा ऋतु से पहले; दूसरी पूजा आश्विन में की जाती थी, जब वर्षा ऋतु अपने उत्कर्ष पर होती थी। यह तो सभी मानते थे कि यदि इन्द्र देवता की दो बार पूजा न की जाय तो वे वर्षा ऋतु में अम्बर पर अपने घड़े कुछ इस प्रकार एक साथ तोड़ डालें कि सब नदियों में बाढ़ आ जाय। यह भय तो लगा ही रहता था। इन्द्र के कोप से ऐसा तूफान आ सकता था कि झोंपड़ियों की छतें उड़ जायें, असंख्य पेड़ उखड़कर गिर जायें, सड़क पर चलते हुए लोग उड़कर कहीं दूर जा गिरें और यह भी पता न चले कि उनके शरीर में कितनी बोटियाँ थीं।

मीरी लोगों में यह नियम था कि बस्ती का पुजारी दबूर-पूजा का दिन निश्चित करे, इसलिए दोनों बार विभिन्न मीरी बस्तियों में दबूर-पूजा का दिन अलग-अलग होता था। शर्त यही थी कि चैत और आश्विन में एक-एक बार प्रत्येक मीरी बस्ती में दबूर-पूजा अवश्य की जाय।

सवेरे-सवेरे रबूर-पूजा आरम्भ होने से पहले बस्ती के प्रवेश-द्वार पर कोई चिह्न रख दिया जाता था जिस से यह पता चल जाए कि बस्ती के भीतर रबूर-पूजा हो रही है और पूजा शेष होने तक कोई व्यक्ति बस्ती के भीतर प्रवेश करने का साहस न करे। यह भी नियम था कि यदि बस्ती का कोई व्यक्ति काम से बाहर गया हो तो वह भी पूजा के मध्य में बस्ती के भीतर न आये। यदि कोई पढ़ा लिखा आदमी मिल जाता, तो बस्ती के बाहर लकड़ी की तख्ती लगाकर उस पर यह लिखवा दिया जाता था 'आज हमारे गाँव में रबूर-पूजा हो रही है। इसलिए प्रातःकाल से लेकर गोधूलि तक कोई भी आदमी बस्ती के भीतर प्रवेश न करे।'

यह निषेध, जिसे 'नानाली' कहा जाता था, असमिया भाषा में लिखी रहती थी; इस से सब को पता चल जाता था। इस निषेध की अवहेलना करते हुए कोई व्यक्ति बस्ती में घुसने का साहस करता, तो उसे दण्ड ही दण्ड दिया जाता—उसके हाथ-पैर बाँधकर उसे 'पेकुम' में डाल आते थे। पेकुम उस स्थान को कहते थे जहाँ झोंपड़ी के मचान के नीचे सूअर बँधे रहते थे। रबूर-पूजा की तिथि से दो-चार दिन पहले ही मीरी पुजारी पूजा के लिए मुर्गे-मुर्गियाँ, जिनकी संख्या छह से किसी अवस्था में भी अधिक नहीं होती थी, और एक सूअरी ठीक करके रखता था। पूजा से पहले बस्ती के लोग मिलकर बस्ती की परिक्रमा करते थे। परिक्रमा पाँच बार की जाती थी और उस में मुर्गे, मुर्गियाँ और सूअरी को भी साथ रखते थे। परिक्रमा में केवल पुरुष ही रहते थे। परिक्रमा के पश्चात् मुर्गे-मुर्गियों और सूअरी की बलि दी जाती। पूजा करने वाले लोग मिलकर मांस पकाते और इन्द्र देवता के नाम पर सहभोज का आनन्द लेते। पूजा के पश्चात् 'लाओ पानी' का नशा किया जाता।

रबूर-पूजा की एक रीति यह भी थी कि गाँव की लड़कियाँ मिलकर नाचतीं थीं और अपने रबूर-नृत्य में गाये जाने वाले गीतों में इन्द्र देवता को सम्बोधित करते हुए गाती थीं—देवता की कृपा बनी रहे। बर्षा समय पर हो। स्त्रियाँ पुत्रवती हों। गाँव में सुख-शान्ति रहे। धान धन

से मिले, आदमी आदमी से मिले। कोई किसी से शत्रुता न करे, कोई किसी से ईर्ष्या न करे। दमूर देवता का आशीर्वाद सब को एक समान प्राप्त हो।'

दिलोंगखुल के स्कूल में न पैव की दमूर-पूजा की छुट्टी रहती थी न आश्विन की। पर आज स्कूल बन्द था। आश्विन की दमूर-पूजा का दिन रविवार को ही पड़ता है, यह सुनकर आज मक्खना को अपार हर्ष हुआ था।

नये वस्त्र पहनकर मक्खना घर से चला, तो सोनपाही ने पीछे से पुकार कर कहा :

''सीधे रसलाल काका के घर जाना।''

मक्खना ने सिर हिलाकर माँ को विश्वास दिलाया कि वह रसलाल काका के घर जा रहा है।

दो दिन से वर्षा नहीं हुई थी। परसों ही तो निर्णय किया गया था कि आज ही के दिन दमूर-पूजा की जाय। मक्खना की आँखों में हर वस्तु घूम रही थी। नये वस्त्र पहनने का उसे बहुत हर्ष था। उस से भी अधिक हर्ष इस बात का था कि वह अकेला है और जो चाहे कर सकता है। मूगा का कुर्ता और अपनी की निकर को वह बार-बार छूकर देखता रहा। पैरों में नये मोजे थे। ये मोजे पिछले हाट-बाजार में खरीदे गये थे। पैरों में नये बूट थे, जो शिवसागर से मँगवाये गये थे। सिर पर घुँघराले बाल थे। गर्दन के साधारण से झटके से सिर के घुँघराले बाल बाले की मशाल के समान डोलने लगते थे। एक झटके से उस ने बालों को हिलाया और सड़क पर खड़े-खड़े अपने घर की ओर नजर घुमाकर देखा।

घर के सामने खड़े-खड़े मक्खना ने सोचा—रसलाल काका तो बड़े अच्छे हैं। सब बड़े आदमी तो इतने अच्छे नहीं होते और न ही वे बच्चों को इतनी प्यारी-प्यारी कहानियाँ सुनाते हैं। अब तक तो काका चाय पी चुके होंगे। कल रात जब मैं उन से मिला था, उन्होंने आज सवेरे आने को कहा था। मैं काका के घर न जाऊँ तो काका क्या करेंगे?

आज तो दबूर-पूजा है। आमा की कहानियाँ तो कल भी सुनने को मिल जायेंगी।

आसमान पर बादल घिरे हुए थे। आज वर्षा न हो तो अच्छा है, यह सोचकर मन्ना मीरी बस्ती की ओर हो लिया। आज तो वर्षा बिलकुल नहीं होनी चाहिए, इस से तो दबूर-पूजा का मज़ा बिगड़ जायगा।

एक स्थान पर रुक कर उस ने पीछे की ओर नज़र घुमाकर देखा। वह पीछे लौट जाने की बात सोचने लगा। माँ मारेगी। अतुल कान ऐंठेगा। कल उस दिन अतुल ने मुझे मीरी बस्ती की ओर जाने से मना किया था। शायद कृष्णकान्त ने मुझे मीरी बस्ती की ओर जाते देख लिया हो। शायद उस ने जाकर माँ से कह दिया हो। माँ तो अभी आ सकती है। माँ तो अभी मेरे मुँह पर थप्पड़ लगा सकती है। माँ का कहना मानो, यह बात तो मास्टर जी भी कहते हैं। खाकी की निकर किस ने दी?—माँ ने। मुगा का कुर्ता किस ने सिया?—माँ ने। माँ ने तो कहा था कि रामलाल काका के घर जाना और मैं इधर चल पड़ा। माँ तो अच्छी है—बहुत अच्छी है। दबूर-पूजा भी अच्छी होगी। फिर मैं दबूर-पूजा क्यों न देखूँ? हमारा बोहाग-बिहू तो हर कोई देख सकता है। इस बार तो मेम साहब भी हमारा बोहाग-बिहू देखने आई थी। मायाराम दरोगा और थाने के सिपाही भी तो बोहाग-बिहू का नाच देख रहे थे। फिर मैं क्यों मीरी बस्ती में जाकर दबूर-पूजा का नाच नहीं देख सकता? मीरी बस्ती में सब ने नये वस्त्र पहने होंगे। लड़कियों ने चोटी में फूल लगाये होंगे। वहाँ व्यापार बाज़ार भी होंगे। क्या इधर रामलाल काका भी वहीं गये हों। रामलाल काका अवश्य वहाँ गये होंगे। उसे ध्यान आया कि वह भी अपने कान में एक फूल लगा ले। कान में फूल न लगा सकने का उसे बहुत दुःख था।

वह लम्बे-लम्बे पग उठाकर मीरी बस्ती की ओर चलने लगा।

दूर से ढोल की आवाज़ समीप आ रही थी। यह इस बात की घोषणा थी कि मीरी बस्ती में दबूर-पूजा का नाच आरम्भ हो चुका है। उसे तो

इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि ढोल की आवाज इतनी अच्छी है, फिर भी घर वाले दबूर-पूजा में जाने से उसे रोकते रहे थे।

वह चला जा रहा था। अब वह उस मोड़ से भी आगे जा चुका था जहाँ से भालीसीगा की सड़क नीचे स्टीमर-घाट की ओर चली गई थी।

मकना चलते-चलते एक पेड़ से टकराया। इस पेड़ पर एक तख्ती लटक रही थी, जिस पर चाक से बड़े-बड़े असमिया अक्षरों में यह लिखा हुआ था कि बाहर का कोई आदमी दबूर-पूजा की समाप्ति तक बस्ती में न घुसे। मकना को बहुत क्रोध आया। दबूर-पूजा देखने से मुझे कौन रोक सकता है? मैं तो शिवसागर के गाँव-बूढ़ा का बेटा हूँ। मेरे सिर पर तो भाभार काका भी हाथ फेर चुके हैं और रत्नाल काका भी। वे दोनों मीरी हैं। मुझे तो कोई कुछ नहीं कह सकता।

उसके पग बस्ती के भीतर उठते चले गये। लड़कियों के दबूर-पूजा गान की लय नाचती-थिरकती आ रही थी। वह चाहता था कि भागकर वहीं, पक्षी के समान उड़कर नाच के घेरे में पहुँच जाय।

उधर से तीन-चार मीरी भागते हुए इधर आ रहे थे। उन में सावन भी था। पास आते ही सावन ने कड़क कर कहा, "किधर भागा आ रहे हो, मकना के बच्चे !"

मकना बिलकुल न समझ सका कि सावन ने छूटते ही यह क्यों कहा। अभी अगले ही दिन तो सावन ने धर्मसिंह की दुकान से चाय पीकर रत्न नापित की दुकान में मुझसे समय मेरे सिर पर हाथ फेरा था।

देखते-देखते सावन ने अपने कन्धे से रस्सी उतारकर मकना के हाथ पैर बाँध डाले।

मकना बहुत चिल्लाया। किसी ने उसकी एक न सुनी। मीरी युवकों ने मकना को उठा लिया और वे उसे 'देरुग' में ले गये।

मकना रोता रहा। वे युवक उधर को घूम गये जिधर नृत्य हो रहा था।

नृत्य के ताल पर थिरकते हुए दबूर-गान की आवाज बराबर मकना के

सपनों में आ रही थी जिन आँखों में वह मौत उमड़ता था, वे मरने वाली लड़कियों की आँखें न थीं। वे तो सूअरों की आँखें थीं—बड़े सुअर, छोटे सुअर। सुअरियाँ अपने बच्चों को चाट रही थीं। ममता की कल्पना में माँ का चेहरा घूम गया। उस ने डरकर आँखें बन्द कर लीं। उस ने रसाल काका को पुकारना चाहा। इतने में किसी सुअरी के बच्चे ने आकर अपनी थूथनी ममता के मुँह पर रख दी।

बड़ा सुअर ममता को चाट रहा था।

चौबीस



एकाएक काका का माथा ठनका—कहीं मल्ला को कुछ हो न गया हो।

वे बड़ी व्याकुलता से झोंपड़ी में टहल रहे थे; खिड़की से झाँक कर देखने लगते। फिर वे झोंपड़ी से निकलकर सड़क पर आ गये। सड़क पर खड़े खड़े काका की कल्पना में चाँदकुठी का एक दृश्य घूम गया। दलदल वाले एक स्थान पर जंगली हाथी का एक बच्चा फँस गया था, उसे बड़ी कठिनाई से बाहर निकाला गया था। वह बच्चा कितना मासूम था। उसे मैं ने बड़े प्यार से पाला था और नार्मन साहब के बच्चों की भेंट कर दिया था।

काका तो बाल ब्रह्मचारी थे। विवाह किये बिना भी मनुष्य जीवित रह सकता है, यह था काका का सिद्धान्त। इस सिद्धान्त पर चलने का निर्णय करने के पश्चात् एक बार भी तो काका के पग डगमगाये नहीं थे, पर काका को बच्चों से सदा प्यार रहा। चाँदकुठी में नार्मन साहब के बच्चे मिल गये थे, तो यहाँ दिसाँगमुख आकर मल्ला मिल गया। आज काका को इतना अवकाश न था कि झोंपड़ी के पीछे जाकर राजहंसों के जोड़े का कुशल-समाचार पूछें। वे पोखरी में तैर रहे होंगे। फिर काका को राजहंसिनी के अण्डे सेने का ध्यान आ गया। देखें राजहंसिनी के अण्डों से कितने बच्चे निकलते हैं। सात आठ बच्चे तो अधिक नहीं होंगे कम रहे, तो पोखरी की शोभा नहीं बढ़ेगी। पोखरी में तैरते हुए राजहंस कितने अच्छे लगते

हैं। एक जोड़े से तो बात नहीं बनती।

बाबा को अपनी भूमि से भी कुछ आय हो जाती थी। पेन्शन अलग आती थी। जिस दिन बाबा को पेन्शन लेने डाक-घर जाना होता उस दिन बाबा धुले हुए वस्त्र पहनते। जब से बाबा दिसौंगमुख में आ गये थे, उन्हें प्रति मास पेन्शन निश्चित तिथि को मिल रही थी। इस नियमितता के लिए बाबा मन-ही-मन फिरंगी की प्रशंसा करते-करते नीलमणि के घर आ पहुँचे।

सोनपाही ने बताया, "मक्खना तो यहीं ठहर गया था कि वह सीधा बाबा के पास जा रहा है।"

बाबा ने सोचा कि कहीं वह नाव-घाट की ओर न चला गया हो। अधिक सोचने के लिए समय न था। वे झट सड़क से नीचे उतरकर नाव-घाट की ओर हो लिये।

बुनतारा गाँव की अन्य लड़कियों के साथ पानी का कलसा उठाये आ रही थी। पूछने पर पता चला कि आवली की झोंपड़ी के पास उन्होंने दूर से एक लड़का देखा था जो मक्खना प्रतीत हो रहा था।

पानी घाट और नाव-घाट पर कहीं भी मक्खना का पता न चला तो बाबा बहुत घबराये। मक्खना को तो उन्होंने अपनी गोद में खिलाया था; आज से कई बरस पूर्व, जब वे पौन्जुली से छुट्टी लेकर दिसौंगमुख आये थे। आज से आठ-नौ महीने पहले जब वे पौन्जुली से पेन्शन पाकर वापस दिसौंगमुख आकर नीलमणि के पिछवाड़े वाली झोंपड़ी में रहने लगा, तो मक्खना से मैत्री हुई। तब मक्खना ने मुझे हाथी काका का नाम दिया। यह नाम तो नामघर साहब के बच्चों ने भी नहीं दिया था। आज मक्खना कहाँ रह गया? क्या आज उसकी प्यारी-प्यारी बातें सुनने को नहीं मिलेंगी?

सहसा बाबा को ध्यान आया कि हो-न-हो मक्खना ठाकुर-पूजा देखने न चला गया हो। वहाँ जाने से तो उसे सब ने रोका था। वह अच्छा लड़का है, वह वहाँ नहीं गया होगा। वह कहाँ चला गया? अब तो ठाकुर

पूजा समाप्त होने का समय हो रहा है। वह वहाँ नहीं गया होगा। वह तो आज्ञाकारी लड़का है।

ठाकुर-पूजा समाप्त होने का समय समीप न होता, तो काका भूलकर भी मीरी बस्ती में जाने की बात न सोचता। अब तो कोई भय न था।

काका मीरी बस्ती की ओर चला जा रहा था। कई प्रकार की आशंकाएँ काका के मन में उठ रही थीं—कहीं मल्ला रूपसिंह की दुकान पर न चला गया हो। पर अब तो मीरी बस्ती समीप है। पहले वहीं पता चलाया जाय। वह वहाँ चला भी गया होगा, तो शायद उसके साथ लोगों ने दयापूर्ण व्यवहार किया हो। उसके हाथ-पैर बाँधकर उसे मेजुम में तो नहीं डाला गया होगा। दयापूर्ण व्यवहार करने से क्या इन्द्र देवता किसी का हाथ रोक सकते हैं।

चलते चलते काका ने सोचा कि बच्चा तो बच्चा ही है। दस साल की आयु भी कोई आयु होती है। काका मन-ही-मन दिन गिनने लगा। तीन मास बाद मल्ला ग्यारह वर्ष का हो जायगा।

पच्चीस



भीली बस्ती के एक सुनसान कोने में फूल से भी कोमल मन्ना पड़ा था जहाँ डाकन भीली उसके हाथ-पैर बाँधकर उसे डाल गया था।

मन्ना के लिए यह स्थान बहुत भयानक था। उसके छोटे-से मस्तिष्क में बड़ी-बड़ी आशंकाएँ चक्कर काटती रहीं।

बाप ने शायद जानकर डाकन मेरे अपराध का न जाने क्या दण्ड देगा। यह दण्ड क्या इस दण्ड से भी कम होगा!

अन्धकार घना हो गया था। उसके चारों ओर सूअर अपनी थूथनियाँ डालकर मैली-कुचैली मिट्टी खोद रहे थे।

बड़े सूअर, छोटे सूअर, सूअरियाँ और उनके बच्चे। एक सूअरी की बड़ी-बड़ी आँखें छोटी होने लगीं।

वह सूअरी यों देख रही थी, जैसे कभी-कभी मन्ना की माँ देखा करती थी। कभी ये आँखें फैलने लगतीं, कभी सिकुड़ने लगतीं। मन्ना माँ को आवाज देना चाहता था।

पर यहाँ माँ कहाँ थी!

जब सूअर ऊँची आवाज निकालने लगते, तो मन्ना भी इन आवाजों के संगम में अपनी नन्ही-सी आवाज मिला देता।

फिर एक झाड़ी से काला नाग बाहर निकला।

अन्धकार में काला नाग एक रेखा प्रतीत हो रहा था। मन्ना ने

उस हिलती-डुलती रेखा को देखा। साँपों के सम्बन्ध में सुनी हुई अनेक कहानियाँ एक साथ उसके मस्तिष्क में घूम गईं, जैसे दुनिया भर के साँपों का विष इस काले नाग के विष के सामने हेच हो जैसे साक्षात् मृत्यु ही उसकी तरफ बढ़ी आ रही हो जैसे उसके जीवन की बाती अब कुछ ही क्षणों में बुझ जायगी; फिर यह बाती कभी नहीं जलेगी, चाहे कोई इस दीपक में मनों तेल क्यों न डाल दे!

छब्बीस



रतनलाल बाबा के जीवन में इतना बड़ा धक्का पहले कभी नहीं लगा था।

आज रात घोर की वर्षा हुई, जैसे यह बरसात न हो, अम्बर का अभिशाप हो जैसे इन्द्र देवता कोप में आकर दिशाँगकुल को समाप्त कर देना चाहते हों। तूफान बहुत भयानक था। शालीशीगा के बहुत-से वृक्ष उखड़कर गिर गये।

मनसा की मृत्यु का आघात रतनलाल के लिए असह्य था। अमाचार ने बाबा के चरणों में गिरकर क्षमा-याचना की, 'बाबा यह तो कोई न जानता था कि काला नाग बाँबी से निकलकर एक फूल से भी कोमल बालक को डस जायगा।''

आज रात बाबा की आँख नहीं लग सकती थी। नीलमणि और मञ्जुल ने सन्तुलन बनाये रखा; लोकपाड़ी झोंपड़ी की दीवार से सिर पटक-पटक कर रोती रही। तूफान में ही मनसा का शव नीलमणि के घर पर लाया गया, जैसे मनसा के होंठों पर वह बात उभरकर रह गई हो, जो वह मृत्यु से पूर्व कहना चाहता था।

ऐसे इन्द्र देवता का जन-धन नष्ट करने का यह अन्तिम निश्चय हो। बार बार बिजली कड़कती और बार बार हवा प्रत्येक वस्तु को उड़ा ले जाना चाहती।

रतनलाल हतप्रभ-सा बैठा था। मञ्जुल बार-बार उसे बुलाने का यत्न

करता। क्या मजाल रसलाल ने भूलकर भी जवान हिलाई हो।

एक ओर अध्यापक भगत अब्दुल कादिर के साथ बैठे इस बात पर ज़ोर दे रहे थे, "आदमी का कोई भरोसा नहीं। मृत्यु आती है तो खबर नहीं आती!"

धनसिंह ने पुलिस दारोगा के लहजे में कहा, "मलना को दमूर-पूजा में जाने के लिए किस ने कहा था?"

"कहना किस ने था?" रत्न नापित ने बात को किसी ठिकाने लगाने के विचार से कहा, "प्रश्न बालक को दोष देने का नहीं है। प्रश्न तो यह है कि दमूर-पूजा को मीरी लोग अपनी ही पूजा क्यों समझ बैठे हैं। इन्द्र देवता तो सब के हैं।'

ज़ोर से बिजली कड़की, जैसे इन्द्र देवता भी रत्न नापित की हाँ-में-हाँ मिला रहे हों। अध्यापक भगत बोले, "किसी को दोष देना व्यर्थ है। जीवन क्षणभंगुर है। आत्मा तो बार-बार चोला बदलती है। सदा के लिए तो यहाँ कोई बैठा नहीं रह सकता।"

"बड़े बड़े बादशाह भी न रहे।" अब्दुल कादिर ने विश्वासपूर्वक कहा, "वे भी कब्रों में जा सोये। कब्र का भी माँ का दर्जा माना गया है। माटी का पुतला है इन्सान! माटी से पैदा हुआ माटी में जा सोया। इस में तो कोई बोल ही नहीं सकता।"

कामधर बोला, 'सब दोष हमारा है। न हम मलना के हाथ-पैर बाँधकर घेगुम में डालते, न वर्षा में निकलकर भागा जाता।"

रसलाल का ध्यान इन बातों की ओर न था। उसकी कल्पना में जैसे मलना की आवाज़ गूँज रही हो—मैं तो अब भी साँस ले रहा हूँ, बाबा! लो अब शुरू कर दो कोई हाथियों की कहानी। मैं सब सुन सकता हूँ। मुझे किसी नाग ने नहीं डसा। मैं तो बिलकुल ठीक हूँ।

सोमपाही का विलाप शव के चारों ओर बैठे लोगों के दिल हिला रहा था। तूफ़ान का वेग भी पहले से बढ़ गया था।

रसलाल सोच रहा था—'यह कितना अमंगल है। मलना हमें छोड़कर

चला गया। मक्खना की मुस्कान अब कभी देखने को न मिलेगी। प्रतिदिन सूर्य उदय होगा, प्रतिदिन सूर्य अस्त होगा। मक्खना कहीं न होगा। धतूर-पूजा तो आती ही रहेगी? यह तो वर्ष में दो बार आती है। मक्खना अब कभी यह पूजा देखने नहीं आयेगा। वह कभी अपने काका से मिलने नहीं आयेगा। आलमीलीगा को सन्द सन के लिए उस से वंचित हो गए।" पर अगले ही क्षण काका को लगा कि मक्खना की आवाज आ रही है—काका, काका, ओ हाथी काका! मैं तो सब सुन रहा हूँ। जो कुछ भी लोग कह रहे हैं। मैं तो सब सुन रहा हूँ!

अध्यापक भगत ने समस्त ज्ञान बघारने के लिए जैसे आज की यह बात ही सुन ली हो। उन्होंने अपनी परशुराम कुण्ड की यात्रा की कथा सुनाने के पश्चात् बताया कि दिहाँग नदी को अबोर लोग अपनी भाषा में सियाँग कहते हैं। "सियाँग का अर्थ है डूबा हुआ।" भगत जी कहते चले गये, "सदिया में एक अबोर गाँव-बूढ़ा ने मुझे वह कहानी सुनाई थी जिस में सियाँग नदी के किनारे दो वन-जातियों के सरदारों के बीच युद्ध का वर्णन किया गया था। एक सरदार नदी में बह गया फिर उसका कुछ पता न चला। तब से इस नदी को सियाँग कहने लगे। सियाँग हो चाहे दिहाँग, बात तो एक ही है। जैसे वह सरदार नदी में बह गया था, वैसे ही समझो हमारा मक्खना भी मृत्यु-नदी में बह गया। मृत्यु तो कोई बहाना चाहती है। कम की लो, चाहे अधिक की लो। यह संसार तो बड़ा कठिन है। जीवन बड़ा लम्बा है। मैं तो कहूँगा कि जो पहले चला गया, वह पहले जाकर भगवान् से मिल गया। भगवान् से तो जितना शीघ्र मिला जाय, उतना ही अच्छा है।"

नीलमणि चुप था; इस शब्द-व्यापार में स्वर मिला सके, इतनी क्षमता उस में न थी।

राम ने अब्दुल कादिर से वह कहानी छेड़ दी जिस में एक माँ अपने लड़के को समुद्र से मछलियाँ पकड़ लाने को भेजती है और लड़का तूफान में डूब जाता है।

धनसिंह बोला, 'ऐसी ही कहानी हमारे बड़े-बूढ़े नपाल में भी सुनाते हैं। मृत्यु की कथाएँ तो असंख्य हैं। मृत्यु का पथ किस ने रोका है? इसी पथ से बड़े-बड़े साधु-महात्मा गये, और इसी पथ से बड़े-बड़े चोर और डाकू भी। मृत्यु का पथ तो महापथ है!''

पशुपाल अब भी कुछ न बोला, यद्यपि वह कहना चाहता था—'तुम लोगों को क्या हो गया? क्या एक बालक की मृत्यु से भी तुम्हारे कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी? क्या तुम्हारी धार्मिक विचारधारा का यही आशय है कि एक बालक की मृत्यु पर दो आँसू भी न बहाये जायें? क्या सिंगिसुम्म के लोग इस मृत्यु से कुछ भी शिक्षा नहीं ले सकते? '

सत्ताईस



ललना की मृत्यु ने देवकान्त की माँ को फिर से निढाल कर दिया था। वह तो पहले ही दो मास से बीमार थी। इधर उसका स्वास्थ्य कुछ सुधर रहा था। वह पचास वर्ष पार कर चुकी थी पचास वर्ष अभी और जीने का सङ्कल्प रखती थी। जब से देवकान्त का पिता लम्बी बीमारी में एड़ियाँ रगड़-रगड़ कर चल बसा था माँ ने अपने हाथों के परिश्रम से ही घर चलाया था। शिवप्रसाद के 'अस्सी-मूगा सहकारी संस्थान' के लिए सर्वोत्तम रेशम के थान और चादरें देवकान्त की माँ ही अपने करघे पर तैयार करती थी। इसलिए जब से माँ बीमार पड़ गई थी, शिवप्रसाद हर तीसरे-चौथे रोज माँ का समाचार पूछने आता था। दवा-दारू का प्रबन्ध शिवप्रसाद ने अपनी ओर से कर दिया था, और सदा ही पास मौसी की बेटी शोभा थी जो अपनी माँ से भी अधिक देवकान्त की माँ का ध्यान रखती थी। दो मास से शोभा ही तो माँ के लिए दाल-भात पकाती रही थी।

बिस्तर पर पड़े-पड़े माँ ने चौंककर पूछा, "बेटा भौरा तेरी कहानी कहाँ तक पहुँची?"

भौरा ने लालटेन के प्रकाश में लिखते लिखते माँ की ओर नजर उठा कर कहा

"मेरी कहानी एक दिलचस्प मोड़ पर पहुँच गई।"

"यह कौनसा मोड़ है?"

नीरद ने धीरे से उत्तर दिया :

"मेरी कहानी का नायक रात के अन्धकार में, भयानक तूफ़ान में अपनी माँ से मिलने आता है। वह जानता है कि पुलिस उसकी ताक में है, पर जब माँ की याद आती है, तो वह संसार की विपत्तियों को भुलाकर भी माँ से मिलने आता है।"

माँ को बड़े वेग से खाँसी उठी, जैसे अम्बर पर बड़े वेग से घटा उमड़ती और बिजली कड़कती है। वह कुछ कहना चाहती थी, पर सात दिन की निरन्तर वर्षा ने इतनी ठण्ड पैदा कर दी थी कि उसके बोल बार बार उस के होठों तक ही रह जाते।

बड़ी कठिनाई से माँ के मुख से यह बोल निकला :

"मेरा—देवानन्द तो—मुझ से—मिलने नहीं आता!"

नीरद चुप रहा।

"कवि-कल्पना है!" माँ ने अपनी बात जारी रखी। वह कोई लम्बी कहानी छेड़ देना चाहती थी—नीरद की कहानी से भी लम्बी, पर खाँसी ने बात न बनने दी।

नीरद को कलकत्ता से सितारामपुर पहुँचे आज दसवाँ दिन था। जिस दिन वह यहाँ पहुँचा था, उस से तीन दिन पहले ही काले नाग ने मलना को डस लिया था। माँ कई बार मलना की चर्चा कर चुकी थी। मलना की मृत्यु को बलिदान की कोटि में रखने को तो माँ तैयार न थी पर उसका यह विचार अवश्य था कि यदि मीरी पंचायत मिलकर यह निर्णय नहीं करती कि आगे से छूत-छूआ देखने पर किसी प्रकार की रोक न रहे, तो यह बड़ी लज्जा की बात होगी।

माँ का विश्वास था कि वह ज्वर और खाँसी से एड़ियाँ रगड़-रगड़ कर कभी नहीं मरेगी। देवानन्द के पिता को तो ऐसी ही मृत्यु आई थी। माँ समझती थी कि वह ठीक बन गए। अब वह बहुत शीघ्र अच्छी हो जायगी। वह यह तो बिलकुल नहीं चाहती थी कि अपनी जान जोखों में डालकर देवानन्द उस से मिलने आये। [illegible] दारोगा देवानन्द की ताक में

है, यह बात उस की माँ से छिपी न थी। फिर भी उसे यह भय अवश्य था कि कहीं मृत्यु चुपके-से आकर ही उस पर न झपट पड़े, जैसे बिल्ली कबूतर की गर्दन नोच लेती है और कहीं ऐसा न हो कि देवकान्त को अन्तिम बार भी मरकर देखे बिना ही उसे संसार से विदा होना पड़े। यही सोच कर वह बोली

"देवकान्त कब आयेगा?"

नीरद ने लालटेन उठाकर माँ के चेहरे पर प्रकाश डाला और गम्भीर होकर कहा "आराम करो, माँ! चिन्ता छोड़ो, मैं जो तुम्हारे पास हूँ!"

रेशम का कार्य करते-करते रेशम के तार माँ की आत्मा से छू गए थे। दो मास से माँ बीमार थी फिर भी उसकी मुस्कान में मूगा के धागे की-सी चमक थी। माँ की आवाज में कातने का-सा गुनगुनापन था। माँ के जीवन में रेशम की-सी रसता आ गई थी। जिस दिन नीरद यहाँ पहुँचा था, माँ ने मुस्कराकर कहा था, 'कुछ भी हो, रेशम के कीड़े रेशम के तार कातना नहीं छोड़ सकते। रेशम के तार कातने का बेचारों को कितना बढ़िया मोल मिलता है!' इसके उत्तर में नीरद ने गम्भीर होकर कहा था, "उबलते हुए पानी में रेशम के कीड़ों के तैयार किये हुए 'पोलू' को डाल कर पोलू के भीतर छिपकर बैठे हुए कीड़े को मृत्यु के दर्शन कराये जाते हैं।"

विलासप्रसाद की प्रशंसा करते तो माँ थकती न थी। माँ के इस विचार से विलासप्रसाद सोलह आने सहमत था कि आदमी की मुक्ति काम करते करते मर जाने में है, जैसे रेशम का कीड़ा रेशम कातते-कातते मर जाता है। माँ ने कभी बातों में बताया था कि रेशम का काम करने वालों को अपने लम्बे अनुभव से यह ज्ञान हो जाता है कि वे ठीक अवसर पर पोलू को गरम पानी में डाल दें। इस काम में देर की जाए तो रेशम का कीड़ा पोलू को छीलता हुआ बाहर निकल आता है। पोलू में सूराख होने से रेशम अच्छा नहीं निकलता, लम्बे तार नहीं निकलते। वैसे माँ ने इस बात पर भी प्रकाश डाला था कि जैसे बीज के लिए काम रखते हैं, वैसे ही कुछ तैयार

बचाने के लिए पोलू सँभाल कर रख लिये जाते हैं। माँ ने कहा था, "बेटा नीरद, यह चक्कर तो चलता ही रहता है—पोलू से निकलकर रेशम का कीड़ा अण्डे देता है, अण्डे से कीड़ा और कीड़े से पोलू। पोलू से फिर कीड़ा, फिर अण्डे। यह तो अपना कर्मफल है, बेटा! जन्म-जन्मान्तर का चक्कर तो चलता ही रहता है।"

नीरद को स्मरण था कि किस प्रकार एक बात कहने में माँ को बीस बार खाँसी उठी थी। अपनी कहानी में वह माँ का चरित्र पूरी तरह उभारना चाहता था। उसका यह प्रयत्न था कि वह उसे भी रेशम के कीड़े के रूप में चित्रित कर सके। उसके सम्मुख यह समस्या थी—क्या रेशम के कीड़े की मृत्यु को बलिदान नहीं कहा जा सकता क्योंकि पोलू को उबलते पानी में डालकर कीड़े को उसके भीतर ही मृत्यु-शय्या पर सुला दिया जाता है? उसकी कहानी का नायक तो एक इन्सान था, जो विदेशी सरकार के अत्याचार को समाप्त कर देना चाहता था। वह लोगों को इस अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए तैयार कर रहा था। वह जानता था कि उसके नायक का मार्ग तो उसे वस्तुतः एक दिन फाँसी तक ले जायगा। क्या माँ यह नहीं जानती? कहानी के नायक के बलिदान से रेशम के कीड़े की मृत्यु की तुलना तो सचमुच दूर जा पड़ती थी। माँ की खाँसी फिर से छिड़ जाने का भय न होता, तो नीरद अवश्य माँ से इस सम्बन्ध में बात करता। आखिर वह तीस-पैंतीस वर्ष से रेशम का काम करती आ रही थी; और जब से शिवाप्रसाद का 'चपटी-मूगा-बहरमी संस्थान' का धन्धा आरम्भ हुआ था, उसे इस काम से पहले से कहीं अधिक लगाव पैदा हो गया था। शिवाप्रसाद को माँ परोपकार का साकार रूप समझती थी। माँ ने नीरद को बता दिया था कि आरम्भ में देवकान्त ने शिवाप्रसाद से ही चार वर्ष शिक्षा पाई थी। उन दिनों मिशनरियों का स्कूल सरकार ने अपने नियन्त्रण में नहीं लिया था। यह स्कूल गाँव-भर ने लोगों से चन्दा जमा करके चलाया था। शिवाप्रसाद पर यह अपराध लगाया गया कि वह बागी की प्रीत बन गया। माँ ने खाँसी से बे-हाल होते हुए कहा सँभल

कर कहा था, "शिवप्रसाद तो धर्म-कर्म वाला आदमी है, मेरा गौरव। वह पापी होता तो उस का रेशम का धन्धा इतना कैसे फलता-फूलता? मुझ पर तो वह बड़ा दयालु है, कोई भेद-भाव नहीं रखता। जितनी पेशगी माँग लूँ, मिल जाती है। अब तो मास से वही दवा-दारू भेजता है, वही घर का खर्च चलाता है।" यह कहते-कहते माँ को फिर खाँसी छिड़ गई थी और उसने हाँफकर कहा था, "शिवप्रसाद ने तो बहुतों की डूबती नाव पार लगाई है।'

यहाँ पहुँचते ही सब से पहले गौरव ने धर्मसिंह की दुकान से देवकान्त का पता पूछा था। धर्मसिंह ने देवकान्त के फरार हो जाने की कहानी सुनाने के पश्चात् अनुज को बुलवा भेजा था। अनुज के बार-बार आग्रह करने के कारण गौरव ने यही निश्चय किया था कि वह देवकान्त के घर पर ही ठहरेगा। अनुज ही उसे यहाँ पहुँचा गया था।

मजदूर बस्ती में देवकान्त का घर बहुत अच्छी जगह पर स्थित था। सामने सड़क थी, जिसका सिरा त्लौंग नदी के किनारे तक चला गया था। कच्चा-पक्का बागीचा भी था यद्यपि इसकी देख-भाल नहीं की जा रही थी।

गौरव का विश्वास था कि अनुज अच्छी तरह जानता है कि इस समय देवकान्त कहाँ है। उस ने अनुज से कहा था "मेरे लिए नहीं, देवकान्त को तो अपनी माँ से मिलने के लिए ही अपनी जान हथेली पर रखकर आना चाहिए क्योंकि माँ की खाँसी बार बार जोर पकड़ लेती है और वृद्धावस्था में आदमी का भरोसा और भी कम हो जाता है।"

गौरव को देवकान्त की प्रतीक्षा थी। उसका विचार था कि यह हो नहीं सकता कि अनुज ने उसे सूचना पहुँचाई हो और वह मिलने न आये। भले ही वह छुप के मिलने आये, पर माँ से मैं यही कहूँगा कि वह रमो से मिलने आया है।

बार-बार बिजली चमकती थी और बादल गरजने से जैसे कहीं पास ही रणभूमि के नगारे बज रहे हों। माँ ने आज सबेरे ठीक ही तो कहा था "इन्द्र देवता खुश हो गये। जिन लोगों ने मन्त्रों के द्वारा मिरे उनकी

झोंपड़ियाँ तूफ़ान में बह जायेंगी।"

नीरद के मतानुसार यह केवल भ्रम विश्वास था कि प्रकृति मनुष्य से प्रतिशोध चाहती है। तूफ़ान का वेग बढ़ गया तो धर्मी और पापी सभी बह जायेंगे। तूफ़ान में धर्मी और पापी का भेद नहीं रह सकता। यह बात वह माँ से तो नहीं कहना चाहता था। कई बार नीरद सोचता कि उस ने असम आने के लिए यह मौसम क्यों चुना। फिर वह अपने निश्चय और कार्यक्रम पर दृढ़ता का प्रमाण देते हुए सोचता कि उस ने इस मौसम में यहाँ आकर कोई भूल नहीं की। ब्रह्मपुत्र के तेवर देखने के लिए तो यही मौसम ठीक है। यही बात उस ने कल लिली से भी कही थी, जब वह उसके निमन्त्रण पर स्टीमर में डिनर के लिए गया था। यह डिनर बहुत मँहगा पड़ा था। छतरी के बावजूद वह बिल्कुल भीगता हुआ वापस बलमा पहुँचा था। उसका छाता बुरी तरह मुड़कर पीछे की ओर दोहरा हो गया था।

उसे याद आया कि लिली किस प्रकार देर तक उस चरवाहे की प्रशंसा करती रही थी, जिसे कलाकार ने उस चित्र में प्रस्तुत किया था जो उसके कमरे की दीवार पर लगा हुआ था। लिली के डैडी तो बहुत टीप-टाप रखने के पक्षपाती हैं। वे अँग्रेज ठहरे। इस जाति के व्यक्ति तो इस समय हिन्दुस्तान में राज्य करते हैं। उसकी मम्मी अवश्य नम्रता की मूर्ति प्रतीत होती है—शान्ति का साकार रूप। लिली ने अपना प्रिय स्वभाव अपनी मम्मी से पाया है। उसकी अन्तरात्मा पर आइरन की छाप है। कलकत्ता में भी तो हम उस से मिल कर चकित रह जाते थे। अँग्रेज लड़की होकर हिन्दुस्तान से इतनी सहानुभूति रखती है। इतना सेवा-भाव तो किसी हिन्दुस्तानी लड़की में भी बड़ी मुश्किल से होगा।

कलकत्ता में लिली से नीरद की जब भेंट हुई थी तो लिली ने सदा उसे डिसाँगमुख आने का निमन्त्रण दिया था। उसका विचार था कि नीरद को स्टीमर में ही ठहरना चाहिए। अपने डैडी से कहकर वह उसके लिए अलग कमरे का प्रबन्ध कर सकती थी। वह जानती थी कि नीरद ब्रह्मपुत्र

पर एक पुस्तक लिख रहा है। वह इस पुस्तक के कई अध्याय लिली को पढ़कर सुना चुका था। उसकी लेखन शैली लिली को पसन्द थी। साथ ही नीरद का यह विचार कि नदी की जीवन-गाथा भी उसी प्रकार लिखी जा सकती है जैसे किसी महापुरुष की जीवनी, लिली को बहुत प्रिय था। लिली को यदि नीरद की रचना में और चीज पसन्द थी तो यही कि वह जिस भाषा में लिखता है उसके एक-एक शब्द को जीती-जागती वस्तु समझकर उठाता है और अपने ठिकाने पर रखकर एक नया रंग, एक नया अनुराग जगा देता है भाषा का यह प्रयोग नया अनुभव चाहता था। वह घटना-स्थल पर पहुँचकर, परिस्थिति को समझकर और बात की गहराई तक जाकर मोती की तलाश में गोता लगाने वाले के अन्दाज में लिखता है। इसलिए वह कहती थी कि ब्रह्मपुत्र तो स्टीमर की खिड़की से ही ठीक-ठीक नजर आ सकता है। इकबाल का मकान तो असम में दिसाँग नदी के किनारे था। वहाँ से इस तूफान के मौसम में ब्रह्मपुत्र के किनारे पहुँचना तो बहुत कठिन था। नाव में बैठकर दिसाँग नदी से ब्रह्मपुत्र में आ तो सकते थे, पर यह एक भारी झंझट था। अब नीरद था कि वह तो झंझट से भागने को अवस्था समझता था; इस लिए उस ने लिली के जिज्ञासा का जवाब देते हुए अन्त में यही कहा था, "अभी मैं इकबाल की माँ के पास ही ठहरूँगा। कोई कष्ट होगा तो स्टीमर में आ जाऊँगा।" इसके उत्तर में लिली ने बड़ी विनम्रता से कहा था, "यहाँ भी हम बहुत अधिक आराम तो नहीं दे सकेंगे, पर अधिक-से अधिक आराम देने की चेष्टा करेंगे।" लिली के डैडी ने हँसकर कहा था, "लिखना भी बहुत बड़ा काम है। जब टैगोर ने 'गीतांजलि' लिखी तो उन्हें कभी भूलकर भी ध्यान न आया होगा कि इस पर नोबल प्राइज मिलेगा।" लिली की मम्मी ने हँसकर कहा था, "तुम्हारा मतलब है नीरद के 'ब्रह्मपुत्र' पर भी उस नोबल प्राइज मिल सकता है।" लिली के डैडी ने "क्यों नहीं, क्यों नहीं" कहकर लिखने के काम में अपना विश्वास जताया था। उनके सामने लालटेन जल रही थी। बाहर बादल गरज रहे थे। मूसलाधार वर्षा

हो रही थी। एक-दो बार माँ की आँख अवश्य खुली और उस ने आँख खोलकर बेहाल हाँफते हुए कहा, "नीरद बेटा, अब सो जाओ।" पर नीरद की आँखों में आज नींद न थी।

माँ फिर सो गई। जब भी बिजली चमकती, छत और दीवारों के बीच के सूराखों से आती हुई बिजली की कौंध में माँ का मुर्झाया हुआ चेहरा यों प्रतीत होता जैसे किसी मूर्तिकार ने उसे बड़े परिश्रम से तराशा हो।

अचानक द्वार पर दस्तक हुई।

नीरद ने उठकर द्वार खोला।

वर्षा में भीगता हुआ एक आदमी भीतर आया। उस ने अपने-आप को अपनी ही चादर में लपेट रखा था। पानी से भीगी हुई चादर को उतारते हुए उस ने नीरद से हाथ मिलाया। "ओहो देवकान्त!" नीरद उसे पहचानते हुए उसके गले लगकर मिला। बिजली की कौंध में देवकान्त ने सोती हुई माँ का चेहरा देखा। वह बड़े प्यार से उसके चेहरे पर झुक गया; माँ के चरणों की ओर खड़े होकर माँ को प्रणाम किया।

देवकान्त ने हाथ के संकेत से नीरद को दूसरे कमरे में चलने को कहा।

नीरद लालटेन उठाकर देवकान्त के पीछे-पीछे चला गया। यह कमरा कई दिन से साफ नहीं किया गया था।

"पहले वस्त्र बदल लो।" नीरद ने लालटेन की बत्ती उकसाते हुए कहा।

देवकान्त ने वस्त्र बदले। गीले वस्त्र एक ओर डाल दिये।

"माँ की दशा कैसी है?"

"ठीक नहीं है। तुम्हारी बाट जोहते-जोहते उसकी आँख लग गई।"

"कलकत्ता से कब चले थे?

"कोई दो सप्ताह हो रहे हैं।"

"कलुष से भेंट हुई?"

"हुई।"

"लिली से भी ? उस से मिले बिना कैसे रह सके होगे ?"

"लिली तो कह रही थी कि स्टीमर में उसके डैडी अमर दे सकते हैं।"

"आज क्या लिख रहे थे ?"

"एक छोटी-सी चीज।"

"ब्रह्मपुत्र का और नया अध्याय ?"

"नहीं।"

"ऊंह !" देवकान्त ने विचित्र-सा मुँह बनाकर कहा।

नीरद समझ गया कि देवकान्त क्या कहना चाहता है। वह जानता था कि देवकान्त के सामने तो अपने आन्दोलन के काम के अतिरिक्त और वस्तु ठहरती ही नहीं।

अपने खास अन्दाज में सिर घुमाकर देवकान्त ने जैसे नीरद से कुछ कह दिया। नीरद समझ गया कि देवकान्त अपनी हजार बार दोहराई हुई बात आज फिर कह रहा है—"असल काम से भागकर तुम कब तक व्यर्थ की रचना में लगे रहोगे !"

"लिली के डैडी तो कह रहे थे कि मेरी पुस्तक पर नोबल प्राइज भी मिल सकता है।" नीरद मुस्कराया।

"और तुम ने विश्वास कर लिया !"

"तुम मुझे क्षमा कर देना, देवकान्त ! अविश्वास था भी तो मैं प्रकट नहीं करता। इसके लिए मैं ने अपने जीवन के सब से अच्छे वर्ष दिए हैं। वहीं ब्रह्मपुत्र बंगाल में पद्मा से मिलता है जहाँ मेरा जन्म हुआ, वहीं तिब्बत में ब्रह्मपुत्र का उद्गम-स्थान है उस स्थान की मैं ने यात्रा कर ली है। मानसरोवर से चलकर कई सौ मील तक पैदल और बाद में नाव पर ब्रह्मपुत्र की यात्रा की थी। तुम तो जानते हो कि तिब्बत में मेरे पिता व्यापारी हैं तुम यह भी जानते हो कि वे किस प्रकार वहाँ पहुंचे।"

"वह कहानी मुझे पसन्द है। तुम ने ही तो सुनाई थी वह कहानी कि कैसे एक बार कलकत्ता में एक काबुलीवाला ने एक गली में न जाने किस प्रकार अन्धेरे में आकर अपनी बन्दूक से एक बालक को मार डाला

था और सब लोग अपने-अपने घर में जा छिपे थे।"

"बिलकुल ऐसे ही हुआ था। फिर एक बालक बाहर निकला।"

"हाँ, हाँ! तुम्हारी कहानी का वह बालक बहुत वीर था। उस ने गली के दूसरे बालकों को जमा किया। वे बालक उस कम्बलवाला के सिर हो गये। कम्बलवाला भाग निकला और वह बालकों का अगुवा बालक आगे चलकर बिपिन घोष कहलाया। बिपिन घोष के घर में एक बालक ने जन्म लिया, जो नीरद घोष कहलाया।"

"क्यों मुझे बना रहे हो?"

"बना नहीं रहा, समझ रहा हूँ। मेरी समझ में यह बात आज तक नहीं आई नीरद, कि यदि तुम सचमुच अपने पिता के पुत्र हो तो देश की पराधीनता के विरुद्ध तुम्हारे अन्दर घोर भावना क्यों नहीं जागी। तुम ने ही तो बताया था कि जब श्रीयुत बिपिन घोष ने देखा कि कलकत्ता के कुछ होटल ऐसे भी हैं जहाँ अँग्रेज अपने कुत्तों के साथ जा सकते हैं, पर जहाँ हिन्दुस्तानियों का प्रवेश निषिद्ध है, तो उन्हों ने यह निर्णय किया कि वह इस अपमान को सहते हुए इस देश में नहीं रहेंगे। वे विलायत चले गये और कलकत्ता में अपने मित्रों से यह कह गये कि अब तो वे उसी समय लौटेंगे जब देश स्वाधीन हो जायगा। मैं पूछता हूँ कि इस भावना का हजारवाँ अंश भी तुम्हारे अन्दर क्यों न आया?"

"मै ने छिपने का रास्ता अपनाया।" नीरद ने देवकान्त के गले में बाँहें डालकर कहा, "तुम्हारा रास्ता अपनी जगह महान् है। उस से तो मै ने कभी इन्कार नहीं किया।"

"तो फिर इन्कार किस बात से किया है?" देवकान्त ने हँसकर कहा, "तुम फाँसी पर चढ़ने से डरते हो! तुम्हें अपना जीवन कुछ अधिक प्रिय है!"

ज़ोर से बादल गरजा और बिजली यों कौंधी जैसे देवकान्त की हामी भर रही हो।

"देवकान्त, आज मैं तुम्हें वह बात बताना चाहता हूँ, जो मैंने आज

तक किसी को नहीं बताई।" मीरद ने गम्भीर होकर कहना आरम्भ किया, "तुम कहोगे यह गप है, पर यह एक सचाई है।"

"मैं अवश्य सुनूँगा।"

"ग्वालन्दो और पाँडुपुर के प्रदेश में स्त्रियों का विश्वास है कि जल-देवता का व्रत रखने से सदा शुभ फल मिलता है। बहुत दिनों तक मेरी माँ के सन्तान न हुई। उस ने जल-देवता का व्रत रखकर भी देख लिया पर उस के कोई सन्तान न हुई। पाँच वर्ष तक निरन्तर माँ यह व्रत रखती रही और—"

"और फिर व्रत का शुभ फल मिला। आ गये हमारे मीरद जी महाराज!"

"यह कहानी माँ ने मुझे उस समय सुनाई, जब मैं दो वर्ष पूर्व सिल्चर गया था। माँ ने बताया कि वह सखियों के साथ पद्मा और ब्रह्मपुत्र के संगम पर रामनवमी से एक दिन पहले स्नान करने गई थी। अभी सूर्योदय नहीं हुआ था। किनारे से लगी हुई एक नन्ही-सी नाव नज़र आ रही थी, जैसे यह नाव किसी मांझी ने अपने बेटे के लिए खिलौने के रूप में तैयार करवाई हो। उस नाव में कोई वस्तु केले के पत्तों में ढकी हुई रखी थी और—"

"और वह वस्तु तुम्हारी माँ ने उठा ली।"

"सुनो तो! माँ को उस समय पता चला जब बालक के रोने की आवाज़ आई। यह एक नवजात बालक था। उसे माँ घर ले आई और—"

"और वही बालक बड़ा होकर मीरद कहलाया।"

"अब माँ तो यही कह रही थी।"

"और तुम ने इसे सत्य मान लिया?"

"मेरी कल्पना में तो यह चित्र दूसरा ही रूप धारण कर रहा है।"

"वह क्या?"

"केले के पत्तों में लिपटा हुआ एक बालक एक नन्ही-सी नाव में पड़ा जलधारा में बहा जा रहा है। यही मेरे जीवन का प्रतीक है।'

घुर-घुर घाँ ! घुर-घुर घाँ !—दूध दुहने का अपना संगीत था। बाँस के पोंगे में दूध दुहते-दुहते मधुल ने मुस्कान के साथ नीरद का स्वागत किया।

नीरद जानता था कि मल्लना की मृत्यु के आघात से मधुल अभी तक पूरी तरह सँभल नहीं सका। कपिला की आँखों से प्रकट हो रहा था कि दूध दुहे जाने से उसे एक विशेष प्रकार की तृप्ति हो रही है; पर नीरद को लगा कि मल्लना की मृत्यु से तो कपिला भी उदास है।

भीतर से रेणु आकर मधुल के पास खड़ी हो गई। वह पत्ते की सीटी बजा रही थी। सीटी की आवाज़ सुनकर कपिला चौंकी नहीं, जैसे वह सीटी की आवाज़ सुनने की चिर अभ्यस्त हो।

घुर-घुर घाँ ! घुर घुर घाँ ! मधुल दूध दुहता रहा।

नीरद ने रेणु के सिर पर हाथ फेरा, तो वह चकित नेत्रों से देखती हुई भीतर को भाग गई। नीरद ने उसकी ओर अधिक ध्यान न दिया। वह तो यह सोचकर आया था कि मधुल से सारी बात कहेगा कि किस प्रकार तूफ़ान के बावजूद देवकान्त माँ से मिलने आया था, यद्यपि वह यह निर्णय न कर सका था कि देवकान्त माँ से मिलने आया था या स्वयं उसी से। वह मधुल से पूछना चाहता था कि इन दिनों देवकान्त कहाँ छिपा हुआ है। फिर उस ने सोचा कि यह पूछना तो व्यर्थ है। पूछना होगा तो मैं देवकान्त से ही न पूछ लेगा। उस ने निर्णय किया कि वह देवकान्त के सम्बन्ध में आज बात भी नहीं करेगा। पुलिस देवकान्त की ताक में है। कहीं लेने के देने न पड़ जाएँ। पुलिस तो मुझे भी हिरासत में ले सकती है। मैं तो इसके लिए तैयार नहीं। मेरा तो वह रास्ता नहीं। मैं तो लेखनी का धनी हूँ। मेरा कार्य है लिखना; महापुरुष की कहानी, मनुष्य की कहानी, कैसी भी कहानी हो; उस में कैसा भी मोड़ क्यों न आये। मेरा कार्य तो फूल को खिलाने के लिए तैयार करना है। मेरा कार्य तो जीवन में सुगन्ध लाना है। यह सोचकर वह स्वयं ही मुस्करा दिया। उसे यह परवाह न थी कि मधुल उसकी मुस्कान को अचरज से देखे।

दूध दुहने के पश्चात् अतुल बाँस का फुट-भर का पीता उठाकर खड़ा हो गया। यह पीता बहुत मोटे बाँस से तैयार किया गया था। धोने से ताजा दूध की सुगन्ध आ रही थी। नीरज ने मुस्कराकर कहा, "लेखक की रचना से भी सोंधी-सोंधी सुगन्ध आने लगे, तो समझो लेखक की कला बीस्त हो उठी है।"

पहले अतुल भीतर जाकर दूध का पीता रख आया, फिर वह नीरज को पोखर के किनारे वाली अपनी झोंपड़ी में ले गया। 'दही-चिड़वा पसन्द करोगे या चाय?' अतुल ने कहा 'जो चाहो वही आ जायगा।'

'चाय पियेंगे।' नीरज मुस्कराया।

'चाय में थोड़ी देर लगेगा। बापू बड़ा डिब्बा लेने गये हैं।"

"ऐसी जल्दी भी क्या है!'

देवकान्त की माँ की बीमारी की बात चली तो अतुल ने कहा, 'किसी की डाक्टरी और किस काम आयेगी? सुना है उस ने कलकत्ता में डाक्टरी पढ़ी है।'

नीरज बोला, 'अब तक तो एक वैद्य जी का इलाज चल रहा है। बिलासपुर गालियाँ और पुड़िया भेज छोड़ता है।"

माँ क्या कहती भी है?'

'यही तो कठिनाई है। माँ तो दवा से घृणा है।'

अतुल के चेहरे पर शोक की रेखाएँ अब भी अंकित थीं। नन्दना का मृत्यु का दुःख वह अभी तक नहीं भूल सका था। नीरज के कान के समीप मुँह ले जाकर उस ने कहा, "देवकान्त की तुलना तो निराधार थी।'

"शायद वह तुलना अब तक न पहुँची हो।" नीरज ने गम्भीर होकर कहा।

'तो फिर वे मिलनी चाहिए।"

'अवश्य।"

यहाँ बैठे बैठे नीरज ने निश्चय किया था कि यदि अतुल यह प्रसंग आरम्भ करेगा तो वह बात को गोल कर जायगा।

घुर-घुर घाँ ! घुर-घुर घाँ !—दूध दुहने का अपना संगीत था। बाँस के चौंगे में दूध दुहते-दुहते मधुल ने मुस्कान के साथ नीरद का स्वागत किया।

नीरद जानता था कि मलना की मृत्यु के आघात से मधुल अभी तक पूरी तरह सँभल नहीं सका। कपिला की आँखों से प्रकट हो रहा था कि दूध दुहे जाने से उसे एक विशेष प्रकार की तृप्ति हो रही है; पर नीरद को लगा कि मलना की मृत्यु से तो कपिला भी उदास है।

भीतर से रेणु आकर मधुल के पास खड़ी हो गई। वह पत्ते की सीटी बजा रही थी। सीटी की आवाज़ सुनकर कपिला चौंकी नहीं, जैसे वह सीटी की आवाज़ सुनने की चिर अभ्यस्त हो।

घुर-घुर घाँ ! घुर-घुर घाँ ! मधुल दूध दुहता रहा।

नीरद ने रेणु के सिर पर हाथ फेरा, तो वह चकित नेत्रों से देखती हुई भीतर को भाग गई। नीरद ने उसकी ओर अधिक ध्यान न दिया। वह तो यह सोचकर आया था कि मधुल से सारी बात कहेगा कि किस प्रकार तूफ़ान के बावजूद देवकान्त माँ से मिलने आया था, यद्यपि वह यह निर्णय न कर सका था कि देवकान्त माँ से मिलने आया था या स्वयं उसी से। वह मधुल से पूछना चाहता था कि इन दिनों देवकान्त कहाँ छिपा हुआ है। फिर उस ने सोचा कि यह पूछना तो व्यर्थ है। पूछना होता तो मैं देवकान्त से ही न पूछ लेता। उस ने निश्चय किया कि वह देवकान्त के सम्बन्ध में आज बात भी नहीं करेगा। पुलिस देवकान्त की ताक में है। कहीं लेने के देने न पड़ जायें। पुलिस तो मुझे भी हिरासत में ले सकती है। मैं तो इसके लिए तैयार नहीं। मेरा तो यह रास्ता नहीं। मैं तो लेखनी का धनी हूँ। मेरा कार्य है लिखना; ब्रह्मपुत्र की कहानी, मनुष्य की कहानी, कैसी भी कहानी हो; उस में कैसा भी मोड़ क्यों न आवे। मेरा कार्य तो फूल को खिलने के लिए तैयार करना है। मेरा कार्य तो जीवन में सुगन्ध लाना है। यह सोचकर वह स्वयं ही मुस्करा दिया। उसे यह परवाह न थी कि मधुल उसकी मुस्कान को अवश्य देखे।

धूप ढलने के पश्चात् मधुप बाँस का फुट-भर लम्बा चोंगा उठाकर खड़ा हो गया। यह चोंगा मधुप ने बाँस से तैयार किया गया था। चोंगे से ताजा दूध की सुगन्ध आ रही थी। नीरज ने मुस्कराकर कहा, 'लेखक की रचना में भी सोंधी-सोंधी सुगन्ध आने लगे तो समझो लेखक की कला जीवन्त हो उठी है।'

पहले मधुप भीतर जाकर दूध का चोंगा रख आया फिर वह नीरज को पोखर के किनारे वाली अपनी झोंपड़ी में ले गया। "हरी-मिर्चा पसन्द करोगे या चाय?' मधुप ने कहा 'जो चाहो वही आ जायगा।'

'चाय पियेंगे।' नीरज मुस्कराया।

'चाय में थोड़ी देर लगेगी। बापू जरा हिस्सा लेने गये हैं।'

'ऐसी जल्दी भी क्या है!'

देवकान्त की माँ की बीमारी की बात चली तो मधुप ने कहा 'किसी की हत्यारी और किस काम आयेगी! सुना है उस ने कलकत्ता में नौकरी पायी है।'

नीरज बोला, 'अब तक तो एक वैद्य की ही इलाज चल रहा है। विटामिन की गोलियाँ और सुइयाँ भेज देता है।'

'माँ दवा खाती भी है?'

'यही तो कठिनाई है। माँ को दवा से घृणा है।'

मधुप के चेहरे पर क्षोभ की रेखाएँ स्पष्ट भी अंकित थीं। मम्मा का मृत्यु का दुःख वह अभी तक नहीं भूल सका था। नीरज के मन के समान मुँह लाकर उस ने कहा, 'देवकान्त को सूचना तो निराधार थी।'

'शायद यह सूचना उस तक न पहुँची हो।' नीरज ने गम्भीर होकर कहा।

"तो फिर से लिखवानी चाहिए।"

"जरूर।'

यहीं बैठे-बैठे नीरज ने निश्चय किया था कि यदि मधुप यह प्रसंग आरम्भ करेगा तो वह बात को गोल कर जायगा।

रेणु फिर आ गई। वह नई पत्ते की सीटी बजा रही थी। अतुल ने कहा, "इस के छोटे से मस्तिष्क में यह प्रश्न नहीं उठ सकता कि मदमा क्यों चला गया।"

"अब मदमा कभी वापस नहीं आयेगा।" नीरद ने सहानुभूतिपूर्ण स्वर में कहा और फिर प्रसंग बदलते हुए बोला, "परसों रात शिली से मेरी बातें हुईं। शिली के कमरे में मैं ने तुम्हारा चित्र देखा है।"

"मेरा चित्र!" अतुल ने सारचर्य पूछा, "मैं वहाँ कब गया! मेरा चित्र किस ने बनाया!"

"शिली तुम्हारी बहुत प्रशंसा कर रही थी।"

"मेरी प्रशंसा! मुझ में ऐसा कौन-सा गुण है! मुझ पर तो उसे नाराज होना चाहिए था।"

"क्यों!"

"उसकी भेजी हुई असमिया बाइबिल मैं ने लौटा दी थी।"

"उस बात की तो उस ने चर्चा नहीं की। फिर तुम्हारे विवाह की चर्चा चल पड़ी।"

"उसका इस से क्या प्रयोजन!"

"उस ने शिवप्रसाद से सुना होगा। कोई लड़की अनुतारा है शिलाँग मुझ में।"

"सामने वाला घर है न।" अतुल ने दृढ़ता से कहा, "उसी घर में रहती है अनुतारा। उसके साथ मेरे विवाह की बात चल रही है। उसके पिता कामाख्य माधव ने दूर-दूर तक तीर्थ-यात्रा कर रखी है। किसी अर्थ बड़ा मामूली सबे हैं।"

नीरद बोला, "अभी से विवाह के चक्कर में न फँस जाना। देवकान्त सुनेगा तो उसे दुःख होगा। वह तो कलकत्ता में तुम्हारी बहुत प्रशंसा किया करता था।"

"देवकान्त का रास्ता कलकत्ता से आरम्भ होता है, मेरा शिलाँग मुझ से।"

मीरा ने गम्भीर होकर कहा

"या तो मनुष्य यह भूलकर कि उसका जन्म कहाँ हुआ, सारे संसार की यात्रा करे, या वह अपने मस्तिष्क के भीतर बसी हुई दुनिया की खोज करे, क्योंकि मस्तिष्क की गलियों में घूमने से भी मनुष्य को बहुत-कुछ मिल सकता है। मस्तिष्क कोई एक दिन का खिलौना तो नहीं है। असल की असंख्य पगडंडियों से होता हुआ मस्तिष्क आज के युग में पहुँचा है, पर यात्रा की दूसरी बात है। परसों रात मैं किसी से कह रहा था कि मनुष्य को दुनिया निखर जाए।'

'उस ने क्या कहा?"

'वह कह रही थी—'मनुष्य में जो विशेषता है वह है उसका शुद्ध आदिम रूप। आज के युग के निकट-सम्पर्क में आने पर उसका यह रूप बिगड़ जायगा। तुम्हारा क्या विचार है?'

"वह ठीक कहती है। मैं तो दिसाँगमुख में रहकर ही काम करना चाहता हूँ।'

"बाँसुरी की धुन को ही लो। अब प्रश्न किया जा सकता है कि संगीत बाँस की पोरी पर आश्रित है या गायक के कण्ठ पर। एक संगीत ब्रह्मपुत्र की लहरों का भी है; उसे तो किसी के कण्ठ की चाह नहीं। प्रकृति का संगीत हो चाहे मानव का इनका अपना-अपना सन्देश है। मानव-सभ्यता विभिन्न देशों में बड़ी-बड़ी नदियों के किनारे विकसित हुई। मानव पर जलधारा की अमिट छाप है और इनका एक ही सन्देश है कि मानव प्रत्येक देश की यात्रा करे और वह अनुभव प्राप्त करे जिसके बिना वह कोई विशेष पग नहीं उठा सकता। बाहर की दुनिया देखकर तुम दिसाँगमुख आओगे तो यहाँ अच्छा प्रगति-कार्य कर सकोगे। कलकत्ता और बम्बई जैसे शहर तो तुम अवश्य देख आओ।'

'दिसाँगमुख तो न शिवसागर बनना चाहता है न गोहाटी, कलकत्ता बम्बई की तो बात ही दूर रही।"

'ब्रह्मपुत्र बहुत दूर से आता है और बहुत दूर जाता है। ब्रह्मपुत्र यही ब्रह्मपुत्र।

रेणु फिर आ गई। वह बड़ी पते की सीटी बजा रही थी। मधुल ने कहा, 'इस के छोटे से मस्तिष्क में यह प्रश्न नहीं उठ सकता कि मक्खा कहाँ चला गया।"

"अब मक्खा कभी वापस नहीं आयगा।" नीरद ने सहानुभूतिपूर्ण स्वर में कहा और फिर प्रसंग बदलते हुए बोला, "परसों रात लिली से मेरी बातें हुई। लिली के कमरे में मैं ने तुम्हारा चित्र देखा है।"

"मेरा चित्र!" मधुल ने सआश्चर्य पूछा, "मैं वहाँ कब गया! मेरा चित्र किस ने बनाया!"

"लिली तुम्हारी बहुत प्रशंसा कर रही थी।"

"मेरी प्रशंसा! मुझ में ऐसा कौन-सा गुण है! मुझ पर तो उसे नाराज होना चाहिए था।"

"क्यों!"

"उसकी भेजी हुई असमिया बाइबिल मैं ने लौटा दी थी।"

"उस बात की तो उस ने चर्चा नहीं की। फिर तुम्हारे विवाह की चर्चा चल पड़ी।"

"उसका इस से क्या प्रयोजन!"

"उस ने विष्णुराम से सुना होगा। कौन लड़की भाग्यवान है ग्वालिय कुल में!"

"सामने वाला घर है न।" मधुल ने दृढ़ता से कहा, "उसी घर में रहती है सूनताग। उसके साथ मेरे विवाह की बात चल रही है। उसके पिता कमलाकान्त मगान ने दूर-दूर तक तीर्थ-यात्रा कर रखी है। किसी धर्म वश मामुली गये हैं।"

नीरद बोला, "अभी से विवाह के चक्कर में न फँस जाना। देवकान्त सुनेगा तो उसे दुःख होगा। वह तो कलकत्ता में तुम्हारी बहुत प्रशंसा किया करता था।"

"देवकान्त का रास्ता कलकत्ता से आरम्भ होता है, मेरा ग्वालिय कुल से।"

मीरा ने गम्भीर होकर कहा

"या तो मनुष्य, यह भूलकर कि उसका जन्म कहाँ हुआ, सारे संसार की यात्रा करे, या वह अपने मस्तिष्क के भीतर बसी हुई दुनिया की खोज करे क्योंकि मस्तिष्क की गलियों में घूमने से भी मनुष्य को बहुत-कुछ मिल सकता है। मस्तिष्क कोई एक दिन का खिलौना तो नहीं है। कल की असंख्य पगडंडियों से होता हुआ मस्तिष्क आज के युग में पहुँचा है पर यात्रा की दूसरी बात है। परसों रात मैं किसी से कह रहा था कि बाउल को दुनिया दिखाई जाय।'

"तुम ने क्या कहा?"

"वह कह रही थी—'बाउल में जो विशेषता है वह है उसका शुद्ध आदिम रूप। आज के युग के निकट-सम्पर्क में आने पर उसका यह रूप बिगड़ जायगा।' तुम्हारा क्या विचार है?"

"वह ठीक कहती है। मैं तो दिसाँगमुख में रहकर ही काम करना चाहता हूँ।"

"बाँसुरी की धुन को ही लो। अब प्रश्न किया जा सकता है कि संगीत बाँस की पोरी पर आश्रित है या गायक के कण्ठ पर। एक संगीत ब्रह्मपुत्र की लहरों का भी है उसे तो किसी के कण्ठ की चाह नहीं। प्रकृति का संगीत हो चाहे मानव का, इनका अपना अपना सन्देश है। मानव-सभ्यता विभिन्न देशों में बड़ी बड़ी नदियों के किनारे विकसित हुई। मानव पर जलवायु की अमिट छाप है और इसका एक ही सन्देश है कि मानव प्रत्येक देश की यात्रा करे और वह अनुभव प्राप्त करे, जिसके बिना वह कोई निश्चित पग नहीं उठा सकता। बाहर की दुनिया देखकर तुम दिसाँगमुख आओगे तो यहाँ अपना प्रगति-कार्य कर सकोगे। कलकत्ता और बम्बई जैसे शहर तो तुम अवश्य देख आओ।"

"दिसाँगमुख तो न शिवसागर बनना चाहता है न गोहाटी, कलकत्ता बम्बई की तो बात ही दूर रही।"

"ब्रह्मपुत्र बहुत दूर से आता है और बहुत दूर जाता है। ब्रह्मपुत्र नहीं

नहीं है जिसे तुम दिलीपकुमार के गम से नापने की भूल कर रहे हो।" नीरद ने अन्तिम तर्क प्रस्तुत करते हुए मधुल की ओर देखा।

इतने में चाय आ गई। नीलमाधव भी आ पहुँचा। आते ही उस ने कहा, "अब जो तुम कहो, वही भगत जी को उत्तर दिया जाय। तुम्हारी जन्म-पत्री वह पहले ही ले गये थे। अब वे विवाह की तिथि निश्चित करने का आग्रह कर रहे हैं।"

"विवाह भी आवश्यक है।" पास से नीरद कह उठा, 'पर लोग इतना शीघ्र विवाह क्यों करते हैं, यह मैं आज तक नहीं समझ सका।"

मधुल चुप रहा।

"अच्छा तो मैं भगत जी से कह देता हूँ कि अभी रुक जायें। लोगों का मुँह भी तो रखना होगा। लोग कहेंगे—कल मरना कल क्या और आज मधुल का विवाह रचाया जा रहा है!"

"चाय ठण्डी हो रही है," मधुल ने बलपूर्वक कहा, "पहले चाय के साथ इन्साफ किया जाय! ये बातें तो कभी खतम ही नहीं होंगी।"

उनतीस



नीरद राखाल बाबा की झोंपड़ी में पहुँचा तो बाबा बैठे गुड़गुड़ी पर कश लगा रहे थे।

"आओ, नीरद बाबू!" बाबा मुस्कराये।

इधर-उधर की बातों के पश्चात बाबा ने देवकान्त की बात चलाई। पहले तो नीरद ने अधिक दिलचस्पी न दिखाई पर जब बाबा इस प्रसंग को छोड़ने को तैयार ही न हुए तो नीरद ने कहा

"देवकान्त बंगाल के एक आतंकवादी क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो गया। इन लोगों ने एक के बाद एक, पूरी पाँच हत्याएँ कीं। एक-से-एक बढ़िया पिस्तौल चलाने वाले युवक इस दल में शामिल हैं। दल के कुछ लोग गिरफ्तार किये जा चुके हैं और तीन युवक अभी तक पकड़े नहीं गये। उन्हीं तीन युवकों में देवकान्त भी है। देवकान्त के पास सब से बढ़िया पिस्तौल है। एक अवसर पर तो मैं स्वयं इस दल में सम्मिलित होते-होते रह गया था। कलकत्ता के समाचार-पत्रों में आजकल सब से अधिक इसी आतंकवादी दल की खबरें छप रही हैं।"

राखाल बाबा ने आश्चर्यपूर्वक पूछा, "तो क्या इस दल की खबरें गांधी बाबा की खबरों से भी अधिक छप रही हैं?"

"हाँ बाबा!" नीरद मुस्कराया, "इस दल पर यह मुकदमा चल रहा है कि इन्होंने एक-एक करके पाँच अंग्रेज अफसरों को मार डाला।"

"तुम किस दल के साथ हो?"

"मैं तो किसी भी दल के साथ नहीं हूँ काका! यह बात मैं ने कलकत्ता में देवकान्त से स्पष्ट कह दी थी। वैसे देश प्रेम में तो मैं किसी से पीछे नहीं हूँ।"

"तो तुम सरकार-पार्टी के साथ भी नहीं हो?' काका ने गम्भीर होकर कहा।

"आज तक तो मैं ने सरकार की चापलूसी का सपना नहीं देखा।"

"तो तुम्हारा कौन-सा मार्ग है? दो ही तो मार्ग हैं—बम और पिस्तौल का मार्ग या फिर सत्याग्रह और अहिंसा का मार्ग। हमारे मार्गन साहब चौंदकूची के जंगल में बीमार हाथियों की देख-भाल करते हुए गांधी बाबा का प्रसंग छेड़ देते थे। वे तो कहते थे कि गांधी बाबा का मार्ग वही है जो ईसा का मार्ग था। ईसा तो स्वयं सूली पर चढ़ गया था। तुम्हारा कौन-सा मार्ग है, नीरद बाबू?'

"मैं तो लिखकर ही सेवा करना चाहता हूँ, काका!"

'किस की सेवा?"

"सारे संसार की सेवा, अकेले अपने ही देश की नहीं। रुपया तो सब देशों के लिए एक है, सारे संसार की समस्याएँ एक हैं।'

"एक कैसे हैं सब की समस्याएँ? स्वाधीन और पराधीन, सब एक कैसे हुए? यह प्रश्न तो मैं मार्गन साहब से भी पूछ बैठता था।"

नीरद ने हँसकर बात समाप्त करते हुए कहा, "मैं तो ब्रह्मपुत्र पर पुस्तक लिख रहा हूँ काका! हाँ, एक बात अवश्य है। पहले मैं केवल एक नदी की जीवनी लिखना चाहता था; अब मेरी समझ में यह बात आ गई कि नदी के किनारे बसे हुए लोगों का संघर्ष भी नदी की जीवनी से अलग नहीं।"

काका की आँखें चमक उठीं। वह प्यारपूर्वक नीरद की तरफ देखने लगे।

तीस



दोनों सहेलियाँ जमुना जा रही थीं। एक का विवाह हो चुका था, और दूसरी अभी अविवाहिता थी।

बहुत देर तक तो भारती इस बात को लेकर गुलनार का उपहास करती रही कि वह इतनी ही सयानी बनी फिरती है तो यह बताये कि जो मित्र उसके विवाह में किसी ने उसे भेंट किया था वह मैं अनुज कहाँ से आ गया था।

वर्षा ऋतु अभी ही समाप्त हो चुकी थी। धान की फसल कटकर घर आ चुकी थी। जाड़ा आरम्भ हो चला था। आगे और पीछे दूर तक धुंध की चादर फैली हुई थी। उसमें गायें भी तो धुंध थीं। धुंध में लिपटी दोनों सहेलियाँ जमुना की ओर जा रही थीं। धान की फसल कटने के पश्चात् गुलनार का अनुज के साथ विवाह हो गया था। इस विवाह पर बीरेन ही मिसी को लेकर आया था। मिसी एक अँग्रेज लड़की होकर भी गाँव की बातों में इतनी दिलचस्पी लेती है, यह सब के लिए बड़े आश्चर्य की बात थी। चलते चलते भारती ने कहा :

"बस भी इतनी ही धुंध थी। बापू के जाल में बहुत-सी मछलियाँ आ फँसी थीं। बापू यह कहता था कि जमुना में मछलियाँ कभी समाप्त न होंगी।"

गुलनार ने हँसकर कहा, 'यह कौन-सी नई बात है।"

वे शीघ्रता से चली जा रही थीं। चलते-चलते उस साल की चर्चा

चली जिसे माधवी का बापू कमलिया चापरी से पकड़ लाया था। फिर मकुल का प्रसंग आया कि किस प्रकार वह कुनताप के पास आकर सारस को मुक्त करने का आग्रह करने लगा था। दोनों सहेलियों के वार्तालाप में वह दृश्य सजीव हो उठा कि किस प्रकार वे सारस को उठाकर बापू के साथ नाव में बैठकर उसी चापरी पर उसे छोड़ने गई थीं। "बस उस दिन से वह सारस अपनी पाँत के साथ उड़ गया, कभी लौटकर दिखाई नहीं दिया।" कुनताप ने हँसकर कहा, 'वह माला भी साथ ही चली गई जो मैं ने उसके गले में डाली थी।'

"तू सोचती थी कि वह सारस फिर कमलिया चापरी पर उतरकर अपनी पाँत से बिछुड़ जायगा और बापू फिर उसे पकड़ लायगा।"

'मैं ने तो सोचा था कि माला से मैं अपने सारस को पहचान लूँगी।"

'ऐसा नहीं होता, पगली!"

'दूर से तो हर सारस के गले में माला नज़र आती है।'

"इसे कहते हैं नज़र का धोखा।'

कुनताप ने प्रसंग बदलते हुए कहा, 'देवकान्त कहाँ होगा, यह तो कोई नहीं जानता।"

"वह अपनी पाँत में उड़ रहा होगा।" माधवी मुस्कराई।

कुनताप ने हँसकर कहा, "तेरे सपनों में देवकान्त अवश्य आता होगा, पर तू कभी बतायेगी थोड़े ही।'

'आता है तो आये, मैं कैसे रोक सकती हूँ? तू अपने मकुल की बात सुना, कैसा निकला?"

कुनताप चुप रही। माधवी ने हँसते-हँसते उसके गले में बाँहें डाल दीं। "वर-वधू की कुण्डलियाँ मिलाकर किये गये विवाह ने कुछ तो रंग दिखाया होगा। विवाह से पहले की रस्म याद कितनी शुभ थी! तुम्हारे घर वाले ब्रह्मपुत्र से पानी लाकर तुम्हें स्नान कराते रहे और मकुल के घर वालों ने भी सात दिन तक ऐसा ही किया। बता तो सही कि वर-वधू के लिए लड़कियाँ अलग अलग पानी क्यों लाती हैं; वर-वधू की प्रशंसा

मैं इतने गीत क्यों गाये जाते हैं।

"तू क्यों इतनी उतावली हो रही है। तू तो ब्रह्मपुत्र में डुबकी लगा लेगी और हो जायगा तेरा शुभ स्नान।"

"मैं क्यों डुबकी लगाने लगी! मैं भी दुलहन बनकर बैठूँगी।"

"तेरे लिए आम की समिधाओं से कौन हवन करेगा?"

'हम भी उसी पण्डित को बुलायेंगे। मेरे विवाह में भी एक दूसरे को पान-ताम्बूल भेंट करने की रीति का पालन किया जायगा जैसा तेरे विवाह पर हुआ था।'

"तब तो तुम्हें भी मेरी तरह विवाह से पहले सात दिन तक दूध और केला खाकर रहना होगा। मेरी तरह तू भी वर के माथे पर फूल रखना और तब वर इन फूलों को तेरे कन्धे पर रख देगा और जब अग्नि-देवता के सम्मुख विवाह-संस्कार हो लेगा तो तेरे घर में भी वर-वधू के सिर पर वैसे ही फूल और चावल वारे जायेंगे जैसे हमारे घर में।'

'चावल क्यों वारते हैं?'

'धरती के साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिए।'

"मुझे कुछ भी मालूम नहीं।"

"तो सुन क्या!'

"यह भी एक प्रकार का आशीर्वाद होता है कि जैसे धरती भाग्यवती है वैसे ही वधू भी भाग्यवती बने।" भारती ने अपनी बाँहें सुनयना के गले में डाल दीं।

वे देवकान्त के घर पहुँचीं, तो सूरज पूर्व का परदा हटाकर झाँकने लगा था। माँ ने उनका स्वागत करते हुए कहा, 'आओ, भारती! आओ, सुनयना!'

"माँ, सुनयना उलाहना देने आई है कि तुम उसके विवाह में क्यों नहीं आईं?" भारती मुस्कराई।

'मैं कैसे आती!' माँ ने गम्भीर होकर कहा "यह तो समझो कि मरते मरते बच गए। मैं ने सुना है कि रामराज भी विवाह में सम्मिलित नहीं

हुआ था।"

भारती बोली, "विवाह तो रुकता नहीं। कोई आये चाहे न आये। रामलाल काका तो सब से यही कहते फिरते हैं कि मकरन्द की चिता की आग अभी ठण्डी भी नहीं हुई थी और इन लोगों को मकुल का विवाह रचाने की सूझ गई।"

"वह ठीक कहते हैं।" माँ खाँसते-खाँसते बेहाल हो गई।

वृन्दारानी माँ का सिर दबाने लगी। भारती उठकर माँ के लिए पानी लेती आई। वह माँ के मुँह में पानी की बूँदें डाल रही थी कि शोभा भी आ गई।

शोभा के हाथ में चाय का गिलास था।

भारती ने उलाहना दिया, "शोभा, तू वृन्दारानी के विवाह पर नहीं आई थी, तो तेरे विवाह पर कौन आयेगा?"

"मैं माँ को देखती या विवाह पर आती?" शोभा बोली, "माँ, चाय पी लो।"

"मेरा मुँह बहुत कड़वा हो रहा है, बेटा! मेरे प्राण निकलते भी नहीं।" माँ की आवाज मध्यम हुई थी। बड़ी कठिनता से माँ चाय पीने के लिए राजी हुई।

फिर देवकान्त के बारे में बातें चलीं तो माँ ने कहा "उसे कभी माँ को देखने का ध्यान नहीं आता।"

वृन्दारानी बोली, "अभी तो वह माँ से मिलने आयेगा। जिस माँ का दूध पिया है, उसे वह भुला थोड़े ही देगा।"

"देवकान्त के मुख पर तो सदा भारत माता का नाम रहता है।" भारती मुस्कराई।

"भारत माता पहले है या अपनी?" शोभा ने गम्भीर होकर कहा, "पर पुलिस हमेशा देवकान्त की ताक में रहती है, माँ! पुलिस उसका पता नहीं चला सकी और इसी कारण नारायण बारपेटा की भरती हो गई।"

"शिलांगमुख का नारायण से तो पिण्ड छूटा।" भारती ने पूछा

पूर्वक कहा।

जब तीनों लड़कियाँ चली गईं, तो नीरद घबराता हुआ माँ के कमरे में आया। माँ ने गम्भीर मुद्रा में कहा, "मैं ने उन्हें कुछ नहीं बताया। तुम घबराओ नहीं।"

नीरद की जान-में-जान आई और उस ने हँसकर कहा, "माँ मैं ने समझा था कि तुम ने उन्हें बता दिया।"

माँ बोली, "मैं सब समझती हूँ। दीवार के भी कान होते हैं बेटा! अच्छा तो तुम्हारी कहानी कहाँ तक पहुँची? इस कहानी को जल्दी-जल्दी खत्म करो, बेटा!"

इकतीस



रतनलाल काका की झोंपड़ी के सामने सेमल के फूल बसन्त की छाप लगा रहे थे।

काका तो घर से बाहर ही नहीं निकलते थे। जो कोई भी उन से मिलने आता, मलना की मृत्यु से सम्बन्धित वार्ता सुनने के लिए तैयार होकर ही आता। कुछ दिनों तक तो लोगों का यह विचार रहा कि समय स्वतः ही काका के मस्तिष्क से यह बात मिटा देगा, पर लगता था कि यह घटना काका को मानसिक रोग के समान भीतर ही-भीतर खाये जा रही है। बात करके काका जी की भड़ास निकाल लेते हैं तो अच्छा ही करते हैं, यह जानकर सामने बैठा व्यक्ति कई बार पुरानी कहानी को पूरे ध्यान से सुनने का यत्न करता।

अब तो माघ का महीना था। मलना आश्विन में मरा था इस बात को पाँचवाँ महीना जा रहा था। दो मास से कुछ दिन ऊपर तो प्रफुल्ल के विवाह को भी हो गये थे। कभी काका यह उलाहना देने लगते कि दिलौंगमुख के लोग इतने कठोर हो गये हैं कि एक निरपराध बच्चे की मृत्यु से भी उनके कान में जूँ नहीं रेंगी; कभी वह गाँव-बूढ़ा नीलमणि और लम्बी तीर्थ-यात्रा की डींग मारने वाले कल्याण भगत की घिसी-पिटी बकवास पर हँसने लगते। ऐसा भी क्या संकट आ रहा था कि प्रफुल्ल और सूनतारा का विवाह एक वर्ष के लिए भी न रुक सका। जब स्वयं मलना का बापू मलना की मृत्यु का शोक मनाने से विमुख हो गया, तो दिलौंगमुख के अन्य मीरी,

प्रतमिया और नेपाली लोगों से क्या आशा की जाती ! आश्विन में मल्खा मर गया और कार्तिक में सदा के समान काती बिहू मनाया गया, जैसे गाँव में कोई दुखद घटना न हुई हो। आश्विन की अन्तिम तिथि से आरम्भ होता है काती बिहू, जब लोग घरों और खेतों में दीप जलाते हैं। कार्तिक की प्रतिपदा को विशेष रूप से भरली और गोहाली में दिये जलाते हैं। भरली में अनाज भरा रहता है, गोहाली में गाय-बैल बँधे रहते हैं। क्या हो इस परम्परा का कि काती बिहू में बोहाग बिहू के समान नाच-गान नहीं होता नहीं तो मल्खा की मृत्यु के पश्चात् काती बिहू मनाने की बात और भी खटकती। जब काती बिहू मनाया जा रहा था, तो मैं दूर खेतों में निकल गया था। खेतों में जगमगाते दीप देख कर मेरा हृदय जल उठा था। शाली और बाऊ धान में बालियाँ निकल रही थीं, जैसे ये बालियाँ कह रही हों—हम अगहन-पूस में तैयार होंगी। ठीक ही तो था, शाली और बाऊ धान अगहन ही में तो पका था। दूर से मैं ने अमुल को भी धान काटते देखा था।

अमुल आखिर साँझ को बाबा के पास आ बैठा तो बाबा ने छूटते ही कहा, "ये लोग माघ बिहू का त्योहार भी कैसे रोक सकते थे!"

"रोक देते तो क्या बुरा था!" अमुल आखिर ने गम्भीर होकर कहा, "पर जब ये लोग काती बिहू मनाने से न रुके, तो माघ बिहू मनाने से कैसे रुकते! बात तो तब थी कि अमुल का विवाह भी एक साल के लिए रोक दिया जाता। जब मौलनाथ ने ही यह बात न सोची, तो आलोपीगा वालों को क्यों दोष दिया जाय और कलमा वालों का भी क्या अपराध गिना जाय! निवालिया के नेपाली तो न काती बिहू मनाते हैं, न माघ बिहू और न बोहाग बिहू।"

"काती बिहू मनाकर लोगों ने मल्खा की मृत्यु का उतना उपहास नहीं किया था जितना माघ बिहू मनाकर।"

"यह कैसे, दादा?"

"प्रतिपदा के स्नान इस बार भी पूस की अन्तिम तिथि को साँझ के

इकतीस



पलाश काका की झोंपड़ी के सामने सेमल के फूल बसन्त की छाप लगा रहे थे।

काका तो घर से बाहर ही नहीं निकलते थे। जो कोई भी उन से मिलने आता, मजना की मृत्यु से सम्बन्धित वार्ता सुनने के लिए तैयार होकर ही आता। कुछ दिनों तक तो लोगों का यह विचार रहा कि समय स्वतः ही काका के मस्तिष्क से यह बात मिटा देगा, पर लगता था कि यह घटना काका को मानसिक रोग के समान भीतर ही-भीतर खाये जा रही है। बात करके काका जी की भड़ास निकाल लेते हैं तो अच्छा ही करते हैं, यह सोचकर सामने बैठा व्यक्ति कई बार पुरानी कहानी को पूरे ध्यान से सुनने का यत्न करता।

अब तो माघ का महीना था। मजना आश्विन में मरा था; इस मास को पाँचवाँ महीना जा रहा था। दो मास से कुछ दिन ऊपर हो अकुन के विवाह को भी हो गये थे। कभी काका यह उलाहना देने लगते कि सिलौंगमुख के लोग इतने कठोर हो गये हैं कि एक निरपराध बच्चे की मृत्यु से भी उनके कान में जूँ नहीं रेंगी; कभी वह गाँव-बूढ़ा नीलमणि और लम्बी तीर्थ-यात्रा की डींग मारने वाले अस्पायु भगत की पिची पिटी शक्ल पर हँसने लगते। ऐसा भी क्या संकट आ रहा था कि अकुन और सुनवारा का विवाह एक वर्ष के लिए भी न रुक सका। जब स्वयं मजना का बापू मजना की मृत्यु का शोक मनाने से विमुख हो गया, तो सिलौंगमुख के अन्य मीरी,

असमिया और नेपाली लोगों से क्या आशा की जाती ! आरम्भ में मलमा मय और कार्तिक में सदा के समान काती बिहू मनाया गया जैसे गाँव में घोर दुस्सह प्रसंग न हुए हों। आश्विन की अन्तिम तिथि से आरम्भ होता है काती बिहू, जब लोग घरों और खेतों में दीप जलाते हैं। कार्तिक की प्रतिपदा को विशेष रूप से भराली और गोहाली में दिए जलाते हैं। भराली में अनाज भरा रहता है, गोहाली में गाय-बैल बंधे रहते हैं। भला हो इस परम्परा का कि काती बिहू में बोहाग बिहू के समान नाच-गान नहीं होता नहीं तो मलमा की मृत्यु के पश्चात् काती बिहू मनाने की बात और भी खटकती। जब काती बिहू मनाया जा रहा था तो मैं दूर खेतों में निकल गया था। खेतों में जगमगाते दीप देख कर मेरा हृदय नाच उठा था। शाली और बाऊ धान में बालियाँ निकल रही थीं, जैसे ये बालियाँ कह रही हों—हम अगहन-पूस में तैयार होंगी ! ठीक ही तो था शाली और बाऊ धान अगहन ही में तो पकता था। दूर से मैंने अब्दुल को भी धान पकते देखा था।

अब्दुल कादिर साँझ को बाबा के पास आ बैठा तो बाबा ने छूटते ही कहा, "ये लोग माघ-बिहू का त्योहार भी कैसे रोक सकते थे ?"

'रोक देते तो क्या हुआ था ?' अब्दुल कादिर ने गम्भीर होकर कहा, "पर जब ये लोग काती बिहू मनाने से न टले, तो माघ बिहू मनाने से कैसे टलते ! बात तो यह थी कि अब्दुल का विवाह भी एक साल के लिए रोक दिया जाता। जब मौलसमयि न हो पर बात न सोची, तो शर्मा को क्यों दोष दिया जाए और मलमा वालों का भी क्या अपराध गिना जाए ! चिन्तामणि के नवासा तो न काती बिहू मनाते हैं, न माघ बिहू और न बोहाग बिहू।"

"काती बिहू मनाकर लोगों ने मलमा की मृत्यु का उतना उपहास नहीं किया था जितना माघ बिहू मनाकर।"

"पर कैसे, दादा ?"

'मलमा के समान इस बार भी पूस की अन्तिम तिथि पर गाँव के

पाँच डण्डे गाड़कर और उनके बीच लकड़ी का ढेर लगाकर माघ बिहू के उल्लास में लड़के-लड़कियों ने वहीं रात गुजार दी थी और अगले दिन—"

"यह प्रथा तो पुरानी है, दादा!" अब्दुल कादिर ने टोक कर कहा।

"पुरानी तो है, पर इन लोगों ने मचना का शोक मनाया होता तो सदा के समान इस बार भी लकड़ी के उस ढेर को अगले दिन अर्थात् माघ की प्रतिपदा को प्रातः चार बजे नीलमणि के हाथ से आग न लगवाई होती।"

"आग लगाने के लिए वे लोग और किस से कहते? सभी लड़के-लड़कियों ने आग को प्रणाम किया था। लड़कियाँ आग तापती रहीं और लड़कों के दंगल देखती रहीं, दादा! लड़के-लड़कियों के अतिरिक्त बूढ़े लोग भी तो थे।"

"भला माघ बिहू की आग को 'मेजी' क्यों कहते हैं? इसे तापना शुभ क्यों माना जाता है?" रामलाल ने गम्भीर होकर कहा, "आग तापने और दंगल से अवकाश पाकर हर कोई अपने-अपने घर को लौट आया होगा। अब यह तो असमिया लोगों का ही त्योहार है। नेपाली भी 'मेजी' को शुभ मानते हैं। मुसलमान तो दूर से ही इसे देख लेते हैं।"

अब्दुल कादिर पहले तो चुप रहा। फिर वह कहता चला गया, "माघ बिहू को तो मैं बुरा नहीं कहता। मीरी नेपाली और मुसलमान भी इस में शामिल हों तो क्या बुरा है? मेजी तापने के बाद वे भी घर-घर माघ बिहू के उल्लास में मीठे पकवान खाने जायें, तो क्या बुरा है? वे भी पथार में भैंसों की लड़ाई देखें, तो कोई बुरी बात नहीं; वे भी माघ बिहू की खुशी में नये कपड़े पहन सकते हैं, पर सवाल तो यह है कि मचना जैसा प्यारा बच्चा काले नाग के डसने से मर जाय और उसका बाप भी मृत्यु का सब दुःख भुलाकर माघ बिहू की मेजी जलाता फिरे, इस से ज्यादा अफसोस की क्या बात होगी?"

काका कुछ न बोले। अब्दुल कादिर सोचने लगा कि देखें अब काका क्या बात बताते हैं।

माघ का महीना तो 'आहू' धान बोने का महीना था। बाबा जानते थे कि आहू धान की पनीरी नहीं रोपी जाती इसे तो खेत में हल चलाने के पश्चात् वैसे ही बो दिया जाता था। बाबा यह भी जानते थे कि अब आहू धान बोया जायगा तो कहीं जाकर माघ में काटा जायगा। माघ बिहू और बोहाग बिहू के बीच में यह चार मास की अवधि आहू धान के बोने और काटने का मुहूर्त थी। अब्दुल कादिर ने हँसकर कहा "चुप क्यों हो गये, दादा! पेंशन ले आये थे! तुम्हें तो घर बैठे पेंशन मिलती है। हम तो घर में नहीं बैठ सकते। आजकल आहू धान बोने का काम जोरों से चल रहा है।"

"चार मास से तो मैं पेंशन लेने भी नहीं गया।"

'क्यों, दादा! पेंशन फिरंगी के पास क्यों छोड़ते हो!"

'मलमा की मृत्यु ने मुझे उत्साहहीन कर दिया है अब्दुल कादिर!'

"तो क्या पेंशन छोड़ दोगे, दादा! हमारे लिए ही सही। फिर हम भी आहू धान नहीं बोयेंगे। घर बैठे पेंशन मिलती रहे यह तो बड़ा आनन्द है। ये लोग फिरंगी को बुरा क्यों कहते हैं! दादा, हमें भी पल्टनी क्यों नहीं ले गये थे! हमें भी पेंशन मिलती। क्या तुम्हारे जर्मन साहब हमें नौकरी न देते!"

"क्यों न देते! वे तो बहुत अच्छे थे। मैं तो उनके उपकार से लदा हुआ हूँ।"

"आनन्द से पेंशन पा रहे हो दादा! इधर हम हैं कि आहू धान बोने के साथ-साथ शाऊ धान बोने की भी तैयारी कर रहे हैं। पेट सब करवाता है। हम से तो बनमानुस ही अच्छा है उसे तो न आहू और शाऊ धान बोने की चिन्ता सताती है न शाली धान की! उस का जाल बना रहे, ब्रह्मपुत्र में मछलियों की कमी नहीं।"

"अपना अपना भाग है।"

बाबा जानते थे कि आहू और शाऊ धान में यह अन्तर है कि जहाँ आहू ज्येष्ठ आषाढ़ में पकता है वहाँ शाऊ बहुत देर से पकता है। आहू के

लिए केवल चार-पाँच महीने चाहिएँ—माघ में बोया और ज्येष्ठ-आषाढ़ में काट लिया, पर बाऊ तो बहुत ढीलम-ढालम था माघ में बोते थे आहू के साथ-साथ और अगहन-पूस में काटते थे—पूरे आठ-नौ महीने बाद। अगहन-पूस ही में तो शाली की फसल कटती थी। शाली तो वैसे बैसाख से ही शुरू हो जाती थी, जब इसकी पनीरी लगाई जाती थी। सावन में शाली की पनीरी खेतों में रोपी जाती थी और अगहन में शाली कट ली जाती थी। यदि पनीरी लगाने के तीन महीनों की गिनती न की जाय तो रोपने और काटने के बीच तो वही चार-पाँच महीने लगते थे। सब यह भी जानते थे कि आहू और शाली में इतना ही अन्तर है कि आहू रंग में लाल होता है। बाऊ धान भी रंग में कुछ-कुछ लालिमा लिये रहता था। जिस खेत में एक वर्ष शाली लगायेंगे उसमें प्रतिवर्ष शाली ही लगायेंगे, शिवसागर में ऐसा ही होता था। कभी-कभी आहू और बाऊ को उनकी अपनी अपनी जमीन में न बोकर किसी शाली वाली जमीन में बोकर देखते थे, पर आहू और बाऊ वाली जमीन में लाख यत्न करने पर भी शाली उतनी अच्छी नहीं होती थी जितनी उस जमीन पर जहाँ वह हमेशा से रोपी जाती थी।

"जहाँ तक धान की फसलों का सम्बन्ध है," राजाराम बोला, "ये तीन ही फसलें हैं—आहू, बाऊ और शाली। इन में भी आहू और बाऊ भले ही एक साथ इसी माघ महीने में ही बोते हैं, पर जब आहू को जेठ आषाढ़ में काटते हैं तो बाऊ की बालियाँ पकनी तो दूर रहीं अभी लगनी भी आरम्भ नहीं होतीं।"

अब्दुल कादिर ने हँसकर कहा, "अरे दादा, ये तो अल्लाह के खेल हैं—किसी को पहले पकाये किसी को पीछे।"

"यह तो तुम भी मानोगे कि बाऊ जैसा ढीलम-ढालम और कोई धान नहीं।"

"अरे दादा, इस में आदमी क्या करेगा? तुम्हारे हाथियों में भी तो सब-के-सब एक-जैसे तेज नहीं होते।"

"यह तो ठीक है।"

"सब अल्लाह का खेल है, दादा! अल्लाह ने तो तरह-तरह के आदमी बनाये हैं। हमारे दिसाँगमुख ही को देख लो, एक आदमी से दूसरा आदमी कितना अलग नजर आता है।"

"आदमी कितने भी अलग अलग क्यों न हों, हमारे दिसाँगमुख में तो तीन ही जातियाँ हैं—नेपाली, मीरी और आसमिया, पर मुसलमान तो अपने को आसमिया ही मानते हैं।"

अब्दुल कादिर ने हँसकर कहा, "तो तुम हमें आहु, बाऊ और शाली से मिला रहे हो? इस में बाऊ तो मीरी ही हुए, दादा!"

"फसलें तो तीन हुईं, पर धान की किस्में तो अनगिनत हैं, अब्दुल कादिर!"

"अरे हाँ, दादा! यह तो हम भूल ही रहे थे। 'गोमधी' 'कनकु मग', 'रंगा आहा', गरुड़ पखी', 'भोगी बोरा', 'मदमसी' 'बरा' और 'बगा'—धान की ऐसी-वैसी न जाने कितनी किस्में हैं।"

"धर्मानन्दी भी तो मछलियों की किस्में गिना सकता है।"

"अरे छोड़ो, दादा! तुम तो मजाक करने लगे। तुम्हारा क्या है—न धान की चिन्ता, न मछली का जंजाल बस आ गई पेन्शन बैठे-बिठाये। माधव तुम्हारी जमीन सँभाले बैठा है और तुम्हें कोई चिन्ता नहीं सताती। उस से लेकर आधी जमीन मुझे क्यों नहीं दे छोड़ते, दादा!"

"तुम्हारे पास अपनी जमीन क्या कम है? हम करने का या रहे हो!"

"नीलमणि तो कहता है कि दिसाँगमुख में ही उसकी काशी है, दादा!"

"तो तुम भी दिसाँगमुख को ही काशी मान बैठे? अच्छा विचार है।"

अँधेरा हो रहा था। माधव ने उठकर लालटेन जलाई, अब्दुल कादिर ने गम्भीर होकर कहा, "रोशनी भी क्या चीज है! लालटेन की तो हम इतनी कदर करते हैं, पर अल्लाह मियाँ ने दिन के लिए जो इतना बड़ा

सूरज बनाया है, उसके लिए तो हम मल्लाह मियाँ के शुक्रगुज़ार नहीं होते।"

इतने में आधार और साधन आ निकले। आधार ने छूटते ही कहा, "हम एक शुभ समाचार लाये हैं, बाबा! मीरी पंचायत ने यह निर्णय किया है कि इस बार मरूना के शोक में चैत की दबूर-पूजा बन्द रखी जाय और आगे चलकर आश्विन की दबूर-पूजा के अवसर पर, जब मरूना की मृत्यु की पहली बरसी पड़ती है, दबूर-पूजा सब के लिए खोल दी जाय।"

बाबा कुछ न बोले। अब्दुल कादिर ने गम्भीर होकर कहा, "यह तो अच्छा फैसला है, हमारे मल्लाह मियाँ को भी पसन्द आयेगा।"

बत्तीस



"तुम कभी-कभी इतने उदास क्यों नज़र आने लगते हो ?" सुभद्रा ने पास आकर कहा।

"मैं सोचता हूँ कि रामलाल बाबा ने कितना जादू कर दिखाया है। पहले तो कभी ऐसा नहीं हुआ था। मल्लना की मृत्यु का बोझ अब तक अकेले बाबा ही ढोते आये हैं। वह ठीक कहते हैं कि मल्लना की चिता की राख अभी ठण्डी भी न हुई थी कि—" मधुप कहते-कहते रुक गया।

"तुम्हारी ये बातें कभी ख़तम भी होंगी ! मेरे तो कान पक गये इन्हें सुनते-सुनते। यह ठीक है कि मल्लना काले नाग के डसने से मर गया था। यह भी ठीक है कि हमारे विवाह की तिथि शीघ्र निकल आई थी। सारी दुनिया विवाह करती है। हम ने भी कर लिया तो हम से क्या अपराध हुआ ?"

"बाबा तो यही कहते थे कि हम मल्लना की चिता की राख ठण्डी हो जाने देते।"

"तो बाबा को करना चाहें तो कर लें।"

"तुम तो लाल मिर्च क्यों बन रही हो। हरि-हरि हे माधव !"

सुभद्रा जानती थी कि मधुप ने उसे चिढ़ाने के लिए ही 'हरि-हरि हे माधव' की रट लगाई है। यदि वह भगत जी की लड़की है तो इसका यह अर्थ तो नहीं कि उसके सम्मुख भगत जी के प्रिय बोल का उपहास मधुप।

सूरज बनाया है, उसके लिए तो हम मल्लाह मियाँ के शुक्रगुज़ार नहीं होते।"

इतने में आचार और साधन आ निकले। आचार ने छूटते ही कहा, "हम एक शुभ समाचार लाये हैं, बाबा! मीरी पंचायत ने यह निर्णय किया है कि इस वर्ष मलना के शोक में चैत की दमूर-पूजा बन्द रखी जाय और आगे चलकर आश्विन की दमूर-पूजा के अवसर पर, जब मलना की मृत्यु की पहली बरसी पड़ती है, दमूर-पूजा सब के लिए खोल दी जाय।"

बाबा कुछ न बोले। अब्दुल कादिर ने गम्भीर होकर कहा, "यह तो अच्छा फैसला है, हमारे मल्लाह मियाँ को भी पसन्द आयेगा।"

बत्तीस



"तुम कभी-कभी इतने उदास क्यों नज़र आने लगते हो ?" कुम्भदासा ने पास आकर कहा।

"मैं सोचता हूँ कि पन्नालाल काका ने कितना काबू कर दिखाया है। पहले तो कभी ऐसा नहीं हुआ था। मल्लना की मृत्यु का बोझ अब तक अकेले काका ही ढोते आये हैं। वह ठीक कहते हैं कि मल्लना की चिता की राख अभी ठण्डी भी न हुई थी कि—" मधुप कहते-कहते रुक गया।

"तुम्हारी ये बातें कभी खतम भी होंगी ? मेरे तो कान पक गये इन्हें सुनते-सुनते। यह ठीक है कि मल्लना काले नाग के डसने से मर गया था। यह भी ठीक है कि हमारे विवाह की तिथि शीघ्र निकल आई थी। सारी दुनिया विवाह करती है। हम ने भी कर लिया तो हम से क्या अपराध हुआ ?"

"काका तो यही कहते थे कि हम मल्लना की चिता की राख ठण्डी हो जाने देते।"

"तो काका जो करना चाहें सो कर लें।"

"तुम तो नाम सिर्फ कवी का रटते हो। हरि-हरि हे माधव !"

कुम्भदासा जानती थी कि मधुप ने उसे चिढ़ाने के लिए ही 'हरि-हरि हे माधव' की धार लगाई है। यदि वह भगत जी की भी लाडली है तो इसका यह अर्थ तो नहीं कि उसके सम्मुख भगत जी के प्रिय बोल का उपहास करे मधुपुत्र।

उठाया जाय।

"चैत की दबूर-पूजा मीरी लोगों ने इस बार बन्द रखी।" अतुल ने गम्भीर होकर कहा, "पहले तो कभी ऐसा नहीं हुआ था।"

"तो हम क्या करें?" सुलताना ने नाक-भौं चढ़ाई। "और यदि आरिकन की दबूर-पूजा का द्वार सभी को सब के लिए खोलने का फैसला भी हो गया तो क्या हुआ?"

"तुम समझती हो यह साधारण बात है। अब विश्वसिमुख वाले एक सुखी होकर रह सकेंगे।"

"मैं यह नहीं मान सकती।"

"यह साधारण-सी बात भी तुम्हारी बुद्धि में क्यों नहीं आती?"

"मीरी लोग अपने को राजहंस मानते हैं और असमिया लोगों को वो सूअर से भी घटिया समझते हैं। नेपालियों को वे सूअर का दरजा देते हुए भी कतराते हैं। उस दिन सुना नहीं था, साधन मीरी क्या कह रहा था?"

"पिछली बातों को भुला देना ही अच्छा है।"

"भई बातें भी कौन-सी हैं जिन्हें याद रखा जाय?"

"यह बात तो कल की खतम हो गई कि साधन मीरी ने धनसिंह को गन्दे चूहे की गाली दी थी।"

"और यह कि उस ने धनसिंह का सिर तोड़ डाला था?"

"उसका बस तो बस का मर गया।"

सुलताना ने मुँह मटकाकर कहा, "यह कहना ठीक नहीं। उसके सिर पर अभी तक पट्टी बँधी है।"

"नये दारोगा ने धनसिंह को न भड़काया होता, तो मुकदमा शिवसागर कभी न जाता।" अतुल गम्भीर नजर आ रहा था।

"कभी यह भी सोचा कि धनसिंह का क्या दोष था? यह तो कोई भी कर सकता है कि पैसे देकर मादी खरीद ले। धनसिंह ने भी यही किया। उस ने एक मीरी की मादी खरी नहीं केवल आधी खरीद ली थी। यह कौन-सा अपराध था?"

"यही तो मैं भी कह रहा था।"

"तो क्या अब नेपालियों के सिर टूटने बन्द हो जायेंगे?"

"नेपालियों की वकालत तुम ने कब से आरम्भ कर दी?"

"मीरी सोचते हैं कि असमिया और नेपाली की मिली भगत है और दोनों मिलकर उन्हें दियाँगमुख से खदेड़ना चाहते हैं।"

"असमिया और नेपाली भी तो मीरियों को अपना शत्रु मानने लगे थे।"

"सो तो वे अब भी मानते हैं और मानते रहेंगे।"

"यह तो न कहो।"

"तुम बस इतनी-सी बात पर रीझ गये कि एक बार मीरियों ने अपनी दबूर-पूजा नहीं मनाई और आये को दबूर-पूजा में सब को आने की आज्ञा दे दी।"

"अब वे हाथ-पैर बाँधकर किसी को 'येगुम' में नहीं डालेंगे, जैसे मल्ला को डाल दिया था।"

"तो क्या इस से आपस की शत्रुता मिट जायगी? यह सब दिखावा है। आजकल बाबा भी भोले हैं जो इनकी बातों में आ गये।"

"असल बाबा तो स्वयं मीरी हैं। उनका प्रभाव तो सभी पर है। क्या मीरियों से यह बात छिपी हुई है कि असमिया और नेपाली बाबा पर जान देते हैं?"

"साधन और धनसिंह में जो शत्रुता है, वह तो इस से समाप्त नहीं हो गई। और यह भी क्यों भूल रहे हो कि नये दारोगा के साथ मिलकर साधन मीरी शानू को गाँव-बूढ़ा की पदवी से हटाकर आधार मीरी को गाँव-बूढ़ा बनाना चाहता है।"

"हमें शान्ति रखनी चाहिए।"

"यह शान्ति नहीं कायरता है।"

"कभी आग से भी आग बुझी है? आग तो पानी से ही बुझती है।"

"अपना ज्ञान अपने पास रखो। मैं ने तो बड़े बड़े ज्ञानियों को भी

झगड़ा-फसाद होते देखा है। लाखन मीरी तो सब से बड़ी भूल किया है दिसौंगमुख का गाँव-बूढ़ा बरुमिया नहीं मीरी होना चाहिए। ढेर बात हुई भला!"

"और यदि बापू स्वयं ही यह बात मान जायें या मैं बापू को राजी कर लूँ गाँव की भलाई के लिए?"

कृष्णाप ने हँसकर कहा, "सूअर गिर गया गड्ढे में, वाह—जिसका उसका स्थान है!"

"वाह सिपाही! वाह सिपाही! मेरी बात तो तुम समझोगी ही नहीं, कृष्णाप्रा!" अतुल ने उठकर अपनी पत्नी का सिर थपथपाया, "मैं कहता हूँ, शान्ति बड़ी वस्तु है। शान्ति से ही महावत हाथी को चलाता है। शान्ति से ही नाविक नाव खेता है। तुम तो भगत की भी लड़की हो, शान्ति की बात तुम से अधिक कौन समझ सकता है!"

"भक्ति और शान्ति तुम अपनी ही मन-मुट्ठी में छिपाकर रखो।" कृष्णाप ने हँसकर कहा, "बड़ी-बड़ी बातें केवल कहने को होती हैं।"

"दमनास दत्ता ने मीरी, बरुमिया और नेपाली को एक-दूसरे के समीप लाने में कैसा जादू कर दिखाया।"

"तो क्या मीरी यह स्वीकार करना छोड़ देंगे कि नेपाली लोगों ने दूध के धन्धे पर तो इस प्रदेश में अधिकार कर ही रखा है अब वे मीरियों की माटी जमीन पर उन्हें बेघर करने पर तुले हुए हैं।"

"मीरी ये बातें स्वयं थोड़े ही कहते हैं।"

"तो और कौन कहता है?"

"उनके मुख से दारोगा बोल रहा है।"

"कौन दारोगा? नारायण भी तो मामूली में बदली हो गए।"

"नारायण गया, गोपीनाथ आया। क्या अन्तर पड़ता है? पुलिस तो पुलिस है। फिरंगी की पुलिस तो वही करेगी जो फिरंगी चाहेगा।"

"किस में ऐसी शक्ति है कि फिरंगी से टक्कर ले?"

"देवकान्त जो काम कर रहा है, वह तो किसी से छिपा नहीं।"

"देवकान्त तो भागा-भागा फिरता है।"

"देवकान्त क्या कर रहा है, यह भारती अधिक जानती है।"

शुक्तारा ने मुँह बनाकर कहा, "भारती मजदूर की लड़की ही सही, पर उसे बदनाम क्यों करते हो?"

शुक्तारा जानती थी कि देवकान्त के लिए अतुल के हृदय में सम्मान की भावना है। वह यह भी जानती थी कि देवकान्त का पथ अतुल का पथ नहीं है अतुल कभी देखा पाप नहीं करेगा जिस में उसे देवकान्त के समान छिप कर रहना पड़े इसका शुक्तारा को पूरा विश्वास था।

"पहले तो मुझे देवकान्त से शिकायत थी कि वह विसौंगमुख की बात सुनकर कलकत्ता की बात क्यों सोचता है और अब—"

"और अब तुम देवकान्त के भक्त बने जा रहे हो!"

"सुनो तो, अब से उस ने मामुली में कार्य आरम्भ किया है—"

नारायण भी मारामगा है। वह कहता लेगा कि देवकान्त याद रखेगा।"

"देवकान्त को तुम इतना बुरा क्यों समझती हो?"

"तुम भी तो उसे बहुत अच्छा नहीं समझते। तुम ने ही तो कहा था कि पिस्तौल और बम वाला रास्ता तुम्हें बिल्कुल पसन्द नहीं है। देवकान्त का तो यही रास्ता है चाहे वह कलकत्ता में रहे चाहे मामुली में।"

"उपाय अलग अलग हो सकते हैं, पर लक्ष्य तो एक ही है।"

"तुम तो कहा करते हो कि जब तुम सो जाते हो तब भी खेत की माटी तुम्हारा पीछा करती है, तुम्हारे साथ सोती है खेत की माटी! अब यह बात भूल गये?"

"ना तो मैं अब भी कहता हूँ।"

"मजदूर का काम है मशीनों पकड़ना, किसान का काम है खेती-किसानी और सिपाही का काम है लड़ना। देवकान्त सिपाही हो सकता है, पर तुम तो किसान हो।"

घर के पोखर के किनारे टहलते हुए अतुल और शुक्तारा देर तक बातें

करते रहे। अब तो सूर्योदय हो रहा था, नहीं तो गाय दुहने का समय था।

"गाय मैं दुह लूँगी।" कुन्तारा मुस्कराई।

"अपना रूप तो देखो।" अतुल ने हँसकर कहा, "दिन पूरे हो रहे हैं और कहती है—गाय मैं दुह लूँगी।"

कुन्तारा लजा गई। पोखर में तैरती हुई बतखें कैं-कैं कर उठीं, जैसे वे भी अतुल के साथ सम्मिलित होकर कुन्तारा को छेड़ रही हों।

अतुल ने प्रसंग बदलते हुए कहा, "नये दारोगा गोपीनाथ, शिवप्रसाद और विष्णुराम का गुट बन गया है। तीनों ने मिलकर चौकसी मचा रखी है। बेगार के मारे दिलौंगमुख का नाक में दम आ गया है।"

"तुम अकेले क्या कर सकते हो!" कुन्तारा ने बलपूर्वक कहा, "मैं कहती हूँ, तुम इन बातों में न पड़ो तो अच्छा है।"

"मैं अकेला नहीं हूँ। रामलाल काका मेरे साथ हैं, तो समझो सारा दिलौंगमुख साथ है। एक बीज वे हैं जो खेत में बोये जाते हैं, फसल उगती है, बालियाँ पकती हैं, फसल कटती है। एक फसल वह है जिसे नये विचारों की फसल कहेंगे। नये विचार भी नये बीजों के समान बोये जाते हैं।"

कुन्तारा बतखों के समीप चली गई। एक बार फिर बतखें कैं-कैं कर उठीं, जैसे वे अतुल की बात दोहरा रही हों। सूरज की किरणें पोखर के जल पर झिलमिला रही थीं। बतखों के तैरने से उठती हुई हिलोरें बड़ी भली प्रतीत हो रही थीं। कुन्तारा ने पलटकर कहा, "तो अब जाकर दूध दुह लो। देखते नहीं, सूरज नारियल से भी ऊँचा उठ गया।"

तेंतीस



लिली खिलखिलाकर हँस पड़ी, जैसे नीले रंग की गुड़िया सजीव हो उठी हो और क्षण-मात्र में ही वह बोल उठी हो।

नीरद यह निर्णय न कर सका कि लिली आकाश पर तारों की पाँत को देखकर हँस रही है या उसे कोई भूली हुई बात याद आ गई है।

नीली फ्राक में लिली परी-कथा की नायिका प्रतीत हो रही थी। सुनहरे बूँदों पर सुनहरे रिबन चमक रहे थे। नीले आकाश पर दूर तारों की पाँत नज़र आ रही थी। भारत अपनी जन्मभूमि को लौट रहे थे। यह तो ऐसी बात नहीं थी जिस पर एक अंग्रेज़ लड़की को हँसी आने लगे। नीरद जानता था कि लिली को उस की बातों में रस आता है। पर यह भी जानता था कि मेडिकल कालेज में एम० बी० तक शिक्षा पाने के बावजूद लिली की रुचि साहित्य में ही अधिक है। विज्ञान की महत्ता तो वह स्वीकार करती थी, पर साहित्य ही सब से अधिक उस के जीवन का अंग बन गया था।

शायद लिली को किसी सहेली की याद आ गई या वह देखकर के प्रश्न करने पर हँस रही है नीरद यह समझने का यत्न कर रहा था लिली क्यों हँस रही है! हँसने की क्या बात है! जाड़े के अन्तिम दि है, साँझ का समय है। समुद्र की विशाल जलराशि पर हमारी नाव जा रही है। समुद्र तो बहुत ही शान्त और गम्भीर नज़र आ रहा

लिली ब्रह्मपुत्र पर तो हँसने से रही। नीलकण्ठ और बन्दी भाव चला रहे हैं। मैं लिली के समीप बैठा हूँ। मेरी पुस्तक में वह रस लेती है और इस पुस्तक में तो उसके डैडी भी कुछ कम रस नहीं लेते। उसके डैडी तो कई बार पूछ चुके हैं कि कितना काम बाकी रह गया है। उसके डैडी तो इधर से उधर करने के पक्षपाती हैं। उसकी मम्मी इस प्रसंग को अधिक महत्व नहीं देती। लिली की आत्मा में आश्रम रम गया है, वह हिन्दुस्तान के स्वतन्त्रता आन्दोलन के विरुद्ध भी नहीं है, पर वह गांधी जी के अहिंसा वाले उपाय को ही अच्छा समझती है। कलकत्ता में वह देवकान्त से कहा करती थी—"मैं इसके बिलकुल विरुद्ध नहीं हूँ कि हिन्दुस्तान स्वाधीनता माँगे पर गांधी जी के उपाय से ही स्वाधीनता ली जाय, तो अच्छा होगा।' इसके उत्तर में देवकान्त कहा करता था—'तुम भी तो थोड़ा-सा प्रयत्न करो, चाहे किसी भी उपाय से सही।' शायद लिली यह सोचकर हँस रही है कि एक हिन्दुस्तानी लड़के की मूर्खता का इस से बड़ा नमूना क्या हो सकता है कि वह एक अँग्रेज लड़की से अपने देश को मुक्त कर हिन्दुस्तान के स्वाधीनता आन्दोलन के आगे बढ़ने में सहायता देने की आशा करे।

"क्या सोच रहे हो, नीरद !" लिली ने ब्रह्मपुत्र की लहरों से ध्यान हटाकर कहा।

"एक मन्त्र सुनोगी लिली !" नीरद ने हँसकर कहा, "यह ब्रह्मपुत्र का मन्त्र है।"

"जरूर !" कहकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ी, जैसे उसकी नीली फ्राक और गुलाबी चूँघर भी उसका समर्थन कर रहे हों।

नीरद ने मन्त्रोच्चारण आरम्भ किया :

ब्रह्मपुत्रो महाभाग शान्तनु कुलनन्दन।
अमोघ गर्भ सम्भूत पापं लौहित्य मे हर॥

लिली ने प्रसन्न मुद्रा में कहा, "यह तो कोई पुराना संस्कृत मन्त्र है। इस में क्या कहा गया है !"

"इस में कहा गया है—हे महाभाग्यवान ब्रह्मपुत्र ! हे शान्तनु कुल-नन्दन, हे अमोघ शक्ति के गर्भ से जन्म लेने वाले, हे लौहित्य, मेरे पाप हरो।" नीरद की मुस्कुराहट पहले से अधिक गम्भीर हो उठी।

मिली की प्रसन्नता की सीमा न रही। नीरद को लगा कि मिली इस मन्त्र पर नहीं, समस्त संस्कृत-कविता पर हँस रही है। या शायद मिली मुझ पर हँस रही है। मिली की हँसी की उपेक्षा करते हुए उस ने कहा, "चैत मास में बसन्त अष्टमी के दिन बंगाल और असम में लाखों व्यक्ति ब्रह्मपुत्र में स्नान करते हुए इस मन्त्र का उच्चारण करते हैं।'

मिली की हँसी रुकने में ही नहीं आ रही थी। नीरद को लगा कि शायद मिली उसके वस्त्रों पर हँस रही है। सफेद धोती, सफेद कमीज़, नीरद को यही वेश पसन्द था।

"ब्रह्मपुत्र को लौहित्य क्यों कहते हैं, जानती हो मिली ?" नीरद मुस्कराया।

मिली हँसती रही। जैसे उसे यह जानने की तनिक भी चिन्ता न हो। पर नीरद के होंठों तक आए हुए शब्द पीछे न हट सके, 'यह बहुत पुरानी कथा है, मिली ! जब परशुराम ने पिता की आज्ञा से माता का सिर कुल्हाड़े से काट डाला, तो कुल्हाड़ा उस के हाथ से छूटता ही न था। कहते हैं उसकी माता का रक्त ब्रह्मपुत्र में गिरने से इसका जल रक्ताभ हो गया है। लौहित्य और रक्ताभ पर्यायवाची हैं। माता का वध करने के पश्चात् बहुत समय तक परशुराम का मानसिक सन्तुलन डाँवाडोल रहा। ब्रह्मपुत्र के एक कुण्ड में नहा कर ही परशुराम को शान्ति उपलब्ध हुई। यह कुण्ड अब तक परशुराम कुण्ड कहलाता है।"

नीलकण्ठ चाय पीते-पीते गाने लगा।

ब्रह्मपुत्र कानो उ, पद्मपूरी रूपी
आमी गला धोय आर
अदूभर नीमीता, ब्रह्मपुत्र देवता !
तामोल दो मानीना पार।

शिली ने गम्भीर होकर कहा, "यह गीत तुम अपनी पुस्तक में अवश्य दे सकते हो, मीरा !"

मीरद मुस्कराया, "ब्रह्मपुत्र के स्नान-मन्त्र से भी कहीं अधिक मुझे यह असमिया लोकगीत अच्छा लगता है—'ब्रह्मपुत्र के किनारे बरहमबूरी गाछ है जहाँ हम ईंधन लाने जाते हैं। इसे बहाकर मत ले जाना, ब्रह्मपुत्र देवता ! हमारी इतनी भी क्षमता तो नहीं कि ताम्बूल से ही तुम्हारा सत्कार कर सकें !' ब्रह्मपुत्र और जन-जीवन का कितना बढ़िया सन्तुलन है।"

शिली ने हँसकर कहा, "जब ब्रह्मपुत्र में बाढ़ आती है, तो वह किसी की प्रार्थना पर ध्यान नहीं धरता।"

"असम में घर-घर सुपारी के पेड़ नजर आते हैं। घर में कोई भी आये उसे पान-ताम्बूल अवश्य देते हैं। निर्धन-से-निर्धन व्यक्ति भी ताम्बूल का टुकड़ा तो हर अवस्था में भेंट कर सकता है।" मीरद उत्तर की प्रतीक्षा में शिली की ओर देखने लगा।

शिली गम्भीर होकर बोली, "कवि कहता है कि हमारे पास ताम्बूल तक नहीं है जिस से ब्रह्मपुत्र का सम्मान किया जा सके; पर प्रश्न तो यह है कि यदि उसे ताम्बूल भेंट कर भी दिया जाय, तो क्या ब्रह्मपुत्र अपनी बाढ़ की लहरों में बरहमबूरी का पेड़ बहा ले जाने का विचार छोड़ देगा ! मुझे तो इस विचार पर हँसी आने लगती है।"

"तुम प्रकृति को एक अन्धी और बहरी शक्ति मानती हो !"

"बिलकुल !"

'मनुष्य ने प्रकृति में अपना रूप डालने का प्रयत्न किया है, यहाँ तक कि अपने अनुभव को ही नहीं उस ने अपने हृदय ज्ञान तक को प्रकृति में रचाने की परम्परा को जन्म दिया है। अब तो यह परम्परा बहुत पुरानी हो गई। प्रत्येक देश की कविता में इसके उदाहरण मिलते हैं, जैसे प्रकृति भी मनुष्य के समान सोचती हो, जैसे वह कभी मनुष्य पर खुश हो जाती हो, और कभी उस से बदला लेने की बात सोचती हो; पर देखना तो यह है कि यह दृष्टिकोण कहाँ तक ठीक है।"

नीलकण्ठ ने अपनी ही बात छेड़ दी, "मैं और बन्नी जुड़वाँ भाई हैं।" यह कहकर वह हँस पड़ा।

बन्नी ने हँसकर कहा, "हमारा विश्वास है कि यह बात ब्रह्मपुत्र भी जानता है।"

नीरद बोला, "अब कहो, लिली ! यदि तुम्हारी बात ठीक है, तो ब्रह्मपुत्र कैसे जानता कि बन्नी और नीलकण्ठ जुड़वाँ भाई हैं ?" वह लिली की आँखों में झाँकने लगा।

"सुना है नारायण दारोगा मजदूरों में बहुत अत्याचार कर रहा है, नीरद बाबू !" नीलकण्ठ ने प्रसंग बदलकर कहा, "कुछ देवकान्त बाबू को भी पता है ?"

"नया दारोगा गोपीनाथ दिसाँगमुख में कौन-सा कम अत्याचार कर रहा है ?" बन्नी ने गम्भीर होकर कहा, "पहले नारायण दारोगा, चिदम्प्रसाद और विष्णुराम का गुट था, अब इस गुट में नारायण के स्थान पर गोपीनाथ आ गया। तीनों ने धाँधली मचा रखी है। बेगार के मामले में तीनों एक ही बात हैं।"

लिली बोली, "क्या हमारा विष्णुराम भी कुलियों पर अत्याचार करता है ! चिदम्प्रसाद के सम्बन्ध में भी मैं ने कभी नहीं सोचा था कि वह ऐसा आदमी है।"

नीलकण्ठ ने क्रोध से पूछते हुए कहा, "चिदम्प्रसाद को दफा ही रहने दीजिए। उसका 'बगरी-भूगा सरकारी अस्पताल' किस प्रकार बना, यह तो दिसाँगमुख में सभी जानते हैं।"

"सभी जानते हैं तो देवकान्त की माँ क्यों नहीं जानती ?" नीरद ने आश्चर्यपूर्वक पूछा, "वह क्यों चिदम्प्रसाद की प्रशंसा करती है ? पिछले बरस जब वह बीमार थी तो चिदम्प्रसाद ने उसे पेशगी रुपया दिलवाया था और दवा-दारू मुफ्त रही।"

"एक पर दया दिखाकर चिदम्प्रसाद सौ पर जुल्म ढाता है।" नीलकण्ठ को और भी क्रोध आ गया, "यही तो उसकी चालाकी है। उस ने

पहले लोगों से कहा कि थोड़े-थोड़े रुपये दो, उस का इस अस्पताल में भाग होगा और लाभ सब में बाँटा जायगा। जिन लोगों ने रुपये दिये, पीछे उन्हें वैसे ही टरका दिया गया वे तो यही कहेंगे कि शिवप्रसाद ने ठगी का खेल रचाया है।"

बन्नी बोला, "देखनाक ही एक दिन शिवप्रसाद का खेल बन्द करायेगा।"

लिली कुछ न बोली। वह ब्रह्मपुत्र की विशाल जलधारा को देखती रही। ठण्डी हवा चल रही थी। नीरद ने प्रसंग बदलकर कहा, "अब बसन्त आयगा फूल खिलेंगे।"

लिली मुस्कराई "किसी भी देश की कविता को उठा कर देख लो, फूलों की महत्ता जरूर मिलेगी।"

"कविता में कवि फूलों से बातें करता है।" नीरद ने गम्भीर होकर कहा, "पर यदि तुम्हारी बात सत्य है कि प्रकृति एक अन्धी और बहरी शक्ति है, तो मैं पूछता हूँ कि कवि फूलों से कैसे बातें करता है?"

अभी सूर्य सिर पर नहीं आया था। नाव चली जा रही थी। नीलाम्बर और बन्नी प्रसन्न थे। कभी उन के सिर पर से कोई पक्षी गुजर जाता, कभी कोई मछली उछलकर अपनी मुखाकृति दिखाती और फिर डुबकी लगा जाती।

नीरद बोला, "जब बसन्त आता है तो सब वृक्षों पर एक साथ क्यों नहीं आता? किसी पर पहले आता है, किसी पर बहुत पीछे।"

"यही तो प्रकृति का खेल है।" लिली ने तेजी से गर्दन घुमाकर सुनहरे घूँघरों को झटक दिया।

"यदि प्रकृति एक अन्धी और बहरी शक्ति है, तो पहले तो यही समझ में नहीं आता कि फूल कैसे खिलते हैं और फिर यदि फूल खिलते भी हैं तो एक साथ क्यों नहीं खिलते? ऐसा क्यों होता है कि किसी वृक्ष में बसन्त की उमंग पहले जाग उठे और किसी बावरे को अनुराग की पदचाप तक सुनाई न दे सके।" नीरद ने मुस्कराकर लिली की तरफ देखा।

लिली आज बहुत प्रसन्न थी। उस ने गम्भीर होकर कहा, "यह बात तो तुम ने एक बार कलकत्ता में भी कही थी, जिस रोज हम बुटैनिकल गार्डन देखने गये थे। देवकान्त भी था हमारे साथ। देवकान्त ने तुम्हें जो जवाब दिया था मुझे वह भी याद है।"

"देवकान्त ने क्या जवाब दिया था?" नीरद ने पानी में हाथ डाल कर बालक के समान खेलते हुए कहा "देवकान्त ने कहा था कि जैसे बसन्त में कोई पेड़ पहले खिल जाता है और कोई बहुत पीछे, इसी तरह कोई देश संसार की प्रगति में पहले कदम बढ़ाता है कोई पीछे।"

लिली मुस्कराई और फिर उस ने प्रसंग बदलकर कहा, "वह तुम्हारा भानुम क्या कर रहा है?"

"वह क्या करेगा?" नीरद ने हँसकर कहा, "उस का विवाह हो गया। अभी अगले ही दिन मिला था तो गोपीनाथ टाटेया की शिकायत करने लगा कि वह तो नायपत्र से भी अधिक अत्याचार कर रहा है। जब तक कोई काम करने के लिए आगे न आये, बात नहीं बनती। आगे आने के लिए प्राणों की बाजी लगानी पड़ती है।"

लिली गम्भीर होकर बोली, "कभी-कभी तुम्हारे मुँह से देवकान्त बोलने लगता है। बात तो बसन्त की चल रही थी।"

नीलकण्ठ ने जोर से चप्पू चलाते हुए कहा, "जंगल में तो बसन्त झूमता-झूमता आता है। हर पेड़ के कान में कहता है—श्रीमान् जी, जागो, मैं आ गया। अब कोई पेड़ बसन्त की बात पर कान न धरे, तो क्या करे बसन्त बेचारा?"

बन्ती बोला, "सब पेड़ों को तो बसन्त आदेश नहीं दे सकता कि अभी खिल जाओ। कोई पेड़ मरे फागुन में खिलता है, तो किसी पर चैत में भी फूल नहीं खिलते। वह पेड़ बैसाख में भी खिलने का नाम नहीं लेते, जेठ में जाकर कहीं उन पर फूल खिलने का मजा नजर होता है।"

"बसन्त में आती है बसन्त पञ्चमी।" नीलकण्ठ ने प्रसंग बदला, "ब्रह्मपुत्र में पुण्य-स्नान कर के उसी दिन पाप धुला करते जाते हैं।"

"नीलकण्ठ, तुम ने तो कोई पाप नहीं किया होगा ?" लिली मुस्काई, "तुम्हें पाप धुलाने की क्यों चिन्ता लगी है ?"

बन्नी ने हँसकर कहा, "पाप धुलाने की चिन्ता तो गोपीनाथ दारोगा, शिवप्रसाद और विष्णुराम को होनी चाहिए।"

नीरद बोला, "देवकान्त की बात ठीक मालूम होती है। जैसे बसन्त सब पर आता है—किसी पर आगे, किसी पर पीछे, वैसे ही हर गाँव जागता है—कोई आगे, कोई पीछे।"

लिली ने हँसकर कहा, "चला हुआ कारतूस दोबारा नहीं चला करता। तुम्हारी पुस्तक कहाँ तक पहुँची ? क्या तुम यह पुस्तक ब्रह्मपुत्र जितनी ही लम्बी लिखना चाहते हो ?" यह कहकर लिली देर तक हँसती रही। फिर वह सँभलकर बोली, "नीलकण्ठ, अब नाव को वापस सिसौंगमुख ले चलो।"

चौंतीस



चाँदनी रात में नौका-विहार का इतना आनन्द किसी को पहले कभी नहीं आया था। नीरद उसे स्टीमर तक पहुँचाकर चला गया था। उसे रह-रहकर यह बात खटक रही थी कि आज उस ने नीरद से यह क्यों कह दिया था—कभी-कभी तुम्हारे मुँह से देवकान्त बोलने लगता है!' फिर नीलकण्ठ के शब्द उसकी कल्पना को छू गये—सुना है नारायण दारोगा मामूली में बहुत अत्याचार कर रहा है! वह सोचने लगी, नीलकण्ठ ने नीरद से यह भी तो कहा था आज—कुछ देवकान्त बाबू का भी पता है? और फिर कम्मी के मुँह से निकले हुए शब्द उसकी चेतना को कुरेदने लगे—क्या दारोगा गोपीनाथ डिमशिमपुर में कौनसा कम अत्याचार कर रहा है?'

स्टीमर में अपने कमरे की खिड़की से किली ब्रह्मपुत्र को देखती रही, जो चाँदनी की झीनी चादर ओढ़े ध्यान-मग्न फ़क़ीर हो रहा था। उसके मन में कई तरह के भाव उठ रहे थे। मन-ही-मन उस ने फ़ैसला किया, आज मैं अपनी डायरी में साफ़-साफ़ शब्दों में कह दूँगी—डण्डे के बल पर हम यहाँ बिलकुल नहीं रह सकते! उसकी कल्पना में देवकान्त का चेहरा घूम गया, जैसे देवकान्त कह रहा हो—मैं तुम्हारे स्वप्न की तरह हूँ, हिंसा में मेरा विश्वास इसी तुम लोगों के अत्याचार ने ही दृढ़ किया और अब मेरे सामने ऐसा रास्ता है, जिस पर चलने से मुझे कोई नहीं रोक सकता!

लिली से हटकर वह विशालकाय दर्पण के सामने खड़ी हो गई और देर तक केश सँवारती रही। पीछे से एकाएक मम्मी का चेहरा दर्पण में मुस्करा उठा।

"कहाँ तक हो आये!" मम्मी ने आगे आकर पूछा, "नीरद को डिनर के लिए क्यों न रोका?"

"उसे घर जाने की जल्दी थी, मम्मी!" लिली ने गम्भीर होकर कहा, "घर जाकर वह अपनी पुस्तक लिखने बैठ जायगा।"

"कब पूरी होगी उसकी पुस्तक?" मम्मी की आँखें चमक उठीं, "उस से कहो, हमारी भाषा में भी इसका अनुवाद अवश्य छपवाये।"

"पहले लिखी तो जाय बेचारे की पुस्तक, मम्मी!" लिली खिल खिलाकर हँस पड़ी। फिर ज़रा सँभलकर बोली, "मैं सोचती हूँ, उसकी पुस्तक कभी पूरी नहीं होगी।"

"यह तो मत कहो, लिली! नीरद पक्का मेहनती आदमी है। वह ब्रह्मपुत्र पर ऐसी पुस्तक लिखने जा रहा है, जैसी दुनिया की किसी भी भाषा में किसी दूसरे दरिया पर नहीं लिखी गई। यह बात मैं तुम्हारे डैडी से भी कह चुकी हूँ। ब्रह्मपुत्र बहुत बड़ा दरिया है। ब्रह्मपुत्र पर बड़ी पुस्तक लिखने का नीरद का संकल्प मुझे तो दिल-जान से प्यारा लगता है, लिली!"

"कहीं तुम पर नीरद ने जादू तो नहीं कर दिया, मम्मी!' लिली प्रसन्न मुद्रा में बोली, "असम का पुराना नाम है कामरूप, और मम्मी, कामरूप का जादू तो प्रसिद्ध रहा है।"

बड़े ध्यान से लिली ने दर्पण में यह देखने की चेष्टा की कि जब वह हँसती है तो कहीं उसका चेहरा बिगड़ तो नहीं जाता। उसे याद था कि कॉलिज में किस प्रकार बहुत-सी हँसोड़ लड़कियों का चेहरा हँसते समय बुरी तरह बिगड़ जाता था।

"अच्छा तो तुम बाल सँवार लो!" यह कहते हुए मम्मी अपने कमरे की ओर चली गई।

दर्पण के सामने खड़-खड़ लिली गुनगुनाने लगी किसी असमिया

गीत की धुन थी। जैसे स्वयं ब्रह्मपुत्र इस धुन में अपने बोल सुना रहा हो। उसे लगा कि ब्रह्मपुत्र संसार के मानचित्र पर एक महान् नद है। मन ही-मन वह सोचने लगी—जब पहले-पहल तिब्बत में मान सरोवर झील से चल पड़ी होगी ब्रह्मपुत्र की जलधारा, तो उस ने कब सोचा होगा कि उसके सामने इतनी लम्बी मंज़िल है। फिर वह सोचने लगी कि नीरद ने भी यह बात नहीं सोची होगी कि उसकी पुस्तक इतनी लम्बी होती जायगी। केशों में कंघी करते-करते वह सोचने लगी कि सचमुच नीरद ने अपनी पुस्तक में ब्रह्मपुत्र की आत्मकथा प्रस्तुत करने का निर्णय कर रखा है। समय-समय पर वह नीरद के मुख से उसकी पुस्तक के कुछ प्रसंग सुन चुकी थी। वास्तव में कहीं-कहीं नीरद ने अपनी पुस्तक में ब्रह्मपुत्र के मुख से बड़ी पते की बातें कहलवाई हैं—"जिस शिला को मैं हिला नहीं सकता, उसे मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।" "ब्रह्मपुत्र जानता है कि पम्पू कितना गहरा जाता है।" "कथा कहने से कथा बढ़ती है सींकी फेरने से कान का छेद बढ़ता है माँ के पेट में कन्या बढ़ती है पगार में धान बढ़ता है; बाढ़ में बढ़ता हूँ मैं मेरा नाम है ब्रह्मपुत्र।" "छोटे-छोटे घर बनाओ, जितने चाहो बनाओ मुझ से डरो, मेरा नाम है ब्रह्मपुत्र!" "हाथी जिस हिसाब से लादा जाता है उसी हिसाब से खाता है जिस हिसाब से बड़ा होता है, उसी हिसाब से मैं फैलता हूँ फिर भी लोग मुझे गाली नहीं दे सकते क्योंकि मेरा नाम है ब्रह्मपुत्र!" "नरों में लघु है वह, जिसका समाज में सम्मान नहीं खाते-पीते घरों में लघु है वह, जिसके मराल में धान नहीं माँझियों में लघु है वह, जो मेरी विशाल जलधारा पर नाव खेने डरता है मैं हूँ साक्षात् ब्रह्मा—ब्रह्मपुत्र!" "धन पाने के लोभ में धोबी स्त्रियों की मेखला भी धोता है आगे-ही आगे बढ़कर सागर से जा मिलने की साध में मैं इन्द्र देवता से कहता हूँ—और बरसो, और बरसो!" ऐसी-ऐसी अनन्य सूक्तियाँ नीरद की पुस्तक की पाण्डुलिपि में हीरे-मोतियों की तरह जड़ी हुई हैं—यह बात सिली की कल्पना को गुदगुदा रही थी। कंघी करते-करते उसका

हाथ कहीं आहत नहीं रहा था। उस गीत के बोल वह फिर गुनगुनाने लगी। वही ब्रह्मपुत्र का गीत, जिसके उत्तर में ही शायद नीरद ने अपनी पुस्तक में लिखा था—'तुम्हारे किनारे मेरा घर है, जैसा चाहो, मेरे साथ व्यवहार करो!' वह सोचने लगी—नीरद बाबू ने अपनी पुस्तक में एक स्थल पर यह भी तो लिखा है—'धरती पर राजा राज्य करता है, और आकाश पर है इन्द्र देवता का राज्य, जिसके संकेत पर ब्रह्मपुत्र प्रवाहित होता है, मस्त हाथी की चाल से!' यह विचार सचमुच हँसाने वाला था, मस्त हाथी की चाल से ब्रह्मपुत्र की तुलना उसके ब्रॅम ब्र मस्तिष्क को कुरेदने लगी। एशिया के लोग क्यों तो यूरोप वालों से अलग हो जाते हैं, वह सोचने लगी क्यों ये लोग कल्पना की भूलभुलैयां में खो जाते हैं।

फिर उस ने ग्रामोफ़ोन खोलकर सातवीं सिम्फ़नी का रिकार्ड लगा दिया। अब खिलखिलाकर हँसने का कोई प्रश्न नहीं उठ सकता था। यह सिम्फ़नी तो ब्रह्मपुत्र जितनी गहरी है—वह सोचने लगी—यह सिम्फ़नी मुझे बचपन से ही प्रिय है; नीरद ब्रह्मपुत्र पर पुस्तक लिखता है, तो झक मारता है उस से कहीं अच्छा तो यह है कि सातवीं सिम्फ़नी का रिकार्ड बजाया जाय; नीरद की पुस्तक कौन पढ़ेगा!' स्टीमर पर बीथोविन की सातवीं सिम्फ़नी बज रही थी नीचे दस-बाहु ब्रह्मपुत्र धीरे-धीरे गम्भीर गति से बह रहा था।

सहसा लिली के मन में यह विचार उठा—मैं एक अँग्रेज की लड़की हूँ, तो क्या हुआ मैं असम देश की सेवा करूँगी। मैं अँग्रेजी 'मेडिसिन' द्वारा इस देश के रोगियों की सेवा करूँगी। धन्य है यह देश, जहाँ मेरा जन्म हुआ धन्य है ब्रह्मपुत्र, जो संसार के 'मैप' पर अद्वितीय है!'

फिर धुप का शब्द हुआ, जैसे पास ही कहीं कच्चा कगार टूटकर ब्रह्मपुत्र में धसा गया। लिली अन्यमनस्क-सी सोचने लगी—न्यडे के वश पर हम यहाँ बिलकुल नहीं रह सकते!

पैंतीस



बसन्त अष्टमी के दिन सब का मुँह ब्रह्मपुत्र की ओर था। अतुल और रामलाल काका आज मिलकर ब्रह्मपुत्र में स्नान कर रहे थे। आज तो डिब्रूगढ़ के सभी लोग मल-मलकर ब्रह्मपुत्र में नहा रहे थे। हर किसी को अपने पाप क्षमा कराने की चिन्ता सता रही थी। नीलकण्ठ और बन्नी भी क्यों पीछे रहते? आज तो शिवसागर-निवासी भी यहाँ स्नान करने आये थे। इतनी भीड़ तो यहाँ किसी भी मेले पर नहीं होती थी।

"यह कथा तो तुमने भी सुनी होगी?" नहाते-नहाते रामलाल काका ने कहा।

"कौनसी?" अतुल मुस्कराया।

"यही कुत्ते की जन्म-कथा।"

अतुल को यह बात विचित्र-सी लगी—हम ब्रह्मपुत्र में स्नान कर रहे हैं, और इस शुभ अवसर पर काका को कुत्ते की जन्म-कथा सूझ रही है। उसे मौन देखकर काका ने कहा, "क्यों, नहीं सुनोगे?"

"अच्छा, सुना डालो, काका!" अतुल ने अनमने-भाव से कहा।

काका ने कहना आरम्भ किया:

"जब ब्रह्मा ने कुत्ते की रचना की, तो उस से कहा—धरती पर जाओ और अपने लिए स्वामी चुन लो, और—"

"और कुत्ते ने आकर भद्र आदमी को अपना स्वामी चुन लिया।"

मधुरा को हँसी आ गई, "काका, यह किधर की कथा है ?"

"सुनो तो !" काका कहता चला गया, "धरती पर आकर कुत्ते ने सब से पहले हाथी को अपना स्वामी बनाना चाहा, और हाथी ने—"

"हाथी ने इन्कार कर दिया।" मधुरा ने टोककर कहा, "तुम तो तीस वर्ष हाथियों के बीच रह आये हो, काका ! तुम ने किसी हाथी से ही पूछ लिया होता कि उसके पुरखों ने कुत्ते का स्वामी बनने से क्यों इन्कार कर दिया था।"

"सुनो तो। हाथी समझ गया, उसका विशाल शरीर देखकर ही तो कुत्ता उसे अपना स्वामी बनाने आ रहा है। उसने सोचा कि इन्कार कर दे, पर वह चुप रहा। कुत्ते ने समझा, ठीक है, हाथी राजी हो गया। रात हुई, तो कुत्ते ने बड़े वेग से चलती हुई हवा में हिलते पत्तों की आवाज सुनकर भूँकना आरम्भ कर दिया, और—"

"और हाथी डर गया।" मधुरा ने हँसकर कहा, "पर हाथी क्यों डर गया था, काका ?"

"हाथी ने कुत्ते को बता दिया—भूँकना तो ठीक नहीं, जंगल में बाघ तुम्हारी आवाज सुन लेगा, तो आकर तुम्हें मार डालेगा। कुत्ता समझा—इस हिसाब से तो बाघ हाथी से भी बलवान है, क्यों न फिर बाघ को ही अपना स्वामी बनाया जाय ! वह झट बाघ के पास पहुँचा—"

"बाघ ने क्या कहा ?"

"बाघ ने कहा—तुम मुझे अपना स्वामी मानते हो, तो मैं तुम्हारा स्वामी हूँ। रात हुई, तो तेज हवा में हिलते-डोलते पत्ते शोर मचाने लगे। कुत्ता भूँकने लगा। बाघ ने कहा—पास ही शिकारी ताक में होगा; वह आकर तुम्हें मार डालेगा।' कुत्ता सोचने लगा—इस हिसाब से तो शिकारी ही अधिक बलवान् हुआ !"

"फिर क्या हुआ ?"

"शिकारी ने कुत्ते की बात मान ली। रात को हवा चलती, तो कुत्ता अपने स्वभाववश भूँकना आरम्भ कर देता और शिकारी

प्रसन्न होकर उसकी पीठ प्यार से थपथपाने लगता। तब से कुत्ता आदमी के पास रहने का अभ्यस्त हो गया।"

ब्रह्मपुत्र में स्नान करने वालों का कोलाहल पहले से बढ़ गया था। दूर से मीलमणि भागता हुआ आया। उसका साँस चढ़ा हुआ था। वह बहुत प्रसन्न दीखता था। रालास ने कहा, "क्या समाचार है मील मणि? आज तो तुम भी स्नान कर लो। अपने पाप तुम भी क्षमा करा लो।"

"मेरे पाप तो पहले ही क्षमा कर दिये ब्रह्मपुत्र बाबा ने, दादा!" मीलमणि मुस्काया।

"वह कैसे?"

"बस समझ जाओ, दादा!"

"कुछ कहोगे भी?"

"सुलतारा के पुत्र हुआ है। हमारी बराबेल में एक फूल खिल गया।"

"अच्छा तो जल्दी करो। वस्त्र उतारो, पहले स्नान कर लो।"

अतुल ने देखा—काका इस समाचार से बहुत प्रसन्न हैं। वह अपने असीम आह्लाद को मन में दबाये स्नान करता रहा।

"यह तो संसार है, बाबा!" मीलमणि ने ब्रह्मपुत्र में उतरते हुए कहा, "कोई प्रसन्न है, कोई उदास। किसी के लिए शुभ समाचार आता है, किसी के लिए दुःख की सूचना। इस विशाल संसार में मनुष्य अपना छोटा-सा संसार बसाकर रहता है।"

"जल्दी-जल्दी स्नान कर लो।" रालास ने गम्भीर होकर कहा, "यह ज्ञान फिर बघारना।"

रामलाल दोनों हाथों से पानी उछाल रहा था, जैसे हाथी अपनी सूँड से पानी उछालता है। अतुल ने देखा—काका आज उतना ही प्रसन्न है, जितना उस समय था, जब वह चाँदबूढ़ी से लौटने के पश्चात् धमालन्दी और आरती के मामे से छूटकर आमे पर प्रसन्न हुआ था।

"आज तो हमारे घर पधारना होगा, दादा!" नीलमणि ने आग्रह पूर्वक कहा।

"अवश्य।" रामलाल मुस्कराया और उसी तरह दोनों हाथों से पानी उछालता रहा।

अतुल की कल्पना में वे दिन घूम गये, जब जमाना रामलाल काका को 'हाथी काका' कहा करता था। काका हाथी ही तो था। तीस वर्ष तक हाथियों में रहने के कारण काका हाथी जितना सयाना हो गया था। बैठने-उठने और चलने फिरने के रंग-ढंग में ही नहीं, दोनों हाथों से पानी उछालकर हाथी के सूँड से पानी उछालने के अनुकरण में भी काका पूरा हाथी बन गया था।

दूर से एक कुत्ता भागता हुआ आ रहा था।

पास आकर वह कुत्ता बड़े ध्यान से काका की ओर देखने लगा। अतुल ने हँसकर कहा, "यह आ गया तुम्हारी कथा का नायक, काका! इस से पूछ देखो, अपना स्वामी चुनने में इस से भूल तो नहीं हुई?"

चतुर्दिक् स्नान करने वालों का शोर था। ब्रह्मपुत्र मुस्करा रहा था, जैसे कह रहा हो—मुझ से कोई भयभीत न हो, मैं तो देवता हूँ—साक्षात् ब्रह्मा।

छत्तीस



सात दिन से वर्षा का यही हाल था। आज फिर मूसलधार वर्षा हो रही थी। वर्षा की परवाह न करते हुए रत्न अपनी दुकान से धनसिंह की दुकान में आ गया।

"इस वर्ष दिसांगमुख का बचना कठिन है।" धनसिंह ने भर्राई हुई आवाज़ में कहा।

"तुम तो व्यर्थ ही घबरा गये!" रत्न ने उसका सेक करने के ढंग से एक हाथ की उँगली दूसरे हाथ की हथेली पर बजाते हुए कहा, "ब्रह्मपुत्र का पानी चढ़ सकता है, तो उतर भी सकता है।'

"पिछले दस दिन में जो कुछ पानी चढ़ गया, अभी तक उतरने का नाम नहीं लिया।"

"यह तो ठीक है, पर घबराओ नहीं। ब्रह्मपुत्र का कोप तो हम बचपन से ही देखते आये हैं।"

"हमारा घर ही निताशिया में पहले डूबेगा; अब यहाँ से ब्रह्मपुत्र दूर नहीं।"

"ब्रह्मपुत्र से इतना ही भय था, तो निताशिया बास्ता पर बेचकर ख़ाली सीमा में घर क्यों नहीं बना लिया? इसके दो लाभ होते—एक तो दुकान के समीप होता, दूसरे ख़ाली सीमा तक पहुँचने में ब्रह्मपुत्र को बहुत समय लगेगा।"

"इस वर्ष सारा निताशिया ब्रह्मपुत्र की भेंट होकर रहेगा।'

"तो इसकी क्या चिन्ता है, धनसिंह भाई ! सब के घर डूबेंगे, तो तुम्हारा भी सही। तुम ने बहुत पैसे बना लिये। बहुत आमदनी होती है, तो खर्च भी होना चाहिए।"

"लगता है ब्रह्मपुत्र ने इधर को करवट ले ली। पहले तो पानी की धार काफ़ी उधर को थी।"

"मेरी मानो तो अभी से अपना घर खाली करके सब सामान इधर ले आओ। इधर नया घर बना लो।"

"छू-मन्तर से तो घर बनने से रहा।"

धनसिंह और रत्न में ये बातें चल ही रही थीं कि कल्याण भगत आ गये। वे वर्षा में बिलकुल भीग गये थे। "अब भी समय है कि लोग हरिनाम की चादर ओढ़ने का विचार ठान लें।" भगत जी ने भीगी हुई चादर एक तरफ़ रखते हुए कहा।

रत्न बोला, "हरिनाम जपने से क्या ब्रह्मपुत्र उतर जायगा, भगत जी ?"

धनसिंह ने चाय का गिलास भगत जी के हाथ में थमाते हुए कहा, 'चाय पीकर थोड़ा गरम हो लो, भगत जी ! बात तो रत्न की ठीक है। अब मीरी लोग साल में दो बार दबूर-पूजा करते हैं, और सभी जानते हैं कि दबूर-पूजा तो असल में हमारी इन्द्र-पूजा ही है। इन्द्र भगवान् से यही प्रार्थना की जाती है न कि वे अपने घड़ों को तनिक कम ही उंडेलें। वर्ष की दूसरी दबूर-पूजा को अभी बहुत दिन भी नहीं हुए और वर्षा का यो हाल है, सब के सामने है। वर्षा होती रहेगी, तो ब्रह्मपुत्र और भी चढ़ेगा।"

भगत जी चाय का घूँट भरकर बोले, "सब अपने कर्मों का फल है। लोगों के विचार ठीक नहीं रहे। वैष्णव धर्म स्वीकार करने में लोग आगे नहीं आ रहे, तो भगवान् को क्यों दोष देते हैं ?"

"छोड़िये भगत जी, ये बातें तो पुरानी हो गई।" रत्न ने हँसकर कहा, "चूहा मारने से केला नहीं पकता। जिस शिला को आदमी दिशा

नहीं सकता, उसे नमस्कार करने बैठ जाता है।"

भगत जी अपनी ही दृष्टि से चले गये, "हरि मारे, तो रक्षा कौन करेगा? और हरि रक्षा करेगा, तो मारेगा कौन? यह किसी ने कहा है न—मृत्युकाल आ पहुँचने पर हरिनाम! उस से तो बात नहीं बनती। हरि से तो सदा यही कहना चाहिए—तुम्हारी माटी पर ही मेरा घर है। मिथन लंका में भी क्यों न चला जाय, उसके कर्मों से बोझ नहीं उतरता। पर सब से बड़ी बात तो पापों की गठरी उतारना है फिर हरि की कृपा होते देर नहीं लगती।"

"धनसिंह पर आपका प्रभाव नहीं पड़ सकता, भगत जी!" रत्न ने हँसी की फुलझड़ी छोड़ी, "धनसिंह का तो एक ही सिद्धान्त है—जो तुम्हारा है, वह मेरा है, और जो मेरा है उसे तुम्हारा बाप भी मुझ से नहीं ले सकता।"

भगत जी बोले, "जब तक मनुष्य संसार में है, वह मोह-माया से छूट नहीं सकता। सयाने कह गये हैं—ताम्बूल के पेड़ की जड़ में गोबर डालो, बाँस की जड़ में मिट्टी डालो, और उस नारियल की जड़ तुरन्त काट डालो, जो फल न दे। जिस प्रकार नारियल को फल लगता है, उसी प्रकार मनुष्य को भक्ति का फल लगना चाहिए। कभी हमारे साथ आउनियाटी सत्र की यात्रा करो, तो जीवन सफल हो जाय।"

रत्न ने हँसकर कहा, "तो फिर क्या ब्रह्मपुत्र में पानी बहना बन्द हो जायगा, भगत जी! धनसिंह की तो एक ही शर्त है। अपने हरि से कहकर इस बार सिवासिया बस्ती को बचा दीजिये, फिर तो सिवासिया के सारे नेपाली वैष्णव बन जायेंगे।"

भगत जी गम्भीर होकर बोले, "अब तक सिवासिया को ब्रह्मपुत्र काटकर नहीं ले गया, तो यह किसकी कृपा है?"

इतने में बगल में मीमाते हुए रामलाल काका और मंजुल आ पहुँचे।

"अरे मंजुल, तुम ने बताया ही नहीं कि तुम्हारे लड़का हुआ है!" धनसिंह ने हँसकर कहा, "यह बात इसलिए तो नहीं छिपा गये कि कहीं

वह न दिखाने पड़ जायें !"

रामलाल ने प्रसंग बदलकर कहा, "ब्रह्मपुत्र बहुत विकराल हो उठा है आज !"

"यह कोई नई बात तो नहीं है, काका !" रत्न ने गम्भीर मुद्रा बना ली, "नदी किनारे के पेड़ की जो स्थिति होती है, उसी स्थिति में रहते आये हैं हम दिसाँगमुख-निवासी ! ब्रह्मपुत्र हमारा देवता है, भले ही वह विकराल मगर बन जाये, भले ही शान्त-गम्भीर !"

धनसिंह और प्रफुल्ल कानाफूसी में खो गये। रामलाल को मूक देख कर रत्न ने कहा, "ऊपर इन्द्र देवता के घड़े टूट रहे हैं, नीचे ब्रह्मपुत्र अति भीषण और अति भयंकर हो उठा है। इस स्थिति में कौन है हमारा रक्षक !" यों ही रत्न ने अपनी बात खत्म की, वर्षा का वेग और भी बढ़ गया, जैसे इन्द्र देवता और ब्रह्मपुत्र में समझौता हो गया हो।

पानी छिड़का पड़ने लगा था, एक ही बौछार में सब भीग गये। मुट्ठी पर ठोड़ी टेके प्रफुल्ल बोला, "देवकान्त मामूली में भीग रहा होगा।"

सैंतीस



एक ओर आउनियायी सत्र था, दूसरी ओर था यह गाँव, जिसके सम्बन्ध में कुछ लोग कहते थे कि यह आउनियायी सत्र बनने के बाद आबाद हुआ था। स्वयं इस गाँव के लोगों का विचार था कि यह तो आउनियायी सत्र बनने से बहुत पहले बसा होगा, और इसी से इस सत्र को भी यह नाम मिला होगा।

थाने के बगीचे में नारायण कुरसी पर बैठा था। उसके हाथ में एक पुस्तक थी। पास वाली कुरसी पर अख़बार पड़ा था। दूर बादलों के पीछे सूर्य अस्त हो रहा था। बादलों के नीचे से जैसे अब तक कोई लाल गुलाल उछाल रहा था। फिर यह लाल रंग बैंजनी बन गया, बैंजनी रंग नारायण को बहुत प्रिय था, पर आज यह रंग भी उसे देर तक अपनी ओर आकर्षित न कर सका।

जब से वह डिसौंगमुख से बदलकर यहाँ आया था, उसकी सब से बड़ी चेष्टा यही रही थी कि किसी प्रकार देवकान्त हाथ आ जाय। यद्यपि उस ने कोई कसर न उठा रखी थी, फिर भी शिकार अब तक हाथ न आया था। यह पहला अवसर था कि उसे मुँह की खानी पड़ी। वैसे अब तक तो पुलिस विभाग में वह भीख के घोंसले से भी मांस ढूँढ लाने में गुरु माना जाता था।

सूर्य अस्त होने के साथ-साथ जैसे नारायण का सब साहस भी जवाब

दे रहा था, पर वह अब भी सोच रहा था—देवकान्त आज नहीं, तो कल अवश्य हाथ आकर रहेगा। वह भागकर कहाँ जायगा। मामूली तो नहीं बीस-एक मील लम्बी है, पाँच-एक मील चौड़ी होगी। इतनी बड़ी भी तो नहीं है मामूली। अंग्रेज तो मामूली से कहीं बड़े पूरे आसाम का मालिक है। आसाम का ही नहीं, अंग्रेज तो बंगाल का भी मालिक है। बम्बई, मद्रास और बिहार, यू० पी०, पंजाब और फ्रंटियर—सर्वत्र अंग्रेज का झण्डा फहराता है। मामूली से भी भाग जाय देवकान्त, तो वह कहाँ भी जायगा, वहीं पकड़ा जायगा। यहाँ मामूली में जंगल तो उतना नहीं है, कहीं-कहीं जंगली घास अवश्य दूर-दूर तक चली गई है—हाथी से भी ऊँची घास। इसी हाथी घास ने तो अब तक वर्षा और बाढ़ में भी देवकान्त की रक्षा की है।'

आज के अखबार की खबरें नारायण को पसन्द थीं। सब से आकर्षक खबर तो उसी बम-केस की थी, जो अब कलकत्ता की अदालत में चल रहा था। उसी मुकदमे का एक मुलजिम था देवकान्त, जो अब तक हाथ नहीं आया था। पहले हत्या करते हैं, फिर भागते फिरते हैं। चले हैं हिन्दुस्तान को आज़ाद कराने! इन से तो महात्मा गांधी फिर भी अच्छे हैं, वे भागते तो नहीं। जब भी अंग्रेज उन्हें पकड़ता है, वे खुशी से जेल चले जाते हैं।'

उसका बड़ा लड़का कलकत्ता में वकालत पढ़ रहा था उस से छोटी लड़की का विवाह उस ने जिस धूम-धाम से किया था, उसकी तो शिव सागर तक के लोगों ने प्रशंसा की थी। छोटा लड़का गोहाटी में पढ़ रहा था। दो वर्ष पहले उसे गोहाटी के कॉलिज में प्रविष्ट कराया था। पढ़ने में तो वह भी निपुण था। वह वकालत करने की अपेक्षा इंजीनियर बनना पसन्द करता था। वह तो अच्छा होगा। एक भाई वकील बनेगा, एक इंजीनियर।

नारायण का अपना विचार आरम्भ में यही था कि छोटा लड़का पुलिस-अधिकारी बने। फिर यह सोचकर कि इस विभाग में केवल बहुत

कम मिलता है, उस ने यह विचार छोड़ दिया था। हम ने तो किसी-न-किसी प्रकार अपना काम चला लिया। जो लोग पुलिस को 'घूस-विभाग' कहकर हमारे विरुद्ध विष घोलते हैं, उन्हें यह भी तो नहीं भूल जाना चाहिए कि वेतन में तो हमारा पार नहीं पड़ सकता। हमारे स्थान पर कोई भी हो, ऊपर की आमदनी के बिना तो गुज़ारा कर ही नहीं सकता। हमारी कौनसी खेती होती है? लोग हमें बेगार के लिए कोसते हैं, पर हम पूछते हैं—बेगार न लें, तो हम काम कैसे चलायें? जैसी हवा आजकल चल रही है; यदि लोगों को खुली छूट दे दी जाय, तो लोग तो थाने को धर्मशाला बना दें। पुलिस दारोग़ा गरदन ऊँची करके न घूम सके।

कांग्रेस की चलाई हुई हवा पर उसे क्रोध आने लगा। जेल जाने वालों पर उस हँसी आ रही थी। यह भी कोई काम है! एक साधारण सा व्याख्यान दिया और चल पड़े जेल का भात खाने! इस प्रकार भी भला कभी देश आज़ाद हुआ है? व्याख्यान में खादी और चरखे की ही बात करें ये लोग, तो कदाचित् हम भी इन्हें हाथ न लगायें। पर ये तो विद्रोह की बातें करते हैं। यदि ये लोग समझते हैं कि अंग्रेज़ कच्ची गोलियाँ खेलकर बड़ा हुआ है, तो यह उनकी भूल है। आनन्द करें; जैसा भी इनके मन में आता है करें—घर में रहें, चाहे जेल में। जेल तो बना ही इन लोगों के लिए है, या फिर चोर डाकुओं के लिए। अदालत में न्याय किया जाता है, जेल में बड़ा मुगतनी पकती है। काले पानी भी भेजता है अंग्रेज़, तो न्याय की ख़ातिर। फाँसी का दण्ड देता है, तो न्याय के नाम पर। न्याय तो महान् है। न्याय से ही सुख और शान्ति की स्थापना होती है। सुख और शान्ति के बिना तो कोई देश प्रगति नहीं कर सकता। पुलिस इस काम में अंग्रेज़ का दायाँ हाथ है। पुलिस के बिना तो अंग्रेज़ एक क़दम नहीं चल सकता। फिर कोई पुलिस को बुरा कहता है, तो उसकी भूल है। घूस भी बहुत अधिक तो नहीं चलती पुलिस में। बस उतनी ही मात्रा ली जाती है, जितनी से काम चल जाय। पुरोहित भी तो दक्षिणा लेता है, और यदि कोई चार पैसे हमारे हाथ पर

रखता भी है, तो हम आठ पैसे का लिहाज करते हैं। यह तो 'इस हाथ से, उस हाथ दे' वाली बात है। कानून तो कानून है। अंग्रेज का कानून तो भला कैसे बदल सकता है? जो हमारा लिहाज रखता है, उसके साथ हम भी लिहाज करते हैं।'

रात उतर आई थी। नारायण कुरसी पर बैठा रहा। देवकान्त पर हाथ न रख सकने का उसे बहुत खेद था।

यहाँ आठनिवायी में न बनसिंह था, न कोई रत्न न कोई शिवप्रसाद या विष्णुराम। उसे दिसाँगमुख की याद सताने लगी।

यह गाँव दिसाँगमुख की अपेक्षा बहुत छोटा था। आठनियायी सब बहुत बड़ा था पर यहाँ तो भले लोग रहते थे। उन से तो पुलिस को घूस और बेगार मिलने से रही। दिसाँगमुख इसलिए भी अच्छा है कि शिवसागर समीप है। आदमी अधिकारियों की नजर में रहता है, उन्नति के अवसर भी अधिक मिलते हैं।'

बहुत दिनों से नारायण ने सरकार के सम्मुख यह सुझाव रखा था कि शिकारी गाँव में थाना बनाया जाय, जिस से मामुली के उस ओर पर सहज ही अंकुश रखा जा सके। यह बात वस्तुतः बहुत विचित्र थी कि अब तक सरकार को शिकारी गाँव में थाना बनाने का विचार नहीं आया था। वह प्रसन्न था कि सरकार ने उसके सुझाव को मान्यता दी और अब एक महीने से शिकारी गाँव में थाना बना दिया था। पिछले सप्ताह ही सरकार की आज्ञा से नारायण शिकारी गाँव का दौरा करके आया था; यह देखकर उसे प्रसन्नता हुई थी कि थाने के लिए चार नई झोंपड़ियाँ सड़क के किनारे बनकर तैयार हो गई थीं। उस ने एक सभा बुलाकर लोगों को समझाया था—'अपने झगड़े निपटाने में आप लोगों को सुभीता होगा। पहले आपको अपने झगड़े बहुत दूर ले जाने पड़ते थे।' पर उसका भाषण कुछ लोगों को बहुत पसन्द नहीं आया था। एक अन्धे भिखारी ने उठ कर कहा था—'मैं तो कुछ देख नहीं सकता, दारोगा जी! पर मैं ने सुना है कि जो देख भी सकते हैं, उन्हें भी फिरंगी के राज्य में न्याय नजर नहीं

सकता !' लोगों ने उस आदमी को चुप करा दिया था, नहीं तो क्या जानें वह क्या कुछ बक जाता। एकदम मूर्ख और निरक्षर हैं मामुली के लोग। इसीलिए तो दिवनिमुख वाले जब किसी का उल्लू बनाते हैं, तो उसे 'मामुली से आया हुआ' बताते हैं।

शिकारी गाँव वालों को यह भी तो ज्ञात था कि उनका थाना आउलियाटी थाने के अधीन है। नारायण दारोगा की पत्नी प्रसन्न थी आज मेरा पति दो थानों का दारोगा है, कल मेरे हाथों के लिए सोने के कंगन भी अवश्य बनेंगे।

पहरे पर नियुक्त सिपाही ने आकर कहा, "भोजन तैयार है, दारोगा जी !"

"जाकर कहो, थोड़ा ठहरकर आएँगे।" नारायण ने अनमने भाव से कहा।

सिपाही न जाने क्या सोचकर महाप्रभु की प्रशंसा आरम्भ कर दी। आज सवेरे के कीर्तन में वह भी सम्मिलित हुआ था।

"मुझे तो ऐसा लगता है दारोगा जी, कि हमारे पाप भगवान् भी क्षमा नहीं करेंगे।"

"तो जाकर तुम भी भक्त बन जाओ। हमारे भी मन में यह बात आती है कि भक्ति करके देखा जाय।"

एक दूसरे सिपाही ने आकर शिकायत की, "दारोगा जी, वह हमारे थाने के पिछवाड़े वाला मछुआ है न, आज उस ने मछली देने से इन्कार कर दिया।"

"क्या कहता था वह सूअर !"

"कहता था—जाओ जाकर कह दो जिस से भी कहना हो, मैं मुफ्त मछली नहीं दूँगा।"

"उसका बाप भी देगा मछली।" नारायण ने मुँझलाकर कहा, "चार जूते खाकर ही सीधा हो जायगा, उसे दूर से ठनका खड़काने की भी आवश्यकता नहीं होगी। सूअर को अभी नारायण के हाथ नहीं

लगे !"

इतने में बाहर से एक सिपाही ने आकर कहा, "शिकारी गाँव का थाना जला दिया गया, सरकार !"

"यह कैसे हो सकता है !" नारायण ने हाथ उठाकर कहा, "कौन लाया है यह खबर ? किस सूअर ने की है यह बकवास !"

अड़तीस



आउनियाटी सत्र से शिकारी गाँव जाने के लिए महाप्रभु की आज्ञा से सब से बड़ा हाथी मिल गया। नारायण को आशा तो न थी कि महाप्रभु अपनी सवारी वाला हाथी भेजकर सरकारी काम में हाथ बटाएँगे। जल्दी का काम था, इसलिए महाप्रभु ने भी सरकार का साथ देना इतना आवश्यक समझा। सरकार भी तो बस पहले आउनियाटी सत्र का ध्यान रखती है। क्या मजाल सत्र-निवासियों को कोई कष्ट होने पाये। कमिश्नर साहब दौरा करते हैं, तो सौ काम छोड़कर आउनियाटी अवश्य आते हैं फिर महाप्रभु ने अपनी सवारी वाला हाथी भेजकर सरकार के प्रति अपनी निष्ठा का प्रमाण दिया, तो यह साधारण बात है। इतनी आशा तो सहज ही की जा सकती थी। सरकार का एक थाना गाँव वालों ने जला डाला हो और इस मामले की जाँच-पड़ताल करने का काम सामने हो, तो कोई निरक्षर व्यक्ति भी झट समझ सकता है कि यह कितना आवश्यक कार्य है। आउनियाटी सत्र के अधिकारी तो बहुत विद्वान् हैं। भक्तगण उन्हें प्रभु कहकर सम्बोधित करते हैं; पहुँचे हुए भक्त उन्हें महाप्रभु कहना ही उचित समझते हैं। अब मैं भी तो उन्हें महाप्रभु कहता हूँ। उनके सम्मुख जाकर मैं भूल जाता हूँ कि मैं एक पुलिस दारोगा हूँ। उनके चरणों में बैठकर अपने पाप सामने आने लगते हैं। मन कहता है—नाम तो है नारायण, पर बेटा, सिर पर पापों की गठरी उठा

रखी है। इतनी भारी गठरी उठाये यमलोक तक कैसे पहुँचोगे? यमलोक के द्वार पर तो पूरी जाँच-पड़ताल होगी। झूठ-मूठ यह तो कहने से रहे कि तुम्हारी गठरी में पाप नहीं, पुण्य भरे हैं। नरक का द्वार ही दिखाया जायगा, बेटा! स्वर्ग का द्वार तुम्हारे लिए नहीं है। वे पुण्यात्मा और होते हैं, जो स्वर्ग में ही प्रवेश करते हैं। पर कोई बात हुई भला कि महाप्रभु की अनुकम्पा हो जाये और आदमी नरक में ही प्रवेश करे। महाप्रभु तो वैष्णवजन हैं। वह वैष्णवजन ही क्या हुआ, जो अपनी शरण में आये किसी व्यक्ति को वैष्णवजन न बना डाले! महाप्रभु जब मुस्कराकर देखते हैं मेरी ओर, तो लगता है कि मेरे पाप कट रहे हैं। पर मैं ने ऐसे पाप भी कौनसे किये हैं। महाप्रभु से क्या यह बात भूली हुई है कि ड्यूटी-तो-ड्यूटी है। सरकारी ड्यूटी में अपना कर्त्तव्य पालन भी ऐसे ही है, जैसे कोई भक्त भक्ति करता है। जब तक मुलजिम की पिटाई न की जाय, वह सच्ची बात बताता कब है? पुलिस तो वैसे ही बदनाम है। हम तो मामूली पिटाई से ही काम चला लें। वैसे ही कोई सब-सच कह दे, तो हम गर्द झाड़न जितनी पिटाई भी न करें। इन लोगों को बुरी आदत पड़ गई है। पिटाई का डर उठ जाये, तो ये लोग सब शान्ति-सुरक्षा भंग कर दें। शान्ति-सुरक्षा का तो महाप्रभु भी समर्थन करते हैं। कल को कोई आततायी सब को आग लगा दे, तो क्या महाप्रभु पुलिस[में] रिपोर्ट दर्ज नहीं करायेंगे? अवश्य करायेंगे। कोई बात हुई भला? शिकारी गाँव वालों को यह क्या सूझी? क्या इस प्रकार थाना बन्द हो जायगा? उस दिन उस थम्बे में कितनी मूर्खता की बात कही थी। कार का उद्घाटन ही तो प्रतीत हो रहा था। कहता था—शिकारी गाँव में किसी को भी तिरंगी का न्याय नज़र नहीं आता। तो क्या अब इस तरह तिरंगी का न्याय नज़र आने लगेगा? अब मारामारी के दाम लगेंगे, तो बेग अपने कर्मों को रोयेगा। सरकार का कोप अभी तक इन लोगों ने देखा ही नहीं।" — दामी सेना-राव डर मर रहा था।

महावत ने सड़क छोड़कर हाथी पास की सुरंग में प्रवेश किया, तो

नारायण के मस्तिष्क को झटका-सा लगा और वह महावत से बातें करने लगा।

"मामूली में दलदल वाले स्थान पर ही उगती है हाथी घास !" नारायण ने टंकार लगाई।

"हाँ, महाराज !" महावत ने पीछे मुड़कर देखा।

"हाथी घास नाम भी क्या सोचकर रखा है। मेरा तो विचार है, हाथी घास की किसी सुरंग में ही छिपा बैठा होगा वह सूअर का बच्चा !"

"किस को ढूंढ रहे हो, महाराज !"

"वह देवकान्त है न ! कलकत्ता का एक भगोड़ा। पहले हत्या करते हैं, फिर छिपे फिरते हैं !"

"किसकी हत्या कर दी, महाराज !"

"गाँव धर्मेश्वरी की।"

"रात के समय, या दिन के समय ! किस समय की गई यह हत्या !"

"हत्या तो हत्या है। इस से तो अन्तर नहीं पड़ता कि हत्या रात को की गई या दिन में।"

हाथी घास उसके कन्धों तक आ रही थी। महावत ठिगना होता तो उसका सिर भी हाथी घास की ऊँचाई से नीचा ही रहता।

महावत ने हाथी को तेज चलने के लिए उकसाया, और खाँसकर कहा, "इस प्रकार तो देवकान्त हाथ नहीं आयगा। उसे पकड़ना हो, तो पैदल घास की इन सुरंगों में से झाँक-झाँककर उसे ढूँढना चाहिए।"

नारायण ने सिर हिलाकर महावत के विचार की सराहना की, "कहीं देवकान्त इसी सुरंग में छिपा हुआ हमारी बातें न सुन रहा हो।"

महावत ने हँसकर कहा, "हमारा हाथी तो बहुत तेज भाग रहा है। देवकान्त क्या भागकर हमारा पीछा करेगा !"

हाथी और भी तेज भागने लगा। नारायण को लगा, जैसे हाथी ने उनकी बात समझ ली हो। ऐसे में देवकान्त कहीं दिखाई दे जाता, तो

नारायण उस पर गोली चला देता। उसे देवकान्त पर बहुत क्रोध आ रहा था। उसकी झुँझलाहट लोगों पर भी थी—ये लोग देवकान्त को पकड़कर हमारे हवाले क्यों नहीं कर देते!

महावत ने गम्भीर होकर कहा, "मामुली तो सीधा देश है, महाराज! यहाँ चोर नहीं, डाकू नहीं। मामुली में कोई ताला लगाना भी जरूरी नहीं समझता। यह बात तो हमारे महाप्रभु भी कई बार कह चुके हैं अपने उपदेश में! महाप्रभु कहते हैं कि मामुली तो—"

"स्वर्ग है धरती पर!" नारायण ने हंसकर कहा, "पर अब तो मामुली को भी बाहर की हवा लग रही है। देवकान्त का यहाँ आ छिपना भी इसकी एक दलील है।"

"महाराज, सरकार को थाने बनाने की जितनी चिन्ता है, उतनी हस्पताल बनाने की चिन्ता क्यों नहीं है?" महावत ने अवसर पाकर निशाना लगाया, "और सरकार, यह बात मैं अपनी ओर से नहीं, लोगों की ओर से कह रहा हूँ।"

नारायण को महावत की बात बहुत अप्रिय लगी, जैसे महावत के मुँह से देवकान्त बोल रहा हो। उस ने झुँझलाकर कहा, "तुम नये हस्पताल बनाने की बात कहते हो। मैं कहता हूँ, जो बड़ा हस्पताल मामुली में पहले से है, उसे भी बन्द कर दिया जाय; और बड़े हस्पताल के नीचे जो सात छोटे हस्पताल बनाने की स्कीम सरकार के सामने है, उसे भी रोक दिया जाय, जब तक देवकान्त को पकड़कर हमारे हवाले नहीं कर दिया जाता!"

महावत ने इस बात का कोई उत्तर न दिया। हाथी धीरे-धीरे चलने लगा था। नारायण ने डाँटकर कहा, "इस तरह तो शिकारी गाँव पहुँचने में भोर हो जायगी।"

"इतनी देर तो नहीं होगी, महाराज!" महावत ने पीछे मुड़कर देखा, और हाथी पर अंकुश चलाने लगा।

शिकारी गाँव पहुँचकर पता चला, थाने को आग लगाने वाला उसी

अन्धे का पुत्र है। बापू ने उस दिन गाँव की सभा में यह कहने की हिमाकत की थी—'मैं तो अन्धा हूँ, पर शिकारी गाँव के उन लोगों को भी, जिनकी आँखें ठीक हैं, फिरंगी के राज्य में न्याय नज़र नहीं आता।' और अब उसके पुत्र ने शिकारी गाँव का थाना जला डाला।

सामने थाने की जली हुई झोंपड़ियाँ राख का ढेर प्रतीत हो रही थीं। सीमा सिपाही और छोटा दारोगा बहुत घबराये हुए थे।

एक ओर एक वृक्ष के साथ लोहे की जंजीरों से एक नवयुवक को बाँध दिया गया था।

"तो यही है उस अन्धे सूअर का बच्चा!" नारायण ने अपनी बन्दूक के कुन्दे से उस नवयुवक के सीने पर चोट करते हुए कहा।

छोटे दारोगा ने आगे बढ़कर कहा, "इसका नाम राजू है, सरकार!"

"इसका सब राजू निकाल कर छोड़ेंगे!" नारायण भूखे शेर की तरह गुर्राया।

उनतालीस



सच्चे भी लड़का तो बापू ही था। शाली की फ़सल कटकर घर आ चुकी थी, और बाऊ धान भी दिया गया था। अब बापू पिछले-पिछले मर जाय, तो अन्ध विश्वपाल का क्या हाल होगा?—यह सोचकर शिकारी गाँव के लोग काँप उठते थे। अच्छा विश्वपाल अपने बापू के बिना जीवित नहीं रह सकता। बापू को कुछ हो गया तो विश्वपाल अपने प्राण त्याग देगा। बाप-बेटे के बिना माँ का भी बुरा हाल होगा, जाकर ब्रह्मपुत्र में कूद पड़ेगी—शिकारी गाँव में यह बात हर किसी की ज़बान पर थी। बापू की बहन पठशाली रो-रोकर बेहाल हो रही थी। उसकी आयु विवाह योग्य थी, और उसका विवाह बापू ने ही करना था।

कुछ लोग, जो बापू के विरुद्ध थे, हृदय से चाहते थे कि बापू की अभी और भी निढाल हो। वे चाहते थे कि बापू का हमेशा के लिए सीधा कर दिया जाय, और फिर वह लगातार मीरी की बेटी गोमी पर डोरे न डाले।

यह तो अच्छा हुआ कि बापू के बचपन के मित्र प्रभात और मुकुन्द किसी काम से चौंद-बूढ़ा मसिकर के साथ दिसाँगमुख गये हुए थे; वहाँ से उन्हें शिवसागर जाना पड़ गया था और वापस शिकारी गाँव पहुँचते तीन दिन लग गये थे। प्रभात और मुकुन्द यदि उस दिन गाँव में होते, जिस दिन प्यासी राव और मीर के बीच बासा जलाया गया था, तो यह असम्भव था कि वे पुलिस के चंगुल में फँसने से बच जाते। छोटा

दारोगा अचिन्तराम अब तक दाँत पीस रहा था और बार-बार नारायण दारोगा से कह रहा था—आग मले ही आदू ने लगाई थी, पर प्रभात और मुकम का भी इस मामले में कुछ कम हाथ नहीं था। अब क़ानून तो यह आज्ञा न देता था कि प्रभात और मुकम को भी फाँस लिया जाय, जब कि वे इस घटना के समय गाँव से बाहर थे और गाँव-बूढ़ा मणिधर जैसा खाता-पीता आदमी इसका साक्षी था। नारायण ने अचिन्तराम को पहले ही, जब यह बाना बनना आरम्भ हुआ था, यह बात समझा दी थी कि मणिधर को हर हालत में खुश रखा जाय, क्योंकि उसका विचार था कि मणिधर ही गाँव को देवकान्त के विपैले प्रचार से बचाकर रख सकता है।

आदू की पिटाई केवल इसीलिए तो नहीं हो रही थी कि उस ने आगे को आग क्या लगाई। यह तो बहाना था। असल बात तो यह थी कि किसी प्रकार देवकान्त हाथ आ जाय या तो आदू स्वयं मुँह से बक देगा, या हो सकता है कि देवकान्त उसकी पिटाई की खबर सुनकर शिकारी गाँव में चला आये और उसे झट गिरफ़्तार कर लिया जाये। बीच-बीच में आदू की पिटाई बन्द कर दी जाती थी नारायण पास आकर उसे पुच कारने लगता था।

आउटमिचारी सब का हाथी उसी दिन वापस भेज दिया गया था। नारायण अभी तक यहीं था। उसका विश्वास था कि शीघ्र ही देवकान्त का पता चल जायगा।

एक दिन आदू की पिटाई करते समय, उसकी माँ को सामने बिठा दिया गया। नारायण का विचार था कि आदू माँ की शर्म से देवकान्त का पता बता देगा। माँ रोती रही, आदू ने उफ़ तक न की। आख़िर पिटाई बन्द कर दी गई।

फिर एक दिन प्रभात और मुकम को सामने बिठाकर आदू को पीटा गया। अगले दिन नारायण को पता चला कि सताम मौंदी की बेटी गोपी से आदू का दिल मिला हुआ है। सताम और गोपी को बुलाकर सामने

बिठा दिया गया और एक सिपाही नारायण का हुक्म पाकर जादू को मिंजो-मिंजोकर जूते लगाने लगा। गोपी ने दोनों हाथों से आँखें बन्द कर लीं। वह जादू को इतनी बुरी तरह पिटते न देख सकी।

जो लोग अब तक पुलिस से दबते थे, वे भी हृदय से पुलिस के विरुद्ध हो गये। यह ठीक था कि थाने को जलाने की योजना देवकान्त की सुझाई हुई थी। यदि जादू की इतनी बुरी तरह पिटाई न की गई होती, तो गाँव-बूढ़ा मखियर और गाँव के दूसरे लोग मिलकर यह जिम्मेदारी ले लेते कि अब कभी ऐसा नहीं होगा।

शिकारी गाँव में थाना बनाये जाने के तो सभी विरुद्ध थे, क्योंकि यह नई बात थी। सब यही कहते थे—जब आज तक यहाँ थाना बनाये बिना ही सरकार का काम चल गया, तो अब क्यों नहीं चल सकता! पुलिस पास होगी तो लाभ की बजाय हानि ही अधिक होगी—यह सब का विचार था लोगों को ऐसा सोचने से कोई नहीं रोक सकता था। जादू की पिटाई ने इसे सिद्ध कर दिया था। मान लिया कि जादू का अपराध है, उसे जितना चाहो पीटो, चाहे फाँसी पर चढ़ा दो; पर जिसे सामने बिठाकर जादू को पीटा जाता है, उसका क्या अपराध है!

एक दिन कुछ लोग इकट्ठे हो गये और गाँव-बूढ़ा का साथ लेकर आदरपूर्वक नारायण से मिले। उन्हों ने शिकायत की—जादू की माँ को सामने बिठाकर जादू को क्यों पीटा जाता है! प्रभात और मुकन कितने ही जादू के मित्र क्यों न हों, पुलिस को यह अधिकार तो नहीं कि वह इन दोनों लड़कों को सामने बिठाकर जादू पर हाथ उठाये! सवाना मीरी और उसकी बेटी गोपी को सामने बिठाकर जादू की नगी पीठ पर मिंजो-मिंजोकर जूत लगवाना तो और भी बुरा है।

नारायण पहले तो बहुत गर्म हुआ और गाँव-बूढ़ा को भी कोसने लगा, पर जब लोग अपनी बात पर अड़े रहे, तो उस ने यह कहकर जान छुड़ाई—'आगे को इसका ध्यान रखा जायगा।'

जादू की पिटाई का सब से अधिक दुःख गोपी को था। उस ने प्रभात

और मुकन पर ज़ोर डाला—"किसी-न-किसी तरह देवकान्त तक यह समाचार अवश्य पहुँचाओ और उस से पूछो, अब क्या किया जाय !"

प्रभात ने धीरे से कहा, "तू घबरा मत, गोपी ! जादू का कुछ नहीं बिगड़ेगा ।"

गोपी की आँखों में आँसू थे ।

मुकन बोला, "जादू तो बहुत पक्का निकला । उस ने शिकारी गाँव की लाज रख ली ।'

गोपी जानती थी कि किस प्रकार प्रभात, मुकन और जादू तीनों देवकान्त से प्रभावित हुए । वह स्वयं भी तो देवकान्त से मिली थी । फिरंगी के राज्य की जो बुराई देवकान्त ने की थी, वह सोलह आने सच निकली । फिरंगी का राज्य तो पुलिस और सेना के अत्याचार का राज्य था । पुलिस का अत्याचार आँखों के सामने था । सेना भी अवश्य अत्याचार करती होगी । एक बात सच निकली, दूसरी भी सच होगी । गोपी यह भी जानती थी कि जादू अपने माता पिता का लाडला बेटा है । जब देवकान्त आया था, तो जादू ने अपने बापू दिक्पाल से पूछा था—"यदि मैं भी देवकान्त के साथ काम करूँ, तो कैसा रहे !" जादू तो बापू का लाडला बेटा है । बापू ने आज्ञा दे दी, पर स्वयं देवकान्त नहीं चाहता कि जादू हथेली पर जान रखकर आगे आये । प्रभात और मुकन के तो तीन-तीन चार-चार भाई हैं । उन्हें कुछ हो गया, तो घर वालों की अधिक हानि नहीं होगी । पर जादू तो अपने माता-पिता का इकलौता बेटा है, उसके बिना तो घर उजड़ जायेगा । घर में कमाने वाला वही तो है ।

देवकान्त के सम्बन्ध में शिकारी गाँव के गाँव-बूढ़ा मणिधर को पूरी खबर रहती थी । गाँव-बूढ़ा होने के नाते सरकार भले ही उसे अपना दायाँ हाथ समझती थी, पर उसके दिल में फिरंगी के विरुद्ध जो आग सुलग रही थी, उसे देवकान्त ने भड़का दिया था ।

प्रभात और मुकन ने रात के अंधेरे में मणिधर से सलाह की—"अब क्या पग उठाया जाय ?"

चालीस



बाँस-कुंज में मचान पर लेटे-लेटे देवकान्त ने स्वच्छ, निर्मल, तारों-भरे आकाश को बड़े ध्यान से देखा। टार्च जलाकर उसने कलाई पर बँधी घड़ी पर नज़र डाली; जेब में पड़े हुए पिस्तौल को टटोल कर देखा; ऊपर की जेब में लगे फाउंटेन पैन को छूकर देखा।

घड़ी ने बताया कि रात के बारह बज रहे हैं। आज पूस की अन्तिम तिथि थी। बाँसों की शाखाओं के बीच से उस ने देखा कि माघ बिहू के सिलसिले में गाँव के लोग 'मेजी' की आग ताप रहे हैं।

युवकों और युवतियों के मिले-जुले अट्टहास सुनाई दे रहे थे। कभी किसी गीत का बोल वातावरण में तैरने लगता था। देवकान्त का जी तो चाहता था कि वह भी मचान से उतरकर नीचे चला जाय और माघ बिहू की आग तापने वालों के साथ मिलकर वह भी अग्नि देवता को नमस्कार करे। यही तो इस त्यौहार की सब से बड़ी विशेषता थी। मचान पर पड़े-पड़े वह शीत से अकड़ा जा रहा था। उसने सोचा—आज कल नारायण बरुवा पूरे ज़ोर शोर से मेरी तलाश में है। शिकारी गाँव का थाना जलाये जाने की घटना भी बहुत ताज़ी है; वह स्वयं आउनिआटी सत्र से हाथी की सवारी करते हुए शिकारी गाँव में आ पहुँचा है और आजकल वहीं ठहरा हुआ है।' उस ने यह निर्णय किया कि वह मचान छोड़कर नीचे नहीं उतरेगा।

वह सोचने लगा—क्या खबर, नारायण अपने सिपाहियों के साथ गश्त कर रहा हो। मैं इतनी आसानी से तो उसके हाथ आने से रहा। मेरा पिस्तौल सलामत रहे। दो-चार आदमियों को तो मैं सहज ही ठण्डा कर सकता हूँ। यदि ऐसी ही बात हो जाय—जान पर खेल जाने की घड़ी सिर पर आ पहुँचे—तो मैं यह भी कर सकता हूँ। जीवित तो मैं नारायण के हाथ आने से रहा।

आकाश पर आकाश-गंगा भी तो आज बहुत सुन्दर लग रही थी। इन तारों में मेरी भी साँझ है, उसने सोचा—तारों के साथ तो मनुष्य का चिरकालीन सम्बन्ध है। जिस ग्रह में मेरा जन्म हुआ, वह भी तो इसी आकाश में होगा। क्या यह झूठ है कि एक विशेष ग्रह में जन्म होने पर आयु-पर्यन्त मनुष्य पर उस ग्रह का प्रभाव रहता है? इन में कौनसा तारा ऐसा है, जिसे मैं अपना तारा समझ कर देखता रहूँ?"

वह आकाश-गंगा का दृश्य बड़े ध्यान से देखता रहा। किसी स्थल पर उस ने पढ़ा था कि जो लोग शहीद हो जाते हैं, वे मर कर तारे बन जाते हैं। यह कैसे हो सकता है? या शायद यह ठीक है। तो क्या असंख्य शहीद हो चुके हैं संसार में? क्या ये सब तारे पहले मनुष्य थे? मनुष्य की कल्पना का भी कोई ठिकाना नहीं!"

बाँस की शाखाओं में से दूर काफी अन्तर पर चलती हुई 'भेजी' बहुत भली लग रही थी। आज सारा गाँव सुप्त था। देवकान्त सोचने लगा—वहाँ शिकारी गाँव में न जाने किस-किस पर हाथ डाला होगा नारायण ने! शिकारी गाँव की पीड़ा को इस गाँव वाले अपनी पीड़ा नहीं समझते। समझते होते तो यों माघ बिहू कैसे मनाते!

आकाश-गंगा पर भी उसे रह-रह कर क्रोध आने लगा। यदि यह सच है कि ग्रह-नक्षत्रों के साथ मनुष्य का सम्बन्ध होता है, तो यह वस्तु-स्थिति क्यों होती कि शिकारी गाँव में कुछ लोग पुलिस के हाथों बुरी तरह पिट रहे हैं और आकाश पर इतनी नयनाभिराम आकाश-गंगा अपनी छटा दिखा रही है? आज तो तारों को भी यह हर्षोल्लास नहीं दिखाना

चाहिए।"

मचान पर लेटे-लेटे उस ने कई बार करवट बदली कई बार वह कल्पना-धारा में बह गया—मुकुन्द और प्रभात पिट रहे होंगे बापू अभी इस कार्य में सम्मिलित नहीं हुआ होगा, मैं ने उसे समझा दिया था। जिस का बापू अन्धा हो, माँ बीमार रहती हो, उसके पकड़े जाने से तो बेचारों का घर ही उजड़ जायगा। बापू ने अवश्य मेरी बात मान ली होगी। मैं ने उस से कहा तो था—जब ऐसी स्थिति आ जायगी बापू, कि तुम्हारे मैदान में कूदे बिना काम ही न चल सके, तो मैं स्वयं तुम्हें हाथ बटाने के लिए कहूँगा अभी नहीं। अभी तो प्रभात और मुकुन्द ही काफी हैं। नारायण अब प्रभात और मुकुन्द पर गरज रहा होगा। या शायद प्रभात और मुकुन्द उसके हाथ आने से पहले ही भाग गये होंगे। अब शिकारी गाँव से समाचार मिले, तो पता चले।"

बार-बार उसका हाथ जेब में चला जाता था। पिस्तौल को टटोलते हुए वह सोचने लगा—काश मुझे नारायण को सदा के लिए ठण्डा करने का अवसर मिल जाय! सिपाही से उन्नति करते-करते उसे थानेदार बनने में न जाने कितने वर्ष लग गये। अब वह मुझे पकड़कर सरकार के सम्मुख अपनी कार्य-कुशलता का प्रमाण देना चाहता है। अधिक-से अधिक वह सर्कल इन्स्पेक्टर बन जायगा। यह भी कौन जानता है कि उसे यह अवसर अवश्य मिलेगा। शायद मेरे पिस्तौल की गोली उसकी छाती में लगे और वह सदा के लिए सो जाय।"

'मिती' की आग की ज्वाला ऊँची उठ गई थी। देवकान्त को लगा, नई लकड़ी डाली गई है। वह सोचने लगा—शीत काल में तो अलाव कैसे ही अच्छा लगता है। फिर यह तो माघ बिहू की 'मिजी' है। अग्नि देवता, मेरा नमस्कार स्वीकार करो।

उसकी दृष्टि आकाश-गंगा की ओर उठ गई। मन-ही-मन वह सोच कर कि मृत्यु के पश्चात् मनुष्य तारा बन जाता है, उस ने आकाश-गंगा के तारों की ओर ध्यान से देखा। नमस्कार, आकाश-गंगा। मेरे लिए

ध्यान रखना। मैं आ रहा हूँ। मैं बहुत शीघ्र आ रहा हूँ।"

उस के मस्तिष्क को ज़ोर का झटका लगा। अभी तो बहुत काम शेष है। अभी तो केवल शिकारी गाँव का थाना ही जलाया गया। अभी तो बहुत कार्य रहता है। नारायण भी क्या याद करेगा कि कभी देवकान्त से पाला पड़ा था। मालुमा के एक-एक थाने को आग न लगा दी, तो मेरा नाम देवकान्त नहीं। मालुमी के सम्बन्ध में यह तो विख्यात है कि ब्रह्मपुत्र के हाथों ही इसकी सृष्टि हुई है। यहाँ नर-नारी एकत्रित होते समझा बर्र लगे होंगे। मालुमी का माथा तो बड़ा उपजाऊ है। धन्य है मालुमी! मेरे कलकत्ता वाले मित्र सोचते होंगे कि देवकान्त कायर है। वे क्या जानें कि देवकान्त कितना आवश्यक काम कर रहा है! पाँच पाँच अंग्रेज़ों को ठग करने में मैं ने अपने मित्रों का हाथ बटाया। यह तो बहुत आसान था कि मैं भी पकड़ा जाता मुझ पर भी अभियोग चलता मुझे भी फाँसी हो जाती। पर यह जीवन इतना सस्ता भी क्यों बेचा जाय! बेचने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इस जीवन को यों इतना शीघ्र क्यों गँवाया जाय! मालुमी की माटी जितनी उपजाऊ है, उतने ही उप- जाऊ हैं मालुमी वालों के मस्तिष्क; नहीं तो मेरी बात, जो दिसाँगमुख वालों की समझ में न आई, शिकारी गाँव वालों की समझ में कैसे आ गई! अभी तो मुझे यह चक्कर चलाना है। मालुमी से अंग्रेज़ का बीज नाश न कर दिया, तो मेरा नाम देवकान्त नहीं। समूचा हिन्दुस्तान न जाने कब स्वतन्त्र होगा! पहले तो मालुमी ही स्वतन्त्र होगी। चाहिए तो यह था कि पहले दिसाँगमुख ही स्वतन्त्र होता, क्योंकि आज से पौने दो सौ वर्ष पूर्व अंग्रेज़ों का पहला स्टीमर दिसाँगमुख के घाट पर ही लगा था, और वहीं से पूरे आसाम देश में पराधीनता का बीज बोने का श्रीगणेश किया गया था। यह सोचते-सोचते वह निद्रा-धारा में बह गया।

उसकी आँख खुली, तो उसे याद आया कि आज तो स्वप्न में अतुल से ही नहीं, भाभी जुलतारा से भी बातें हुईं। अतुल इतना शीघ्र विवाह

के चक्कर में फँस जायगा, यह तो उस ने भूलकर भी नहीं सोचा था। स्वप्न में मामी मूलतारा बेटे को दूध पिला रही थी। अतुल आँखें झुकाये बैठा था, जैसे सोच रहा हो—अब देवकान्त के सामने आँखें कैसे ऊँची करूँ। उस ने अतुल के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा था—कोई बात नहीं, मित्र! तुम चाहो तो अब भी बहुत-कुछ कर सकते हो। विदेशी सरकार का तख्ता उलटने के लिए तो बहुत-कुछ करना होता है। हिंसा और अहिंसा दोनों ही सहायक हो सकती हैं। मैं जानता हूँ, हिंसा तुम्हें रुचिकर नहीं तो अहिंसा ही सही। कुछ तो करो, अतुल!"

भोर होने में अधिक देर न थी। उसे ध्यान आया, माजुली के चतुर्दिक् पानी है और यह आसाम की शेष भूमि से कटी हुई है। उसे यह दुःख सताने लगा कि तीस दिन से उसे खबर-कागज देखने को नहीं मिला। उड़ती चिड़िया जो खबर लाती है, यहाँ तो वही खबर मिलती है। न जाने कितने दिन तक खबर-कागज देखना सुलभ न हो, पिछली बार माजुली की सड़क पर जाते हुए एक व्यक्ति के हाथ में खबर-कागज देखा था। उस से लेकर मैं ने भी यह खबर-कागज पढ़ना चाहा, तो उस ने यह खबर-कागज मुफ्त ही दे दिया। वह उसे पढ़ चुका था। वह जोरहाट से आ रहा था। जोरहाट से चलकर वह कोकिलामुख पहुँचा; वहाँ से ब्रह्मपुत्र पार कर माजुली के किनारे आ लगा। पहले कमलाबाड़ी सत्र देखने गया, अब आउनियाटी सत्र देखने जा रहा था। उसके पास माजुली का बड़ा मानचित्र था, जिस पर विशेष रूप से यह सड़क दिखाई गई थी—माजुली में सब से ऊँचे स्थान पर निर्मित यह सड़क। माजुली के मानचित्र के अतिरिक्त उस व्यक्ति के पास किसी अँग्रेज़ की लिखी हुई एक पुस्तक भी थी, जिस में बताया गया था—वस्तुतः माजुली की लम्बाई बीस मील से कहीं अधिक है, वर्षा-ऋतु में बाढ़ आती है तो लम्बाई कम हो जाती है। इसकी बीस मील लम्बाई तो वर्षा-ऋतु में भी बनी रहती है। उसी प्रकार इसकी चौड़ाई भी पाँच मील से ड्योढ़ी तो सहज ही कही जा सकती है। पर वर्षा ऋतु में भी पाँच मील की चौड़ाई

तो सदा भनी रहती है। वैसे बाढ़ का ज़ोर अधिक बढ़ जाता है, तो माजुली के भीतर तक पानी आ जाता है। माजुली के एक गाँव से दूसरे गाँव तक जाने के लिए गुटिया नाव लेनी पड़ती है। माजुली वालों के लिए यह संकट वर्ष-वर्ष सताह तक रहता है। कुल मिलाकर माजुली में बीस-पच्चीस हज़ार की जनसंख्या तो अवश्य होगी। बहुत ही गँवार और निरक्षर लोग बसते हैं यहाँ। विद्या के नाम पर थोड़ा बहुत प्रकाश माजुली के कमलाबाड़ी, श्राउनिश्राटी, दक्षिणपाट और गड़ामूर—इन चार वैष्णव सत्रों में ही दृष्टिगोचर होता है। असम के धार्मिक जीवन में यह उल्लेखनीय है कि निराकार भगवान् के उपासक, वैष्णव सन्त शंकर देव और उनके साधक शिष्य माधवदेव के सम्प्रदाय ने अपने चार सत्र स्थापित करने के लिए माजुली को ही चुना। उस व्यक्ति ने मुझ से पूछा था—आप क्या काम करते हैं? मैं ने अपनी ठोडी पर हाथ फेरकर कहा था—एक दिन मैं भी श्राउनिश्राटी सत्र की यात्रा पर जाना चाहता हूँ। वह बोला—आज ही क्यों नहीं चलते मेरे साथ? मैं ने कहा था—आज नहीं, फिर किसी दिन आऊँगा। वह घूर घूर कर मुझे देखता रहा, जैसे कोई सी० आई० डी० का आदमी हो। मैं ने भी अपनी परशुराम-कुण्ड की काल्पनिक यात्रा की कहानी से उसे बहला दिया था। मेरी कहानी वह कितने मज़े से सुनता रहा था। सड़क से हटकर हम एक पोखर के किनारे जा बैठे थे। उसके पास केले थे। उस ने तीन केले मुझे भी दिये थे। पोखर में बत्तखें तैर रही थीं। मेरी आँखें उस अंग्रेज़ी की लिखी हुई पुस्तक पर जमी थीं। इस में माजुली के भूगोल पर ही अधिक ज़ोर दिया गया था। बाद में मरी हुई नदियाँ फिर से जीवित होकर माजुली के बीचों-बीच अपना ताना-बाना बुन देती हैं। ऐसे गाँव बहुत कम हैं, जो बाढ़ में डूबते नहीं। ले-देकर माजुली के एक सिरे से दूसरे तक लम्बाई के रुख गुज़रने वाली सड़क ही ऐसी ऊँची जगह है, जो बाढ़ के दिनों में लोगों के लिए सहायक सिद्ध होती है। वे अपने पशुओं को इस सड़क पर ले आते हैं; स्वयं पेड़ों पर मचान बनाकर दिन गुज़ारते

है।' 'मचान का ध्यान आते ही उस ने अपने मचान को घूरकर देखा—यह मचान तो सचमुच बड़ी सुन्दरता से तैयार किया गया है।'

पूर्व में नये रंग जाग रहे थे। अब उषा के घूँघट उठाने का समय आ रहा था। उसका ध्यान तो उसी पुस्तक की ओर था, जो उस ने उस दिन पोखर के किनारे केले खाते हुए पढ़ी थी उस समय वह बहुत भूखा था, केले स्वादिष्ट थे। उस लेखक की विदेशी मनोवृत्ति पर उसे देर तक क्रोध आता रहा था। भोर की प्रतीक्षा करते-करते वह क्रोध फिर से जाग उठा, जैसे उस अँग्रेज़ लेखक के शब्दों में बाद में नयी हुई नयी आग उठती है। उस अँग्रेज़ ने मासुली की हाथी घास की सुरंगों का विशेष रूप से उल्लेख किया था। हाथी घास के जंगल दूर-दूर तक चले गये हैं, यह तो उसने ठीक ही लिखा है। दलदल वाली जगह पर ही उगती है हाथी घास।' 'पर यह तो मासुली में हर कोई जानता है। यह लिख कर उस अँग्रेज़ लेखक ने कौन-सा तीर मारा? और उसकी पुस्तक तो बाहर वालों के लिए है, जो मासुली को नहीं जानते। अपनी एक यात्रा का उल्लेख करते हुए उस अँग्रेज़ ने यह भी तो लिखा है कि किस प्रकार उसने एक बार मासुली की सड़क के किनारे एक पेड़ पर बने हुए मचान पर एक रात बिताई थी। उस ने अपने मेज़बान के आतिथ्य का बदला यों चुकाया था कि अपनी बन्दूक से उस बाघ को मार डाला था जो पास के एक जंगल से सड़क पर आ गया था और कदाचित् वह बाघ बेचारे मीरी की गर्भवती गाय को मार डालता।

उस अँग्रेज़ पर देवकान्त को बुरी तरह क्रोध आने लगा। वह कहना चाहता था—हिन्दुस्तान के लोग गर्भवती गाय के समान हैं, फिरंगी बाघ के समान गाय पर झपटता है।'

उस ने जेब में हाथ डालकर अपने पिस्तौल को टटोलकर देखा—ठीक है, पिस्तौल अपने स्थान पर पड़ा है। उसे अपने ऊपर क्रोध आने लगा—पिस्तौल जेब में है, फिर भी मैं यहाँ छिपा बैठा हूँ।

वह गाँव मासुली की सड़क से चार मील भीतर की ओर था। यहाँ

से ढाई मील पर था कौसारी गाँव, जहाँ अधिकतर काछारी लोगों के घर थे। कौसारी गाँव से डेढ़ मील था शिकारी गाँव। उसकी दृष्टि आकाश पर जम गई। उषा का दृश्य उसे बहुत प्रिय था। उस अँग्रेज पर फिर क्रोध आने लगा—मामुली की उषा का तो साहब बहादुर ने भूलकर भी नाम नहीं लिया। मैं कहता हूँ—मामुली में उषा कितनी प्रिय लगती है, कितनी उत्कंठावाहक, कितनी पुष्ट, कितनी आनन्दप्रद!"

उसे उस दिन का ध्यान आ गया जब मामुली स्वतन्त्र हो जायगी। मामुली ही क्यों, जब सारा हिन्दुस्तान गुलामी की बेड़ियाँ तोड़कर खड़ा हो जायगा, जब यहाँ से अँग्रेजी साम्राज्य का तख्ता उखड़ जायगा।"

किसी स्वर्णकन्या के नयनाभिराम मानस के समान सूर्य ने मुँह बाहर निकाला, तो देवकान्त ने आँखों के बीच से भाँककर देखा। गाँव की ओर से गाँव-बूढ़ा रंजन आ रहा था। गाँव-बूढ़ा के हाथ में एक पोटली थी। देवकान्त समझ गया कि उसके लिए जलपान आ रहा है। उसे बहुत भूख लगी थी। ये लोग वास्तव कितने अच्छे हैं! उस ने सोचा—इन्हें मेरा कितना ध्यान रहता है! ठीक समय पर हर चीज मिल जाती है!

रंजन अब मचान के ऊपर आ गया था। उस ने पोटली देवकान्त को देकर पूछा—"ठण्ड तो नहीं लगी थी?"

"ठण्ड कैसे लगती?" देवकान्त ने हँसकर कहा, "'मैत्री' की आग जल रही हो गाँव में, और तुम्हारे देवकान्त को ठण्ड लगती! यह कैसे हो सकता था, काका?"

"पर 'मैत्री' की आग तो बहुत दूर थी," रंजन ने मचान के ऊपर पहुँचकर कहा, "लो थोड़ा जलपान कर लो।"

"काका, एक मैत्री यह भी तो है, जो दिल में जलती है!" देवकान्त ने गम्भीर मुद्रा बना ली।

रंजन ने अपनी ही टेर लगाई, "बेटा, शिकारी गाँव से प्रभात आया हुआ है।"

"तो उसे साथ क्यों न लेते आये!" देवकान्त की आँखें चमक उठीं।

"वह तो तुम्हें देखने की जिद कर रहा था, पर मैं ने कह दिया—देवकान्त तो कमलाबाड़ी गया हुआ है।"

"यह क्यों कह दिया, काका! प्रमाद तो मेरा साथी है। क्या खबर लाया है प्रमाद!"

"कह रहा था—नारायण ने बापू को ही पकड़ा है, और बापू की बुरी तरह पिटाई हो रही है।"

देवकान्त के मुख पर चिन्ता की रेखाएँ उभरीं। वह चुप बैठा रहा।

"अच्छा, तो मैं प्रमाद को बुला लाता हूँ।" रंजन ने मचान से नीचे उतरते हुए कहा, "इतने में तुम जलपान कर लो।"

इकतालीस



शिकारी गाँव पूर्ण रूप से मीरी गाँव होने के कारण यहाँ माघ बिहू नहीं मनाया जाता था, पर नारायण ने पहले से फ़ैसला कर रखा था कि अबके इस गाँव में भी 'मेजी' जलेगी। लेकिन दिल की बात उस ने किसी से नहीं कही थी।

शिकारी गाँव के मीरी यद्यपि अन्य असमिया जनों के समान 'मेजी' नहीं जलाते थे, फिर भी सदा के समान वे इस वर्ष भी साथ वाले कौलारी गाँव में माघ बिहू की आग तापने से न चूके। पूरा गाँव खाली हो गया। नारायण ने सोचा—यह अच्छा अवसर है।

बापू तो पहले से पुलिस की हिरासत में था। इधर उसके अन्धे बाप और बीमार माँ को भी पकड़ लिया गया था। और अब पूस की यह अन्तिम रात नारायण को एक नये सूत्रधार के रूप में देखने आ रही थी।

एक सिपाही को नारायण ने पहले से तैयार कर रखा था कि वह बापू के घर के नीचे वाले मचान में घुस जाय, जहाँ सूअर बँधे रहते हैं और फुसके से आग लगाकर भाग आये।

सिपाही ने यह काम बड़ी कुशलता से किया।

उधर कौलारी गाँव में 'मेजी' की आग तापते लोगों के पास यह खबर पहुँची कि बापू के घर को आग लग गई। दूर से आग की ऊँची उठती ज्वालाएँ देखीं, तो वे शिकारी गाँव की ओर दौड़ पड़े।

एक कम, न एक अधिक, पूरे पचपन घर जलकर नष्ट हो गये। आग

दूसरे घरों की तरफ़ भी फैल रही थी। पुलिस के सिपाही आग बुझाने का नाटक खेलते रहे, पर आग उन के वश के बाहर थी।

सात-आठ घरों में सोते बच्चे और कुछ बूढ़े रोगी भी जल मरे। कुल मिलाकर पाँच-छः स्त्री-पुरुषों को ही पुलिस ने आग में जलने से बचा लिया था।

वैसे नारायण ने एक-एक आदमी के सामने शोक-प्रदर्शन किया। मखिबर का घर बच गया था। नारायण ने उस के सामने जाकर भी रोनी सूरत बनाकर यही कहा, "मुझे इस बात का बहुत दुःख है मखिबर कि शिकारी गाँव में अचानक आग लग गई और इतना नुकसान हो गया।"

मखिबर ने बे-घर लोगों की दुहाई देकर कहा, "दारोगा जी, अब तो जादू और उस के माता-पिता को छोड़ दीजिए। अब तो हमारे गाँव को भगवान् ने ही माना बसाने का दण्ड दे डाला।"

अगले दिन भोर होते ही जादू के माता-पिता को मुक्त कर दिया गया। फिर साँझ होने पर, जब कौसारी गाँव निवासी दारोगा के पैरों पर गिर गये, जादू को भी छोड़ दिया गया। इस के लिए यह शर्त रखी गई कि शिकारी गाँव और कौसारी गाँव के लोग मिलकर बे-घर लोगों की सहायता करें और जले हुए मानों को भी फिर से बसा दें।

बनावटी तौर पर नारायण को लोगों के साथ सहानुभूति थी भीतर से वह खुश था।

जादू का मुख मन्द था, पर यह बात उस से छिपी न थी कि शिकारी गाँव के पचपन घरों को जलाने और बीस से ऊपर सोते बच्चों और बमोवृद्ध प्राणियों की निर्मम हत्या का पाप नारायण ने ही कमाया है। उसे इतना सन्तोष अवश्य था कि उस के माता-पिता बच गये। उसकी बहन भी बच गई थी, क्योंकि उस रात वह मखिबर के घर चली गई थी।

प्रभात अपने को भाग्यशाली मानता था, क्योंकि वह देवकान्त से मिल आया था, पर इस दुर्भाग्य का भी तो पारावार न था; उसके पीछे

न केवल एक चौथाई से अधिक गाँव जलकर राख हो गया, बीस से ऊपर बच्चे और बूढ़े भी इस आग में जल मरे। मरने वालों में उसका बापू भी था।

मुकन्द हतप्रभ-सा बैठा था—शिकारी गाँव में उस रात सर्वप्रथम बापू का घर आग की भेंट हो गया, तो मैं अपने घर पर क्यों उपस्थित न था! मैं घर पर होता तो शायद इतना बड़ा दुःखान्त होने से बच जाता। घरों के जलने से कहीं अधिक उसे बच्चों और बूढ़ों के जल मरने का दुःख था। सूअर, मुर्गियाँ और कबूतर भी तो जल मरे थे, उनकी संख्या का अनुमान लगाना सहज न था।

मुकन्द का विचार था, गाँव को आग लगाने में पुलिस का हाथ है पर गाँव के अन्य लोग नारायण की बगुला-भक्ति के प्रभाव से कह रहे थे, "नारायण लाख बुरा हो, वह गाँव को आग लगाने का पाप नहीं कमा सकता।"

बापू को सब से अधिक चिन्ता इस बात पर थी कि बोंग-बूढ़ा मणिधर भी नारायण की बातों में आकर लोगों से कहता फिरता है—आग लगाने में पुलिस का कोई हाथ नहीं हो सकता।

"अब क्या किया जाय?" प्रभात ने बापू के पास आकर कहा।

"बदला लिया जाय, और क्या किया जाय?" बापू ने गम्भीर होकर कहा, "मेरा विचार है कि देवकान्त भी यही कहेगा।"

"तुम ठीक कहते हो," प्रभात ने समीप होकर कहा, "मुझे याद है। उस दिन मैं देवकान्त से मिला, तो उस ने कहा था—शिकारी गाँव वाले बापू की पिटाई को सारे गाँव का अपमान समझें और एक इकट्ठे होकर फिरंगी से लोहा लें।"

"अपनी पिटाई का तो मुझे दुःख नहीं," बापू ने हवा में हाथ उछाला। वह बहुत गम्भीर नज़र आता था।

इतने में मुकन्द भी वहीं आ निकला।

"तुम बताओ, मुकन्द!" बापू ने छूटते ही कहा, "क्या दुनिया की

कोई ऐसी शक्ति है, जो हमें बदला लेने से रोक सके ?"

"एक बार देवकान्त से मिलकर बात करनी चाहिए।" मुकुन्द कहते हुए पर्वो की ओर देखकर बोला, "हम ने कभी न सोचा था कि नारायण यह चाल चलेगा।"

तीनों मित्र देर तक बातें करते रहे। "देखते नहीं, जो बे-घर हो गये, वे अपने कर्मों को रो रहे हैं।" जादू ने गम्भीर होकर कहा, "जिन के बच्चे और बूढ़े जल मरे, उन के आँसुओं में बाढ़ आ गई—ब्रह्मपुत्र की बाढ़ से भी बड़ी बाढ़ !"

"ब्रह्मपुत्र हमारे आँसू पीता आया है !" प्रभात ने ब्रह्मपुत्र की ओर संकेत करते हुए कहा, "ब्रह्मपुत्र हमारे सुख-दुःख का साक्षी है।"

"हमारा अगला कदम क्या हो ?" मुकुन्द ने प्रभात की बात अन-सुनी करते हुए कहा, "यह बातों का समय नहीं, कुछ करने की बेला हमारे द्वार पर आकर खड़ी हो गई। उठो, कुछ करो !"

बयालीस



मशिवर किसी काम से दिसाँगमुख आया था। उस के पीछे-पीछे बापू, प्रभात और मुकुन्द भी अपनी नाव लेकर दिसाँगमुख पहुँच गये। शिकारी गाँव के घर जलाये जाने की खबर पहले ही धनसिंह की दुकान तक आ पहुँची थी।

धनसिंह ने एक आदमी को भेजकर अतुल को बुलवा लिया। साथ ही रत्नाकर काका आ गये।

राम ने चारों मांझियों के हाथ छोटे कर दिए, पर जब वे पैसे देने लगे तो उस ने लेने से इनकार कर दिया।

अतुल बोला, "आज तो धनसिंह भी चाय के पैसे नहीं ले सकता।"

चतुर्दिक् कुहरा छाया हुआ था। धनसिंह की दुकान पर ज्ञान-गोष्ठी का समाँ बँध गया।

राम बोला, "नारायण ने यहाँ तो कभी इतना अत्याचार नहीं किया था।"

"तुम्हारी तो नारायण की प्रशंसा करने की आदत रही है।" धनसिंह ने चोट की।

प्रभात बोला, "हमारे बापू भाई की जितनी नियाद हुई, उसे तो हम सह भी सकते थे, पर नारायण ने तो हमारे घर जला डाले।"

"पहले मेरी बात का उत्तर दो।" राम कह उठा, "शिकारी गाँव का मामा किस ने जलाया था और क्यों जलाया था? यह यही देवकान्त

कोई ऐसी शक्ति है, जो हमें बदला लेने से रोक सके !"

"एक बार देवकान्त से मिलकर बात करनी चाहिए।" मुकुन्द जले हुए घरों की ओर देखकर बोला, "हम ने कभी न सोचा था कि नारायण यह चाल चलेगा।"

तीनों मित्र देर तक बातें करते रहे। "देखते नहीं, जो बे-घर हो गये, वे अपने कर्मों को रो रहे हैं।' बापू ने गम्भीर होकर कहा, "जिन के बच्चे और बूढ़े जल मरे, उन के आँसुओं में बाढ़ आ गई—ब्रह्मपुत्र की बाढ़ से भी बड़ी बाढ़ !"

"ब्रह्मपुत्र हमारे आँसू पीता आया है !" प्रभात ने ब्रह्मपुत्र की ओर संकेत करते हुए कहा, "ब्रह्मपुत्र हमारे सुख-दुःख का साक्षी है।"

"हमारा अगला कदम क्या हो !" मुकुन्द ने प्रभात की बात अन सुनी करते हुए कहा, "यह बातों का समय नहीं, कुछ करने की वेला हमारे द्वार पर आकर खड़ी हो गई। उठो, कुछ करो !"

बयालीस



मणिधर किसी काम से दिलीगमुख आया था। उस के पीछे-पीछे आबू, प्रभात और मुकल भी अपनी नाव लेकर दिलीगमुख पहुँच गये। शिकारी गाँव के घर जलाये जाने की खबर पहले ही धनसिंह की दुकान तक आ पहुँची थी।

धनसिंह ने एक आदमी को भेजकर अतुल को बुलवा लिया। साथ ही रत्नाकर काका आ गये।

रत्न ने चार्ली मारवाड़ी के बाल छोटे कर दिए, पर जब वे पैसे देने लगे तो उस ने लेने से इनकार कर दिया।

अतुल बोला, "आज तो धनसिंह भी साथ के पैसे नहीं ले सकता।"

चतुर्दिक कुहरा छाया हुआ था। धनसिंह की दुकान पर ज्ञान-गोष्ठी का समाँ बँध गया।

रत्न बोला, "नारायण ने यहाँ तो कभी इतना अत्याचार नहीं किया था।"

"तुम्हारी तो नारायण की प्रशंसा करने की आदत रही है।" धनसिंह ने चोट की।

प्रभात बोला, "हमारे आबू भाई की कितनी पिटाई हुई, उसे तो हम भूल भी सकते थे, पर नारायण ने तो हमारे घर जला डाले।"

"पहले मेरी बात का उत्तर दो।" रत्न कड़क उठा, "शिकारी गाँव का थाना किस ने जलाया था और क्यों जलाया था? यह पढ़ी देवकान्त

ने ही फ़्याद होगी !"

मणिधर ने व्यंग्य से सिकुड़ते हुए कहा, "देवकान्त से मेरी बातें हुई हैं। वह तो कहता है—विदेशी राज्य का खात्मा तभी उखाड़ा जा सकता है, जब हिंसा और अहिंसा के दोनों उपाय काम में लाये जायें। उसके मतानुसार न अकेली हिंसा कुछ कर सकती है, न केवल अहिंसा ही। हम तो अबूझ किसान हैं, हम पढ़े हुए भी नहीं हैं। मैं ने उसे बहुत समझाया था। हम लड़कों को भी तो मैं ने बहुत समझाया था। हम पर देवकान्त का प्रभाव अधिक है।"

रत्न ने पूछा, "तो क्या शिकारी गाँव का थाना देवकान्त ने जलाया था ?"

बापू बोला, "नहीं तो !"

राजखाल ने कहा, "अब यह पूछने या बताने की बेला नहीं कि शिकारी गाँव का थाना किस ने जलाया। मेरी आयु तो हाथियों के बीच बीती है। हमारे साहब साहब कहा करते थे—जो काम करना हो, पहले उस पर विचार कर लो; फिर जो फ़ैसला किया जाय, उस पर पूरी शक्ति से चलो।"

"तो फिर करना क्या है, काका !" अनुल ने हाथ उठाकर कहा।

राजखाल पहले तो खामोश रहा। फिर उस ने चबा-चबाकर कहना शुरू किया :

"पहले तो यह समझ लो कि शिकारी गाँव और दिहाँगमुख की पीड़ा कोई अलग-अलग नहीं है। जो हत्याकाण्ड शिकारी गाँव में हुआ, उसे दिहाँगमुख में भी दोहराया जाय, तभी हम उस पीड़ा को अनुभव करें, यह तो कोई बात न हुई।"

"बिलकुल सच है, काका !" अनुल ने जैसे सब की ओर से कहा, "बिलकुल सच !"

धनसिंह ने चाय के गिलास तैयार कर लिए थे। सब के हाथ में एक एक गिलास थमाते हुए बोला, "पहले ज़रा गरम हो लो !"

अतुल ने चाय का घूँट भरकर कहना शुरू किया

"मुझ से तो देवकान्त नाराज है। उसकी बात उड़ती-उड़ती मुझ तक पहुँचती रहती है। मामुसी और दिसाँगमुख तो एक ही है। बीस में ब्रह्मपुत्र बहता है, बस यही अन्तर है। वह वहाँ काम कर रहा है, मैं यहाँ काम शुरू करना चाहता हूँ।"

"अब यह सुनते-सुनते तो मेरे कान पक गये, अतुल!" धनसिंह ने जोर दी, "तुम कुछ नहीं करोगे। पहले जाकर मूलतारा से सलाह कर आओ!"

"मूलतारा बेचारी क्या कहती है! रामलाल ने हाथ उठाकर कहा, "वह कब अतुल को काम करने से रोकती है!

"तो फिर हो जाय फ़ैसला!" अतुल ने कहना शुरू किया, "कल बृहस्पतवार है, काका! हाट-बाजार का दिन। दूर-दूर से लोग आयेंगे और मैं तो कहता हूँ—

"मैं तो कहता हूँ, जुलूस निकाला जाय!" धनसिंह ने हँसकर कहा, "वैसा ही जुलूस, जैसा गोहाटी, शिवसागर और डिब्रूगढ़ में निकला है। भगवान् की सौगन्ध! आनन्द आ जायेगा। शिवसागर से दिसाँग मुख का फ़ासला बहुत ज़्यादा भी तो नहीं। अरे अरे, आनन्द आ जायगा!'

रामलाल ने भी इस विचार को पसन्द किया।

मपुत्र।

तेतालीस



साँझ के समय दस-बारह नौकाएँ दिसाँगमुख से शिकारी गाँव भेज दी गईं। यह तय हुआ कि बच्चे, बूढ़े और जवान सब दिसाँगमुख आ जायें, जहाँ उनके खाने-पीने का प्रबन्ध दिसाँगमुख वाले करेंगे। दिसाँगमुख वालों ने चन्दा करके लंगर का प्रबन्ध कर दिया। इस कार्य में मीरी, असमिया और नेपाली का भेद नजर न आता था।

सूर्योदय के साथ-साथ शिकारी गाँव से नौकाएँ दिसाँगमुख पहुँचीं।

पहले शिकारी गाँव वालों को जलपान कराया गया, फिर एक सभा का कार्यक्रम रखा गया।

घोषिए ढोल बजा-बजाकर हाट-बाजार में आये हुए लोगों से प्रार्थना कर रहे थे—आप लोग सभा में अवश्य पहुँचें।

सभा के लिए कालीसीमा के समीप वह स्थान चुना गया, जो पिछले वर्ष ब्रह्मपुत्र की बाढ़ के कारण खेती के अयोग्य हो गया था।

सभा में आने के लिए शिवप्रसाद और विष्णुप्रसाद को भी सन्देश भेजा गया, पर अन्तिम घड़ी तक प्रतीक्षा करने के बावजूद वे दिखाई न दिये। नीरद आज सवेरे से ही आ गया था आज वह पहले से अधिक गम्भीर नजर आ रहा था।

शिकारी गाँव के जलने की खबर आँधी की तरह फैल गई, पर हाट बाजार तो बन्द नहीं हो सकता था। बाहर से आये हुए लोगों के लिए

यह समस्या थी कि वे अपनी चीज़ें किसे सँभालें । पर जब हाट-बाज़ार के बहुत से ग्राहक सभा में आ गये, तो रासलाल काका ने हाट-बाज़ार में आ कर लोगों को इस बात पर राज़ी कर लिया कि वे अपनी-अपनी चीज़ें समेटकर रख लें । इनकी रखवाली का काम चार-दस युवकों को सौंप दिया गया; किसी की यह मजाल न थी कि कोई चीज़ इधर-उधर कर सके । देखा-देखी सब सभा में आ गये ।

सभापति रासलाल काका को ही चुना गया । सभा के चारों कोनों पर पुलिस के सिपाही नज़र आ रहे थे । सभा में सब से पहले उन लोगों के बयान कराये गये, जो शिकारी गाँव से बे-घर होकर यहाँ पहुँचे थे ।

शिकारी गाँव के गाँव-बूढ़ा मणिधर ने अपने भाषण में कहा—

"यह कहना तो सहज नहीं कि घरों को आग किस ने लगाई, वैसे यह कहना कठिन है कि थाने को आग किस ने लगाई । फिर भी मैं एक ही बात कहना चाहता हूँ कि हमारे गाँव में हमारी इच्छा के न होते हुए सरकार ने थाना बना दिया । इसी से सारा झगड़ा शुरू हुआ । थाना बनाने का विचार सरकार छोड़ दे, मेरी तो इतनी ही याचना है ।"

मणिधर के पश्चात् अतुल को कुछ कहने का आदेश मिला । उस ने उठकर कहना शुरू किया :

"मैं बहुत पढ़ा-लिखा आदमी नहीं हूँ, इसलिए मेरी बात में कुछ भूल हो, तो मुझे क्षमा कर दिया जाय ।

"जैसे मधुमक्खियाँ मधु इकट्ठा करती हैं, ऐसे ही हमारे पुरखाओं की अनगिनत पीढ़ियों ने मिलकर सचाई को इकट्ठा किया । वह सचाई क्या है ? वह सचाई लम्बे अनुभव से पनपी । हमें उस अनुभव की क़द्र करनी चाहिए ।

"मैं लम्बा-चौड़ा भाषण देने की शक्ति नहीं रखता, फिर भी एक बात अवश्य कहूँगा । जैसे शिकारी गाँव जलाया गया, वैसे ही हमारा गाँव भी जलाया जा सकता है । गाँव-बूढ़ा मणिधर यह क्यों भूल रहे हैं ? शिकारी गाँव मिट जायेगा, तो वे किस के गाँव-बूढ़ा रहेंगे ? क्या वे

एक उजड़े हुए गाँव के गाँव-बूढ़ा बने रहना पसन्द करेंगे। इसलिए हमें ऐसा यत्न करना चाहिए कि शिकारी गाँव की रक्षा की जाय। शिकारी गाँव की रक्षा में ही दिसाँगमुख की भी रक्षा है। हमारे बीच ब्रह्मपुत्र बहता है, बस इतना ही अन्तर है। यह तो कोई बड़ा अन्तर नहीं।

"देवकान्त जब यहाँ था, तो मेरे साथ उसकी हमेशा बातें होती थीं। वह सदा भारत माता की बात कहता था। मैं ने तो भारत माता आज तक नहीं देखी। मैं ने तो दिसाँगमुख माता देखी है। वैसे शिकारी गाँव वालों ने मामूली माता भले ही न देखी हो, शिकारी गाँव माता अवश्य देखी होगी।

"मेरा एक ही प्रस्ताव है, और यह प्रस्ताव मैं दिसाँगमुख की ओर से रख रहा हूँ। हम यहाँ से जुलूस बनाकर चलें, आगे आगे शिकारी गाँव के निवासी हों, पीछे-पीछे हम दिसाँगमुख वाले। और भी दूसरे गाँवों के लोग यहाँ आये हुए हैं वे चाहें, तो अपनी शक्ति हमारे साथ मिला सकते हैं।"

यह कहकर प्रफुल बैठ गया।

रतलाल काका ने उठकर कहा, "अब मैं प्रसिद्ध लेखक नीरद बाबू से कहूँगा कि वे भी अपने विचार हमारे सामने रखें।"

नीरद ने उठकर कहना आरम्भ किया, "भारत माता की जय! यहाँ यह प्रश्न उठाया गया है कि भारत माता को तो आप लोग नहीं जानते, और आप तो अपनी-अपनी गाँव माता को ही जानते हैं। हमारे देश में तो कई प्रान्त हैं। बंगाल, असम और उड़ीसा; मद्रास, यू॰ पी॰ और बिहार; पंजाब, कश्मीर और बम्बई। हमारा देश तो विशाल है। यहाँ सात लाख गाँव हैं। ये सात लाख गाँव माताएँ मिलकर एक ही नाम से पहचानी जाती हैं वह नाम है भारत माता।

"मैं ने बहुत यात्रा की है और सर्वत्र भारत माता के दर्शन किये हैं। एक दिन भारत माता स्वतन्त्र होकर रहेगी। इस से तो अंग्रेज भी इन्कार नहीं कर सकते। जब भी भारत माता स्वतन्त्र होगी, वह अपने पैरों

की मिली-जुली शक्ति से ही स्वतन्त्र होगी। मैं राजनीति में पका हुआ मनुष्य नहीं हूं। मैं तो एक साधारण लेखक हूं।

"ब्रह्मपुत्र पर पुस्तक लिखने की मेरी पुरानी सनक है। मेरी पुस्तक का एक भाग शीघ्र ही छपकर आने वाला है, दूसरे भाग की तैयारी कर रहा हूं। मैं आज तक जेल नहीं गया। जेल जाने का मेरा संकल्प भी नहीं है। फिर भी मैं भारत माता का बेटा हूं।

"देवकान्त से कलकत्ता में अक्सर मेरी बातें हुआ करती थीं। वह मुझ से कहता था—क्रान्ति-पथ अपनाओ। मैं कहता था कि हमारा अपना-अपना पथ है। वह कहता था—लेखक तो और भी बहुत से हैं। मैं कहता था—जो चीज़ वे लिख रहे हैं मैं उस से आगे की चीज़ लिखना चाहता हूं; लिख पाऊंगा या नहीं यह और बात है, यत्न तो कर ही रहा हूं। वह कहता था—तुम लिखने के बहाने देश के काम से पीछे हट रहे हो। मैं कहता था—देश के लिए तो वे भी काम करते हैं, जो अपने चाक पर घड़े तैयार करते हैं; ऐसे ही हज़ार और बढ़ई भी देश का काम कर रहे हैं कपड़ा बुनने वाले जुलाहे और साबुन बनाने वाले मज़दूर भी देश के लिए ही दिन-रात एक करते हैं और हमारे विशाल देश के अनगिनत किसान, जो रात-दिन लहू-पसीना एक करके फ़सलें उगाते हैं, वे भी तो देश का काम करते हैं।

"मेरा मार्ग न हिंसा का मार्ग है, न अहिंसा का। मेरा मार्ग तो लेखनी का मार्ग है। शिकारी गाँव वालों के साथ मेरी पूरी सहानुभूति है। यदि मैं शिकारी गाँव का गाँव-बूढ़ा होता, तो आग लगाने वालों के विरुद्ध अपना रोष प्रकट करते हुए गाँव-बूढ़ा की पदवी त्याग देता। एक लेखक भी त्याग करना जानता है। मुझे सरकार ने कोई उपाधि नहीं दी। पर इस अवसर पर मुझे रवीन्द्रनाथ ठाकुर की याद आती है, जिन्होंने अमृतसर के जलियाँ वाला बाग़ में डायर के हत्याकाण्ड से दुःखी होकर सरकार को 'सर' की उपाधि लौटा दी थी। मैं कहता हूं, उस दिन रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भारत माता की आँखों में आँसू देखकर ही विदेशी

ब्रह्मपुत्र।

एक उजड़े हुए गाँव के गाँव-बूढ़ा बने रहना पसन्द करेंगे? इसलिए हमें ऐसा यत्न करना चाहिए कि शिकारी गाँव की रक्षा की जाय। शिकारी गाँव की रक्षा में ही दिसाँगमुख की भी रक्षा है। हमारे बीच ब्रह्मपुत्र बहता है, बस इतना ही अन्तर है। यह तो कोई बड़ा अन्तर नहीं।

"देवकान्त जब यहाँ था, तो मेरे साथ उसकी हमेशा बातें होती थीं। वह सदा भारत माता की बात कहता था। मैं ने तो भारत माता आज तक नहीं देखी। मैं ने तो दिसाँगमुख माता देखी है। जैसे शिकारी गाँव वालों ने मामूली माता भले ही न देखी हो, शिकारी गाँव माता अवश्य देखी होगी।

"मेरा एक ही प्रस्ताव है, और यह प्रस्ताव मैं दिसाँगमुख की ओर से रख रहा हूँ। हम यहाँ से जुलूस बनाकर चलें, आगे-आगे शिकारी गाँव के निवासी हों, पीछे-पीछे हम दिसाँगमुख वाले। और भी दूसरे गाँवों के लोग यहाँ आये हुए हैं वे चाहें, तो अपनी शक्ति हमारे साथ मिला सकते हैं।"

यह कहकर अतुल बैठ गया।

रतनलाल काका ने उठकर कहा, "अब मैं प्रसिद्ध लेखक नीरद बाबू से कहूँगा कि वे भी अपने विचार हमारे सामने रखें।"

नीरद ने उठकर कहना आरम्भ किया, "भारत माता की जय! यहाँ यह प्रश्न उठाया गया है कि भारत माता को तो आप लोग नहीं जानते, और आप तो अपनी-अपनी गाँव माता को ही जानते हैं। हमारे देश में तो कई प्रान्त हैं। बंगाल, आसाम और उड़ीसा; मद्रास, यू० पी० और बिहार पंजाब, कश्मीर और बम्बई। हमारा देश तो विशाल है। यहाँ सात लाख गाँव हैं। ये सात लाख गाँव माताएँ मिलकर एक ही नाम से पहचानी जाती हैं; वह नाम है भारत माता।

"मैं ने बहुत यात्रा की है और सर्वत्र भारत माता के दर्शन किये हैं। एक दिन भारत माता स्वतन्त्र होकर रहेगी। इस से तो अंग्रेज भी इन्कार नहीं कर सकते। जब भी भारत माता स्वतन्त्र होगी, वह अपने बेटों

की मिली-जुली शक्ति से ही स्वतन्त्र होगी। मैं राजनीति में पका हुआ मनुष्य नहीं हूँ। मैं तो एक साधारण लेखक हूँ।

"ब्रह्मपुत्र पर पुस्तक लिखने की मेरी पुरानी सनक है। मेरी पुस्तक का एक भाग शीघ्र ही छपकर आने वाला है, दूसरे भाग की तैयारी कर रहा हूँ। मैं आज तक जेल नहीं गया। जेल जाने का मेरा संकल्प भी नहीं है। फिर भी मैं भारत माता का बेटा हूँ।

"देवकान्त से कलकत्ता में अक्सर मेरी बातें हुआ करती थीं। वह मुझ से कहता था—क्रान्ति-पथ अपनाओ। मैं कहता था कि हमारा अपना अपना पथ है। वह कहता था—लेखक तो और भी बहुत से हैं। मैं कहता था—जो चीज़ वे लिख रहे हैं, मैं उस से आगे की चीज़ लिखना चाहता हूँ लिख पाऊँगा या नहीं, यह और बात है, यत्न तो कर ही रहा हूँ। वह कहता था—तुम लिखने के बहाने देश के काम से पीछे हट रहे हो। मैं कहता था—देश के लिए तो वे भी काम करते हैं, जो अपने चाक पर घड़े तैयार करते हैं ऐसे ही लुहार और बढ़ई भी देश का काम कर रहे हैं कपड़ा बुनने वाले जुलाहे और साबुन बनाने वाले मज़दूर भी देश के लिए ही दिन-रात एक करते हैं और हमारे विशाल देश के अनगिनत किसान, जो रात-दिन लहू-पसीना एक करके फ़सलें उगाते हैं, वे भी तो देश का काम करते हैं।

"मेरा मार्ग न हिंसा का मार्ग है, न अहिंसा का। मेरा मार्ग तो लेखनी का मार्ग है। शिकारी गाँव वालों के साथ मेरी पूरी सहानुभूति है। यदि मैं शिकारी गाँव का गाँव-बूढ़ा होता, तो आग लगाने वालों के विरुद्ध अपना रोष प्रकट करते हुए गाँव-बूढ़ा की पदवी त्याग देता। एक लेखक भी त्याग करना जानता है। मुझे सरकार ने कोई उपाधि नहीं दी। पर इस अवसर पर मुझे रवीन्द्रनाथ ठाकुर की याद आती है, जिन्होंने अमृतसर के जलियाँवाला बाग़ में डायर के हत्याकाण्ड से दुःखी होकर सरकार को 'सर' की उपाधि लौटा दी थी। मैं कहता हूँ, उस दिन रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भारत माता की आँखों में आँसू देखकर ही विदेशी

सरकार द्वारा दी हुई उपाधि लौटा दी थी।

"भारत माता को अपनी माता मानते हुए भाव में एक लेखक का धर्म पहचानता हूँ, पर मेरी लेखनी का विस्तार केवल हिन्दुस्तान तक ही सीमित नहीं। मेरे सम्मुख तो समस्त विश्व है—विश्व माता! फिर भी मैं कहता हूँ—आप जुलूस अवश्य निकालें। इस अवसर पर उपस्थित होने के नाते मैं भी जुलूस में आप के साथ रहूँगा।"

जुलूस निकालने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से मान लिया गया। रामलाल काका ने उठकर कहा, "शिकारी गाँव की जय! दिसाँगमुख की जय! आप लोग तैयार हो जाइए!"

जुलूस की कल्पना से रामलाल काका पुलकित हो गये—अरे अरे, सब लोग मिलकर शिवसागर की ओर प्रस्थान करेंगे, तो मैं लगेगा जैसे हजारों आँखों वाला एक विशाल हाथी झूमता झामता आ रहा है।

चवालीस



सब से आगे आदू, प्रमाद और मुकुन थे। उन की आँखें चमक रही थीं; कदमों में दृढ़ निश्चय की छाप थी। अतुल, रतलाल काका और नीरद भी आगे बढ़े, और उन के पीछे-पीछे अपार लोगों के पग उठने लगे।

चतुर्दिक् कुहरा छा रहा था। जुलूस जन-पथ पर चला जा रहा था। सब के मन यह कह रहे थे—ओ मार्ग सूरज, शीघ्र निकलो हमें रास्ता दिखाओ! हमें हर प्रकार के अभद्र व्यवहार से दूर रखो!' 'एक, दो, तीन! एक, दो, तीन! इसी ताल पर सब के पग उठ रहे थे। उन्हें कई मील चलकर शिवसागर पहुँचना था। इतनी दूर मंज़िल तय करके तो आज तक कोई जुलूस नहीं चला होगा। इस जुलूस का हर व्यक्ति जैसे यही कहना चाहता हो—हम प्रतिनिधि जन-जन के, हम ब्रह्मपुत्र-सन्तान! हम न्याय चाहते हैं, हम जीने का अधिकार चाहते हैं। जो भी अन्याय की बात लायेगा, उसे मूक होना पड़ेगा, मुँह की खाकर रह जाना होगा। हम अहिंसक, हिंसक नहीं! हम जन-जन के प्रतिनिधि हैं!'

चलते-चलते जुलूस की गति कहीं भी मन्द न पड़ी। कुहरा कुछ-कुछ बिखर गया। जुलूस में चलने-वालों की पदचाप आने वाली क्रान्ति का पता दे रही थी। आखिर जुलूस शिवसागर के समीप पहुँच गया।

यह कैसा जुलूस है, शिवसागर में जल्दी-जल्दी यह बात किसी की

समझ में न आई।

डिप्टी कमिश्नर की कोठी के सामने पहुँचकर जुलूस के गगनभेदी नारे सुनाई देने लगे

"शिकारी गाँव पर अत्याचार बन्द करो।"

"शिकारी गाँव का जलाया जाना भयानक अत्याचार है।"

"नाराज़ दारोग़ा असम का डायर बन गया।"

डिप्टी कमिश्नर के हेड क्लर्क ने बाहर निकलकर कहा, "शिकारी गाँव तो लखिमपुर ज़िला में है, जैसे समूची माजुली भी उसी ज़िला में है। साहब बहादुर कहते हैं—शिकारी गाँव हमारे हलके से बाहर है, इस लिए आप लोगों को लखिमपुर जाने की सलाह दी जाती है।"

जुलूस के नारे बराबर गूँजते रहे, जैसे सब लोग यह कहने पर तुल गये हों—आज तो लखिमपुर के साहब बहादुर को भी यहीं आकर जवाब-देही करनी पड़ेगी।

पुलिस के सिपाही देर तक लोगों को समझा-बुझाकर पीछे लौट जाने की सलाह देते रहे, पर मालूम होता था आज तो स्वयं शिवसागर के डिप्टी कमिश्नर के हाथ बाँधने पर भी ये लोग रात-भर यहीं डेरे डाल देंगे।

पैंतालीस



जब शिकारी गाँव वालों को नौकाओं से वापस भेजा जा रहा था, नाव-घाट पर यह खबर पहुँची—देवकान्त पकड़ लिया गया।

अतुल ने दाँतों तले उँगली दबाकर राखाल काका की ओर देखा—उस के मुख से एक भी शब्द न निकला।

"यह कैसे हो सकता है?" राखाल ने गम्भीर होकर कहा।

"शायद यह खबर झूठ हो, काका!'

अतुल की जान-में-जान आई, "हम कब चाहते हैं काका, कि देवकान्त को कोई पकड़ ले।"

"यही तो मैं भी कहता हूँ। देवकान्त का यही दोष है न कि वह हिंसा में विश्वास रखता है।

अतुल ने कहा, "भगवान् करे देवकान्त सही-सलामत हो।

पास से किसी ने कहा, "पागल हाथी को तो मार डालते हैं।"

राखाल को उस समय यह बात बिलकुल रुचिकर प्रतीत न हुई। उसने कहा, "मुझे तो देवकान्त के पकड़े जाने की खबर बहुत बड़ी गप्प मालूम होती है।"

बाबू, प्रभात और मुकुन्द कुछ न बोले। उन्होंने काका और अतुल की ओर अहसान-भरी आँखों से देखा और नाव में जा बैठे, जहाँ मणिधर उन्हें बुला रहा था।

सब लोग पहले ही जा चुके थे अब वह भाव भी धीरे-धीरे मामुली की ओर चल पड़ी।

आज ब्रह्मपुत्र बहुत शान्त प्रतीत हो रहा था। राजलाल सोचने लगा—यही ब्रह्मपुत्र वर्षा में कितना विकराल हो उठता है ऐसे ही मनुष्य की प्रकृति है—कभी शान्त, कभी एकदम क्रुद्ध।

भाव-घाट पर खड़े-खड़े काका के कदम भारी हो रहे थे। अतुल के कन्धे पर हाथ रखकर उन्होंने कहा, "क्या देवकान्त को सचमुच पकड़ लिया गया? मेरा मन कहता है—ऐसा नहीं हुआ होगा!"

"तुम्हारी बात मेरे दिल में भी लगती है, काका!" अतुल ने स्थिर भाव से कहा।

"क्या?"

"देवकान्त बिलकुल सुख-चैन से होगा। हमारे जुलूस की खबर तो उस तक भी पहुँचेगी। उसे बहुत आनन्द आयेगा। वह सोचेगा—मामुली में मैं नारायण को तंग कर रहा हूँ, और अब विरोधिमुख-निवासी मिलकर गोपीनाथ का नाक में दम करने पर तुल गये हैं!"

ब्रह्मपुत्र के उस पार जाने वालों का यात्री-दल एक नावरिया से भाव तय कर रहा था। पास ही कुछ मछुए भाव में जाल रखकर मछली मारने जा रहे थे। ब्रह्मपुत्र स्थिर भाव से बह रहा था, जैसे पार जाने अथवा मछली मारने वालों की ओर ध्यान देने का उसे तनिक भी अवकाश न हो।

काका ने पहले ब्रह्मपुत्र की ओर देखा, फिर अतुल की ओर। उन्हें अतुल से बहुत आशा थी। वह अतुल के समीप मुँह लाकर कुछ कहना चाहते थे, इतने में कहीं से नीरद आ निकला। आते ही बोला, "ब्रह्मपुत्र महान् है, काका! ब्रह्मपुत्र ने हमें माया दी—जीवन की माया, मरण की माया। ब्रह्मपुत्र सदा हमारे साथ है; हमारे पुण्य-पाप पर सदा इसकी दृष्टि रहती है—"

"और तब क्या होता है, जब ब्रह्मपुत्र में बाढ़ आती है?" काका

को भी चुनौती देने का अवसर मिल गया।

"ब्रह्मपुत्र हमारा पथप्रदर्शक है।" नीरद कहता चला गया, "हमारा सखा, हमारा सह-यात्री स्वतन्त्रता की गुहार लगाने वाला बल-कवि, पथ का दावेदार। आगे-ही-आगे अपनी मंज़िल की ओर जाने के लिए कृत-संकल्प है ब्रह्मपुत्र हमारे लिए भी उसकी यही टेर है—मंज़िल पहचानो, आगे बढ़ो।"

"हमारी मंज़िल तो अब स्वतन्त्रता से एक कोस भी इधर नहीं हो सकती।" अतुल ने गुहार लगाई, "कौन है, जो हमें रास्ता दिखायेगा।"

"शाबाश।" काका की आँखें चमक उठीं।

"ब्रह्मपुत्र की अपनी परम्परा है," नीरद अपनी ही कहता चला गया, "एक चिरप्रवाहीन, जागरूक परम्परा। बहता जा रहा है, बहता जा रहा है, बहता जा रहा है—ब्रह्मपुत्र। सुदूर मानसरोवर से आता है, सुदूर सागर की ओर जाता है। स्वयं अपना इतिहास बनाता है ब्रह्मपुत्र, और हम से कहता है यह हमारा शत-बाहु ब्रह्मपुत्र—तुम भी गतिमान बनो; शत-बाहु बनो, सहस्र-बाहु बनो बिको मत, मत बनो कठपुतली अपना मोल पहचानो मत बेचो किसी के हाथ अपनी मंज़िल, अपनी चिर-यात्रा, अपनी चिर-साधना—कभी मत बेचो।"

"हम बिकेंगे नहीं।" अतुल चुप न रह सका।

"शाबाश।" काका ने अतुल की पीठ ठोंकी।

नीरद कुछ न बोला। उस के विचार गुटर-गूँ-गुटर-गूँ करते कबूतरों के समान एकाएक वातावरण की निस्तब्धता से सिमटकर चुप हो रहे। देश-काल की कैद ही क्या सब से बड़ी सच्चाई है। समय की लीक सरीखा बहता हुआ ब्रह्मपुत्र आखिर क्या सिद्ध कर रहा है। पानी को क्यों छोल लेती है सूखी धरती। क्या राजनीति ही सब से बड़ी सच्चाई है—देश-काल की कैद में जकड़ी सच्चाई। देवकान्त इस सच्चाई के चक्कर में कब तक फँसा रहेगा। अतुल और रामलाल काका भी क्या उसी ओर नहीं जा रहे। देश-काल में जकड़ी सच्चाई की भूल-भुलैयाँ में एक बार प्रवेश

करके क्या ये लोग कभी आराम से बाहर भी आ सकेंगे ? काल का अपना अस्तित्व नहीं है क्या ? उसे क्यों नहीं देखते ये लोग ? क्या वे उसे देख नहीं सकते ? काल क्या मात्र एक अर्थहीन फैलाव है ? देश-काल का आलिंगन क्या इतना ही आवश्यक है ? देश के आलिंगन-पाश में आये बिना क्या काल अपनी सार्थकता सिद्ध नहीं कर सकता ?—ऐसे-ऐसे अनेक प्रश्न नीरद को कुरेदते रहे।

"शाबाश !" काका ने दोबारा अतुल की पीठ ठोंकी, "हम बिकेंगे नहीं।"

"और नीरद बाबू को भी हम उसकी पोथी के पोखर में ही नहीं डूबने देंगे !" अतुल ने सँभलकर कहा, "क्यों नीरद बाबू ?"

"ब्रह्मपुत्र पर देवकान्त अपने हस्ताक्षर करना चाहता है," नीरद ने गम्भीर होकर अथाह जल-प्रवाह की ओर संकेत किया, "आप लोग भी तो उसी का अनुसरण करने जा रहे हैं, पर पानी पर क्या किसी की लिखावट टिक सकी है ?"

अतुल ने रामलाल काका की आँखों में देखा। काका भी कब स्थिति को हाथ से जाने दे सकते थे ? बोले, "सच्चाई तो ब्रह्मपुत्र में जमकर खड़ी हुई चट्टान के समान दृढ़ है। चाँद-कुटी में हमारे गार्मेन्ट साहब कहा करते थे।"

"सचाई तो ब्रह्मपुत्र की गहराई है, काका।" अतुल मुस्कराया।

"और बहना नहीं है ब्रह्मपुत्र की सचाई ?" नीरद ने अतुल को नहीं रोकना चाहा।

नीरद को लगा, जैसे रामलाल और अतुल यही कह रहे हों—सचाई तो देश-काल की सीमाओं में बँधकर ही नज़र आ सकती है। ऊपर से नीरद मुस्कराता रहा—भीतर मन की गहन गुफा से यही आवाज़ आती रही—तुम अपनी पोथी क्यों नहीं लिखते आराम से बैठकर ? ब्रह्मपुत्र क्या मात्र किसी परी-कथा का उपमा है ? कुहासा क्या सदा-सदा के लिए ब्रह्मपुत्र को लपेट सकता है ? 'आज' क्या कभी 'कल' के सूत्र में बँधने

से कह सका है। सिली एक अंग्रेज-युविता होकर भी असम से बँध गई, क्योंकि इसी ब्रह्मपुत्र की अपार जलधारा पर स्टीमर के एक कक्ष में उसका जन्म हुआ। वह असम से बँध न गई होती, तो बार-बार यह क्यों कहती— रुपये के बल पर तो हम यहाँ नहीं टिक सकते।"

अतुल और राखाल काका पी को सरक कर आपस में कुछ सलाह करने लगे। नीरद के पैर वहीं-के-वहीं जमे रहे। अपनी पुस्तक के एक शब्द में खोया-खोया-सा वह वहीं खड़ा रहा— सेतुहीन ब्रह्मपुत्र पर सेतु अवश्य बाँधा जाएगा एक दिन आएगा तिरंगी राज्य, अपना स्वराज्य। शायद देवकान्त भी वह दिन देखने को बचा रह जाएगा। बी-ए एन-डी-एस आर्ट—गाँगी। बी-ए-एन-बी-एस आर—गौटी। बार-बार रटेगी सिली—फिर से शिशु बनकर। और हँसेगा देवकान्त—सिली के विचार पर नहीं, उसके उच्चारण पर। असम में जन्म लेकर भी, ब्रह्मपुत्र से बँधकर भी यह अंग्रेज-युविता अपने उच्चारण पर काबू नहीं पा सकी। अरे गौटी नहीं, सिली गाँगी नहीं—गांधी कहो गांधी! यों देवकान्त सिली का उच्चारण सुधारेगा। जब तिरंगी राज्य कायम हो चुका होगा, स्वराज्य आ चुका होगा तब सिली को 'ब्रह्मपुत्र' की बजाय भी 'ब्रह्मपुत्र' कहना सीखना होगा।"

राखाल काका ने पलटकर कहा, "अब हम नीरद बाबू को छोड़ेंगे नहीं। देवकान्त के समान नीरद बाबू हमें छोड़कर कहीं नहीं जाएगा।"

"हाँ, काका!" अतुल ने हँसकर कहा, "नीरद बाबू हमें छोड़कर किसी मामूली से नहीं जाएँगे।"

अतुल के साथ जैसे ब्रह्मपुत्र भी हँस पड़ा—नीरवता को चीरकर प्रभातकालीन सूरज की किरणों का आलिंगन करके जैसे शत-बाहु, सेतुहीन ब्रह्मपुत्र खामोश निगाहों से बोला—नीरद कहीं नहीं जाएगा।

छियालीस



जिस दिन शिकारी गाँव के लोग डिसाँगमुख से वापस लौटे, नारायण ने उन्हें थाने के अहाते में बुलाकर बहुत धमकाया। उधर छोटा दारोगा अचिन्तराम देर तक प्रभात और मुकुन्द को पुचकारता रहा; उसका विचार था कि वे देवकान्त का पता बता देंगे, पर वे साफ़ इन्कार करते रहे।

नारायण को यह पता चल गया था कि जिस रात शिकारी गाँव का थाना जलाया गया, उस रात देवकान्त रंजन के बाँस-कुंज में मचान पर छिपा हुआ था। जब नारायण को यह सुराग़ मिला और वह रंजन के बाँस-कुंज में पहुँचा, तो वह मचान खाली पड़ा था। पंछी पहले ही उड़ गया था। पहले तो वह रंजन को पुचकारता रहा, वह साफ़-साफ़ बता दे कि पंछी उड़कर किधर को गया है, फिर जब आखिरी बार रंजन को शिकारी गाँव के जले हुए थाने के अहाते में बुलाया गया, और यहाँ भी उस ने कान पर हाथ धर कर यही कहा—'महाप्रभु! मैंने तो सात महीने से देवकान्त की शक्ल भी नहीं देखी', तो नारायण को बहुत क्रोध आया और उस ने सब के सामने रंजन को एक पेड़ के साथ बाँधकर उस के सिर पर अपने भारी-भरकम बूट की ठोकरें लगाईं।

रंजन की चीखों से शिकारी गाँव के गाँव-बूढ़ा मणिधर का हृदय भीतर-ही-भीतर रो उठा। वह इस सोच में पड़ गया कि रंजन की मदद कैसे की जाय, कैसे उसे बचाया जाय।

मुकुन्द और प्रभात को अलग बिठाकर खोजा दारोगा अचिन्त्यराम पुचकार रहा था, "बता दो, बेटो। तुम्हें कुछ भी नहीं कहा जायगा। मैं बड़े दारोगा जी से तुम्हें माफ़ी दिला दूँगा। उस का बूट तुम्हारे सिर पर नहीं पड़ेगा, जैसे रंजन के सिर पर पड़ रहा है।"

जादू घर से भाग गया था। पुलिस का ख्याल था कि अन्धा दिव्यनाथ सब जानता है कि जादू कहाँ गया है। "जादू ज़रूर देवकान्त के पास गया होगा!" नारायण चिल्ला रहा था। इस बहाने अन्धे दिव्यनाथ को खूब पीटा गया। जादू की बहन पठबाली पर हाथ उठाने से भी नारायण ने संकोच न किया। और-तो और, सनातन गौरी की बेटी गोपी को थाने के अहाते में बुलाकर जादू के बारे में पूछा गया; वह बेचारी क्या बोलती, चुपचाप खड़ी रही।

"क्यों शिकारी गाँव की राधा!" अचिन्त्यराम ने गोपी के पास जाकर पुचकारा, "तुम्हारा वह कान्हू-कन्हैया भागकर कहाँ गया है?"

गोपी रोती रही। उस के होंठ न हिले। उस ने बिलकुल न बताया कि जादू किधर गया है।

रंजन के सिर पर बूट की एक और ठोकर लगाकर नारायण ने कहा, "सरकार के दुश्मन का घर में रखकर पालने का मज़ा चख ले, हरामी पिल्ले! आज तेरी खोपड़ी टूट कर रहेगी।"

थाने के अहाते के पास बहुत भीड़ जमा हो गई थी। रंजन की एक-एक चीख पर गाँव वालों के दिल दहल जाते थे। उन के हाथ उठना चाहते थे, पर वे मजबूर थे।

एक पेड़ के साथ प्रभात और मुकुन्द को भी बाँध दिया गया था। अपने गाँव के इन वीरों पर अत्याचार होता देखकर शिकारी गाँव वालों का खून खौलने लगा।

गोपी को एक झोंपड़ी में बन्द कर दिया गया, जो उसी दिन तैयार की गई थी। वहाँ उसे बहुत पीटा गया। उस के बाल नोचे गये। उसकी चीखें दूर तक गूँजती रहीं।

नारायण बीच-बीच में बूट की ठोकरें बन्द कर देता था।

"बता, साले!" नारायण गुर्राया, "कहाँ है देवकान्त? कहाँ है जासू?" फिर उस ने ज़ोर से ठोकर लगाई, पर रंजन तो पहले ही बेहोश हो गया था।

रात के अन्धकार में एक दुःखान्त तैयार हो रहा था। इसका सूत्रधार था नारायण। अब रंजन चीख़ न सकता था। अब मृत्यु एक हाथ पर खड़ी थी।

उधर मास्टर के घर में सभा हो रही थी। वहाँ कुछ नवयुवक इस पक्ष में थे कि उसी रात नारायण का अन्त कर दिया जाय, पर मास्टर ने कहा, "हम चलकर पहले नारायण से कहेंगे कि वह रंजन को हवालात में ले जाये। वह मान गया तो ठीक है, नहीं तो उसे ठिकाने लगाने से मैं किसी को न रोकूँगा।'

सैंतालीस



गाँव वालों की बात नारायण की समझ में आते देर न लगी। उसने अचिन्त्यराम को बुलाकर कहा, "तुरन्त एक नाव का प्रबन्ध करो।" उसका क्रोध शान्त हो गया था। कुछ क्षणों की खामोशी के बाद उस ने अपनी बात दोहराई, "अभी नाव चाहिए।"

"अभी लो, सरकार!" अचिन्त्यराम उल्टे पैरों लौट गया।

मालुकी का बड़ा हस्पताल यहाँ से काफी दूर था। नारायण ने यही फ़ैसला किया कि रंजन को विलिंगफुल ले जाय, जहाँ मिशनरियों ने इन्हीं दिनों एक हस्पताल खोला था।

रंजन का सिर बुरी तरह फट गया था। नारायण ने एक-आध ठोकर और लगा दी होती, तो रंजन के प्राण-पखेरू सदा के लिए उड़ गये होते।

थोड़ी देर बाद अचिन्त्यराम घबराया हुआ आया। उस ने यही विचित्र खबर सुनाई :

"गोपी भाग गई।"

"कैसे भाग गई गोपी?" नारायण गुर्राया, "भाग गई, या उसे कोई भगा ले गया?"

यह पता चलते देर न लगी कि गोपी को बाबू भगा ले गया, उसी का यह साहस हो सकता था कि अन्धकार की घनी चादर में मुँह लपेटे

आकर वाने की झोंपड़ी की पिछली दीवार तोड़कर गोपी को साफ़ निकाल ले जाये। गाँव वाले हाथ जोड़कर क्षमा माँगते रहे। मणिधर ने बीच-बचाव करते हुए कहा, "सरकार, मैं दो दिन के अन्दर-अन्दर गोपी और जादू को हाज़िर कर दूँगा।"

"गोपी भाग गई तो परवाह नहीं।" नारायण ने वस्तुस्थिति को काबू में रखने का यत्न किया, "पहले नाव तैयार करो। रंजन का इलाज कराना ज़रूरी है। जादू और गोपी को तो फिर भी ठीक किया जा सकता है।" फिर उस ने मणिधर के कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "अच्छा तो नाव खेने के लिए कौन-कौन-से दो नावरिया भेज सकते हो?"

"प्रभात और मुकुन्द ही जायेंगे।" मणिधर झट बोल उठा। नारायण ने सोचा, यह भी अच्छा हुआ कि आज प्रभात और मुकुन्द की मरम्मत नहीं की गई। उस ने जैसे क्रोध को थूकते हुए कहा, "मुझे गुस्सा आ गया था। गुस्सा बहुत बड़ा भूत है।"

मणिधर बोला, "फिर भी भगवान् का धन्यवाद है, सरकार! समय पर आप का गुस्सा ठण्डा हो गया।"

"रंजन को डिब्रूगढ़ ले जाना होगा, मिशन के हस्पताल में!" नारायण ने शान्तिपूर्वक कहा, "घबराओ नहीं। रंजन ठीक हो जायगा।"

"हाँ, सरकार!" मणिधर ने जैसे सब की ओर से कहा।

चतुर्दिक् अन्धकार था। मुकुन्द बोला, "इस गहरी, काली रात में ब्रह्मपुत्र में नाव खेना संकट से खाली नहीं, सरकार!"

"मुकुन्द ठीक कह रहा है!" प्रभात ने हुंकार लगाई, "रात बीतने दीजिए। दिन में चला जाय।"

"लाख संकट हो अभी चलना होगा," नारायण ने दोनों युवकों की पीठ ठोकते हुए कहा, "रंजन के प्राण बचाने का सवाल है। यह न हो कि कल सवेरे का सूरज रंजन के मुँह पर मृत्यु की छाप देखे। जल्दी करो, रंजन को अभी ले जाना होगा।"

"हाँ, सरकार!" मणिधर ने आग्रह किया, "अभी ले जाइए रंजन

को ! बेचारे को कुछ हो न जाय !"

एक खाट पर डालकर रंजन को ब्रह्मपुत्र के किनारे ले जाया गया। प्रभात और मुकन्द को हुक्म दिया गया कि वे फौरन सिपाहियों के साथ घाट पर पहुँचें।

"हमें भी साथ ही चलना चाहिए, सरकार !" अचिन्त्यराम बोला, "दूसरी नाव तैयार करने में कौनसी देर लगती है !"

"तुम्हारे जाने की जरूरत नहीं !" नारायण गुर्राया।

घाट पर पहुँचकर मणिधर बोला, "सरकार, आप दिखौंगमुख जाने का कष्ट न करें। मैं चला जाता हूँ। रंजन का इलाज हो जायगा। सिलौ के नाम आप चिट्ठी लिख दें।"

पर नारायण तो स्वयं ही रंजन को दिखौंगमुख ले जाने का फैसला कर चुका था। गाँव वालों को यह देखकर सन्तोष हुआ कि नारायण का दिल अब इतना पिघल गया है।

बड़े आराम से रंजन को नाव में डाला गया। नारायण ने उस के सिर पर हाथ फेरकर पुचकारा, "मुझे माफ कर दो, दादा ! तुम बच गये। नहीं तो तुम्हें कुछ हो जाता तो मैं कहीं का न रहता। सरकार मुझे फाँसी पर लटका देती।"

रंजन ने कुछ कहने का यत्न किया, पर वह बोल न सका। अब मुकन्द और प्रभात चप्पू और डाँड लेकर नाव में आ बैठे, तो मणिधर ने अपने हाथ से नाव खोलते हुए सब गाँव वालों की ओर से कहा, "भगवान् भला करें !"

"भगवान् ने चाहा, तो हम परसों तक लौट आयेंगे !" नारायण ने भर्राई हुई आवाज में कहा, "भगवान् अवश्य भला करेंगे !"

"रंजन का बाल बाँका नहीं होगा !" अचिन्त्यराम ने घाट पर खड़े खड़े कहा, "सिलौ की डॉक्टरी की भी परीक्षा हो जायगी ! रंजन के प्राण बचाने का यश सिलौ को मिलकर रहेगा !"

नाव धीरे-धीरे ब्रह्मपुत्र की वेगवती धारा की ओर बढ़ने लगी।

"आराम से नाव को ले जाना !" मणिधर ने चिल्लाकर कहा, "सुन, रे मुकुन्द ! और प्रभात, तू भी सुन रहा है न ! आज तो उसी तरह नाव खेना जैसे भगवान् कृष्ण ने कुरुक्षेत्र में रथ चलाया था !"

"तुम चिन्ता मत करो, काका !" प्रभात और मुकुन्द एक स्वर से बोले।

नाव आगे-ही-आगे बढ़ी जा रही थी। घना अन्धकार ही भयभीत करने के लिए काफ़ी था। कभी-कभी बिजली चमकती, तो लगता कि ब्रह्मपुत्र शान्त रूप भुलाकर असम्भव विकराल हो उठा है।

"अभी तो मौका है, सरकार !" प्रभात ने चप्पू चलाते-चलाते कहा, "फिर आगे जाकर नाव पीछे मोड़ने को कहोगे, तो कठिन होगा।"

"हाँ, सरकार !" मुकुन्द ने हामी भरी, "प्रभात ठीक कह रहा है।"

"चाहे सारी रात लग जाय।" नारायण ने शान्तिपूर्वक कहा, "आराम से नाव खेते-खेते कल सवेरे सूरज निकलने से पहले ही बिसाँगमुख के घाट पर नाव लग जाय, तो हमारा काम बन जायगा। बिसाँगमुख-निवासियों के जागने से पूर्व ही हमें शिलौ के हस्पताल में पहुँच जाना चाहिए।"

ब्रह्मपुत्र में इस समय नाव खेना सचमुच संकट मोल लेने से कम न था। विकराल लहरें, घना अन्धकार, बादल बरसने को तैयार, बिजली की चमक—ये सब इस भयानक नाव-यात्रा को संकटमय बना रहे थे।

चलते-चलते वे कमलिया सापरी जा पहुँचे। रंजन को बुलाने का लाख यत्न करने पर भी उस ने मुँह न खोला। जब बिजली चमकती, तो रंजन का चेहरा सब को दिखाई दे जाता।

"तुम नाव को बढ़ा ले चलो !" नारायण ने पुचकारा, "देर करना ठीक नहीं।"

प्रभात ने चप्पू चलाते-चलाते कहा, "हमारी नाव यहीं डूब जाय, तो फिर भगवान ही मालिक है !"

"वैसे मरना तो एक दिन सभी को है !" नारायण ने तान बघारा,

"एक दिन आगे, या दो दिन पीछे, सभी को मृत्यु के आंचल से बंधना है!—यह बात मैं आउनियाटी सत्र के महाप्रभु के कीर्तन में भी कई बार सुन चुका हूँ!"

तूफ़ान का ज़ोर बढ़ रहा था। पानी की आवाज़ संकट का पता दे रही थी। प्रभात ने कहा, "कोई मछलियों से पूछे, तो वे तो यही कहेंगी कि हमारी नाव यहीं डूब जाय।"

आधी रात उस पार थी, आधी रात इस पार। कमलिया सापरी से थोड़ा दिसाँगमुख की तरफ़ नाव में पानी भरने लगा। अब बाल्टी भर भरकर पानी निकालते रहना व्यर्थ था।

रंजन के चिल्लाने का तो प्रश्न ही नहीं उठ सकता था नारायण बहुत चिल्लाया, जैसे उसे सच आ गया हो कि पार की नाव भरकर डूबती है।

आख़िर नाव डूब गई।

थोड़ी दूर तक तो नारायण, प्रभात और मुकुन्द साथ-साथ रहे रंजन बेचारा तो बहुत से पानी में डूब गया था। प्रभात और मुकुन्द ने नारायण को सहारा देना चाहा, पर यह उन के बस का रोग न था।

प्रभात और मुकुन्द ब्रह्मपुत्र की धारा के साथ-साथ दिसाँगमुख की तरफ़ बढ़ चले, जैसे आज उन के तैरने की अन्तिम परीक्षा हो रही हो।

बिजली चमकी तो नारायण भी हाथ मारता नज़र आया, पर शीघ्र ही फिर अन्धकार हो गया। दोबारा बिजली चमकी, तो प्रभात और मुकुन्द को नारायण दिखाई न दिया।

"हाय बेचारा रंजन!" प्रभात ने तैरते-तैरते कहा, "नारायण के डूबने का तो मुझे दुःख नहीं।"

"नारायण के डूबने का भी दुःख किसे होगा!" मुकुन्द ने झट उत्तर दिया, "जिस ने हमारे घर जलाये, आदमियों को भून डाला, रंजन को मार-मारकर अधमुआ कर दिया—उस राक्षस के डूबने का भी भला किसी को दुःख हो सकता है!"

अड़तालीस



ब्रह्मपुत्र बड़े-बड़े कगार निगलकर भी बराबर भूखा नजर आ रहा था। यह देखकर तो यही कहा जा सकता था कि ब्रह्मपुत्र देवता नहीं, दानव है। "इस पर नारियल चढ़ाओ चाहे धूप-भरा सोने का कलश!" रायाल ने बड़ी-बड़ी दरारों की ओर संकेत करते हुए कहा, "अब यह भूमि भी कट जायगी। फिरंगी का अत्याचार अलबत्ता बढ़ गया है। पता नहीं कांग्रेस वाला स्वराज्य कब आयगा!"

"इस बार तो लगता है कि चिराशिरा के समान ही आखोसोमा भी बह जायगा!" नीलमणि ने भर्राई हुई आवाज़ में कहा, "हम कहीं के भी नहीं रहेंगे। हम नष्ट हो गये, तो फिर क्या अन्तर पड़ता है! फिरंगी का राज्य रहे, चाहे गांधी बाबा देश की गद्दी पर बैठ जायें!"

रायाल काका कहते चले गये, "शिकारी गाँव में अब थाना नहीं बनेगा, और अगर बनेगा भी तो फिर से जला डाला जायगा!" लेकिन नीलमणि की समझ में यह बात बिलकुल न आई। वह खुले शब्दों में काका की बात काटने को तैयार हो गया, "फिरंगी भी कच्ची गोलियाँ खेलकर बड़ा नहीं हुआ, दादा। उसके पास नारायण जैसा दारोगा है।"

"नारायण कुछ नहीं कर सकता!" रायाल ने बड़ी दृढ़ता से कहा, "उसे तो मुँह की खानी पड़ेगी। उसका मुकाबला एक दैवकान्त

से होता, तो और बात थी। यहाँ मामूली में ता कई बेवकान्त पैदा हो गये। उधर मामूली जान उठी है, इधर हम भी कब सो रहे हैं। अब हमें मामूली वालों को मजबूत और उद्दण्ड करार उनका उपहास करने की आदत छोड़ देनी चाहिए।"

"तो हम क्या करें?"

"क्या करें! यह भी कोई पूछने की बात है! हर आदमी अपना धर्म पहचाने।"

"अच्छा तो मेरा धर्म मुझे बताओ।"

"धर्म बताया नहीं जाता, इसे समझकर इस पर चला जाता है।"

"फिर भी कुछ तो कहो।"

"तुम तुरन्त गाँव-बूढ़ा का पद छोड़ दो।"

"मैं गाँव-बूढ़ा नहीं रहूँगा, तो कोई और रहेगा। फिरंगी के लिए तो कुछ अन्तर नहीं पड़ता।'

"यह हम देख लेंगे।"

"तो तुम भी छोड़कर दिखाओ फिरंगी की पेन्शन, तब तुम्हारी बात हमारी समझ में आ सकती है।"

"उसका फ़ैसला मैं कर चुका हूँ।"

नीलमणि के लिए यह बात बिलकुल नई थी। एक बार फ़ैसला करके राजाल पीछे हटने वाला आदमी नहीं था। राजाल सामने खड़ा था उसकी आँखों में नई चमक थी, जैसे वह दिलौगमुल की नई सम्भावनाओं का प्रतीक बन गया हो।

"पेन्शन छोड़कर तो तुम्हें कष्ट होगा।" नीलमणि ने जैसे राजाल की परीक्षा लेनी चाही।

"भरे कष्टों के लिए ही तो बना है यह शरीर।" राजाल मुस्कराया, "चाँद-कुपी में हमारे जर्मन साहब कहा करते थे—पहले सोचकर फ़ैसला करो, फिर उस फ़ैसले से पीछे न हटो।"

"तो यह तुम्हारा अन्तिम फ़ैसला है?"

"और नहीं तो !"

"पर इस से क्या लाभ होगा ?"

"लाभ की नहीं, यह तो चुनौती की बात है चुनौती हमेशा अपने से आरम्भ होती है। चाँदकुठी में हमारे नार्मन साहब कहा करते थे—आपकी बात का दूसरे पर तभी असर होगा, जब पहले आप कुछ करके दिखायें।"

बातें करते-करते वे धनसिंह की दुकान पर पहुँच गये। रामलाल ने पेन्शन छोड़ दी, यह खबर पहले ही धनसिंह तक आ पहुँची थी। उस ने छूटते ही पूछा, "क्या यह सच है काका, कि आप ने फ़िरंगी की पेन्शन पर लात मार दी ? हम ने तो यही सुना है।"

"सुना तो हम ने भी है।" रामलाल ने हँसकर कहा, "यह फ़ैसला तो मुझे बहुत पहले ही कर लेना चाहिए था। मैं कहता हूँ—अब शिकारी गाँव में दोबारा थाना नहीं बनेगा।"

रतन भी आकर इस गोष्ठी में सम्मिलित हो गया। गौहरसिंह ने गम्भीर होकर कहा, "रामलाल का यह विचार मेरी समझ में तो नहीं आता कि शिकारी गाँव में दोबारा थाना नहीं बनेगा।"

"न बने तो अच्छा है", धनसिंह बोला, "मामूली को फ़िरंगी की गुलामी नहीं चाहिए।"

"फ़िरंगी की गुलामी तो हमें भी नहीं चाहिए।" रामलाल की आवाज़ में दृढ़ता थी।

"तो क्या हम भी दिलीगमुल का थाना जला डालें ?" रतन ने बढ़ावा दिया, "क्यों, काका ! बोलो, हम क्या करें ?"

"तुम क्या करोगे ?" रामलाल ने पलटकर कहा, "तुम चाहो तो कम-से-कम दारोग़ा गोपीनाथ की मुफ़्त हजामत बनाना ही छोड़ सकते हो।"

"तुम कहते हो तो छोड़ सकता हूँ। पर इस से क्या लाभ होगा, काका ! मैं नहीं तो कोई दूसरा नापित दारोग़ा जी की हजामत करने के लिए कैंची-उस्तरा लेकर पहुँच जाएगा उनके डेरे पर।"

। ब्रह्मपुत्र

धनसिंह की चाय बिक रही थी। मालूम होता था कि जब तक शहर बाहु ब्रह्मपुत्र आसीसीमा को निगल नहीं लेता, धनसिंह की चाय इसी तरह बिकती रहेगी और इस तरह की हाल-गोष्ठी भी बराबर जमती रहेगी।

चाय पीते-पीते रामलाल की कल्पना में उस लम्बे जुलूस का दृश्य घूम गया, जो उस दिन दिसपुर से चलकर शिवसागर में कमिश्नर साहब के बंगले पर पहुँचा था। कमिश्नर साहब ने कितने आराम से यह मामला खासिमपुर ले जाने की सलाह दे डाली थी। शिकारी गाँव के कुशासन की शिकायत अब तक तो खासिमपुर जा पहुँची होगी। काश, शिवसागर के कमिश्नर साहब गाँव-बूढ़ी के मार्गन साहब जैसे होते! दोनों अंग्रेज हैं। एक कितना बड़ा देवता है, दूसरा कितना बड़ा दानव! इस दानव द्वारा डेपुटेशन का अपमान हमारे लिए असह्य था। हम ने कभी इस की कल्पना भी न की थी। वहीं कमिश्नर साहब की कोठी के सामने खड़े-खड़े मैं ने फैसला कर लिया था कि फिरंगी के हाथों मिलने वाली पेन्शन पर लात मार दूँगा।" चाय का खाली गिलास नीचे रखते हुए रामलाल ने कहा, "अपनी धरती, अपना काम; बोझा चाहे ज्यादा, कितना भी मिल जाया करेगा। अब मैं अपनी धरती के धान से ही दो जून पेट भरकर रह जाऊँगा फिरंगी की पेन्शन नहीं लूँगा, नहीं लूँगा, नहीं लूँगा!"

धनसिंह ने रामलाल की बात अनसुनी करते हुए कहा, "कहते हैं कौशारी गाँव का गाँव-बूढ़ा रंजन बहुत बहादुर निकला। उसने देव कान्त को छिपाने में मदद की। नारायण को पता लग गया। वह रंजन के पास पहुँचा। रंजन ने साफ इन्कार कर दिया। नारायण को गुस्सा आ गया, और—"

"नारायण के गुस्से को कौन नहीं जानता!" रतन कह उठा, "शिकारी गाँव का मनात बता रहा था कि नारायण ने रंजन को अपने बूट की ठोकरों से अधमुआ कर दिया!"

इतने में कामनाथ भगत भी आ निकले।

"क्या बात-चर्चा हो रही है?" भगत जी मुस्कराये।

"शिवसरी गाँव के गाँव-बूढ़ा रंजन को नारायण दारोगा ने किस तरह अधमुआ किया बूट की ठोकरों से—यही बात हो रही थी।" नीलमणि की आवाज़ भर्राई हुई थी।

"अधमुए रंजन को नाव में डालकर नारायण दिसौंगमुख की ओर जा रहा था।" धनसिंह चुप न रह सका, "वह रंजन का इलाज कराना चाहता था हस्पताल में लाकर। पहले पीटते हैं, फिर इलाज कराते दीखते हैं। कितने विचित्र हैं ज़िंदगी के चिह्न। कमलिया सापरी के पास नाव डूब गई। शिकारी गाँव के प्रभात और मुकुन्द नाव खे रहे थे। उन्होंने तैरकर जान बचाई।"

"तुम्हें किस ने बताया?" रतन की आवाज़ भर्राई हुई थी।

"प्रभात और मुकुन्द आज सवेरे यहाँ पहुँचे।" धनसिंह ने कहा, "पुलिस के डर से वे कहीं छिप गये होंगे।"

"नारायण और रंजन की लाशें अब कहाँ मिलेंगी?" नीलमणि ने आग्रहपूर्वक कहा, "तलाश तो करनी ही चाहिए। वैसे लाशें मिल भी गईं तो क्या होगा?"

"यह सब तो ब्रह्मपुत्र बाबा की इच्छा पर है।" कामनाथ भगत ने हाथ उठाकर कहा, "कोई क्या बोल सकता है? एक राक्षस और एक देवता साथ-साथ डूब गये। मछलियों के लिए तो कोई अन्तर नहीं। उन के लिए तो सब मांस बराबर है। पर सच्चा वैष्णव वही है, जो मांस को मुँह नहीं लगाता।"

"तो क्या भगत जी का विचार है कि कभी ब्रह्मपुत्र की मछलियाँ भी वैष्णव बन सकती हैं?" रतन ने हँसी की फुलझड़ी छोड़ी।

"हरि नाम की चादर ओढ़कर बात करो, बेटा रतन!" कामनाथ भगत ने जैसे आगत-अनागत की सीमा-रेखा पर खड़े होकर कहा, "यह कलियुग है, और प्रतीत होता है कि ब्रह्मपुत्र बाबा भी वैष्णव धर्म का

परिक्रमा करने पर तुल गये हैं। नाव डूबने की इतनी दुर्घटनाएँ पहले तो नहीं होती थीं। पहले इतनी बाढ़ भी नहीं आती होगी—सतयुग, द्वापर और त्रेता में! तभी तो मैं कहता हूँ, हरि नाम की चादर ओढ़कर कलियुग से पार पा लो!"

"तो क्या आपका विचार है कि धनसिंह के पाप ही पिछले-से-पिछले वर्ष की बाढ़ में हमारे दिसांगमुख की चितालिया बस्ती को ले डूबे थे!" रतन ने चोट की।

"हरि नाम! हरि नाम!" भगत जी बोले "बड़ा टिकड़ारी! बड़ा टिकड़ारी!"

"बिचारी चितालिया!" धनसिंह ने उभार हुई आवाज़ में कहा, "अब तो चितालिया का नाम ही शेष रह गया है। यहाँ तो अब ब्रह्मपुत्र और दिसाँग के संगम का आँचल फैल गया है। जहाँ कभी हमारा घर था, वहाँ अब पानी-ही-पानी है। और वहाँ अब बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को मज़े से खाती होंगी!"

"अब यह तो स्वार्थ की चरम सीमा है!" रतन ने व्यंग्य कसा, "तुम्हारे स्वार्थ का यही हाल रहा धनसिंह, तो देख लेना, ब्रह्मपुत्र बाबा एक दिन हमारे इस माँसीसिंगा को भी बहा ले जायेंगे। खैर छोड़ो! नर पखी डालकर केतली में चाय तैयार करो! आज तुम्हारी चाय में मज़ा ही नहीं आ रहा।

मधुल, जो अब तक न जाने क्या सोचकर चुप था, झट कह उठा, "नर पखी डालकर चाय बनाने की बात तो रतन ने मेरे ओठों से छीन ली! धनसिंह भाई, नर पखी डालकर चाय का रंग बाँध दो!"

रामदास हँसता चला गया, "ब्रह्मपुत्र बाबा का हाथ रोकने वाला अभी तक पैदा नहीं हुआ। यह तुम्हारा फिरंगी कितनी भी डींगें क्यों न मारे, क्या वह आज तक ब्रह्मपुत्र पर पुल बना सका है!"

"और बाढ़ रोकने की शक्ति तो फिरंगी के बापू में भी नहीं होगी!" मधुल ने दृढ़तापूर्वक कहा, "यह तो ब्रह्मपुत्र को खुद ही हम पर तरस

गया जाता है, जो यह ऊँचा उठकर भी फिर नीचे उतर आता है।"

"हरि नाम ! हरि नाम ! बड़ डिकडारी ! बड़ डिकडारी !" भगत जी ने अपनी ही हाँकी, "इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि हरि नाम की चादर ओढ़ो। अयकी या मूगा की चादर ओढ़कर कलियुग से पार पाना सहज नहीं। फिरंगी को तो हम वृथा दोष देते हैं। वह तो हमारा भला चाहता है। इसीलिए उस ने थाने बनाये, कचहरियाँ बनाईं।"

"वाह वाह !" मधुराम ने जैसे चिढ़कर कहा, "इसीलिए फिरंगी ने थाने बनाये, कचहरियाँ बनाईं! मैं कहता हूँ, फिरंगी बिलकुल नहीं चाहता कि हमारे आपस के झगड़े मिट जायें। वह तो हमारे झगड़ों को हवा देता है। उसका कानून ही ऐसा है। फिरंगी के राज्य में अभी तो मुकदमे और बढ़ेंगे। देखते नहीं, शिवसागर में पहले से कहीं अधिक हो गये हैं वकील, प्लीडर और ऐडवोकेट। उनका काम ही यह है कि सच को झूठ बनाकर दिखा दें कचहरी में, और झूठ को सच सिद्ध कर दें। छोड़ो, भाई ! मैं अकेला इस में क्या बोल सकता हूँ! फिरंगी का मुकाबला तो हम मिलकर ही कर सकते हैं।"

"हरि नाम ! हरि नाम ! बड़ डिकडारी ! बड़ डिकडारी !" भगत जी ने रट लगाई।

इतने में मालती भागती हुई आई। उसका साँस चढ़ा हुआ था। मालूम होता था, वह नाव-घाट से सरपट भागती आई है। उस ने सँभलकर कहा, "घाट पर दो लाशें आ लगी हैं!"

सब उठकर नाव-घाट की ओर चल पड़े।

उनचास



तेज हवा चल रही थी। आकाश पर मेघ देखकर लगता था कि किसी भी समय वर्षा की झड़ी आरम्भ हो सकती है।

कमखिया घाटी की ओर से बहकर आती लाशों को पहले ब्रह्मानन्दी ने ही देखा था, जब वह मछली मारने जा रहा था। उस ने बाँस फेंककर इन लाशों को काबू में कर लिया था।

दिसॉगमुख के मान-घाट पर देखते-देखते भीड़ जमा हो गई। एक लाश की आँखें बन्द थीं, दूसरी की खुली।

खुली आँखों वाली लाश नारायण की थी; बन्द आँखों वाला था रैकम, जिस के शरीर पर चोटों के निशान साफ़ नज़र आ रहे थे।

भीड़ में से किसी की आवाज़ आई, "अरे यह बन्द आँखों वाला तो कोसारी गाँव का गाँव-बूढ़ा मालूम होता है!"

"और यह खुली आँखों वाला है नारायण बरोता!" दूसरी आवाज़ आई, "बेटा जी को क्या मालूम था कि एक दिन ब्रह्मपुत्र में डूबकर मरना होगा!"

तरह-तरह के बोल सुनाई देने लगे :

"एक देव था, तो दूसरा दानव!"

"बड़ी ही मनहूस मृत्यु पाई बेचारों ने!"

"सब भगवान् का खेल है!"

आ जाता है, जो वह ऊँचा उठकर भी फिर नीचे उतर जाता है।"

"हरि नाम! हरि नाम! बड़ बिकारी! बड़ बिकारी!" भगत जी ने अपनी ही हाँकी, "इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि हरि नाम की चादर ओढ़ो। अण्डी या मूगा की चादर ओढ़कर कलियुग से पार पाना सहज नहीं। फिरंगी को तो हम वृथा दोष देते हैं। वह तो हमारा भला चाहता है। इसीलिए उस ने थाने बनाये, कचहरियाँ बनाईं।"

"वाह वाह!" अतुल ने जैसे चिढ़कर कहा, "इसीलिए फिरंगी ने थाने बनाये, कचहरियाँ बनाईं! मैं कहता हूँ, फिरंगी बिलकुल नहीं चाहता कि हमारे आपस के झगड़े मिट जायें। वह तो हमारे झगड़ों को हवा देता है। उसका कानून ही ऐसा है। फिरंगी के राज्य में अभी तो मुकदमे और बढ़ेंगे। देखते नहीं, शिवसागर में पहले से कहीं अधिक हो गये हैं वकील, प्लीडर और ऐडवोकेट! उनका काम ही यह है कि सच को झूठ बनाकर दिखा दें कचहरी में, और झूठ को सच सिद्ध कर दें। छोड़ो, भाइ! मैं अकेला इस में क्या बोल सकता हूँ! फिरंगी का मुकाबला तो हम मिलकर ही कर सकते हैं।"

"हरि नाम! हरि नाम! बड़ बिकारी! बड़ बिकारी!" भगत जी ने रट लगाई।

इतने में आरती भागती हुई आई। उसका साँस चढ़ा हुआ था। मालूम होता था, वह नाव-घाट से सरपट भागती आई है। उस ने सँभलकर कहा, "घाट पर दो लाशें आ लगी हैं!"

सब उठकर नाव-घाट की ओर चल पड़े।

उनचास



तेज़ हवा चल रही थी। आकाश पर मेघ देखकर लगता था कि किसी भी समय वर्षा की झड़ी आरम्भ हो सकती है।

अमसिया सागरी की ओर से बहकर आती लाशों को पहले अमानन्दी ने ही देखा था, जब वह मछली मारने जा रहा था। उस ने जाल फेंककर इन लाशों को काबू में कर लिया था।

दिखौगमुख के नाव-घाट पर देखते-देखते भीड़ जमा हो गई। एक लाश की आँखें बन्द थीं, दूसरी की खुली।

खुली आँखों वाली लाश नारायण की थी; बन्द आँखों वाला था रंजन, जिस के शरीर पर चोटों के निशान साफ़ नज़र आ रहे थे।

भीड़ में से किसी की आवाज़ आई, "अरे यह बन्द आँखों वाला तो केसारी गाँव का गाँव-बूढ़ा मालूम होता है।"

"और यह खुली आँखों वाला है नारायण दारोगा।" दूसरी आवाज़ ाई, "बेटा को भी क्या मालूम था कि एक दिन ब्रह्मपुत्र में डूबकर रना होगा।"

तरह-तरह के बोल सुनाई देने लगे।

"एक देव था, तो दूसरा दानव।"

"बड़ी ही मनहूस मृत्यु पाई बेचारों ने।"

"सब भगवान् का खेल है।"

अब्दुल कादिर ने मुँह बनाकर कहा, "अरे धर्मानन्दजी, क्यों बढ़-चढ़कर बयान चला रहे हो ! पर मैं इतनी बड़ी लड़की हो गई हथिनी जैसी। उस के ब्याह की तो तुम्हें कभी चिन्ता नहीं सताती। 'लो वह आ गई भारती भी। किस तरह कुदकके भारती आ रही है रामलाल काका और कन्नाथ भगत के सामने। अरे वह तो नीलमणि, धनसिंह, रत्न और मधुसूदन भी चले आ रहे हैं।"

गाँव-बूढ़ा नीलमणि ने गोपीनाथ दारोगा के पास आकर कहा, "ब्रह्मपुत्र बाबा ने तो अपनी लीला दिखा दी। अब इन लाशों को ठिकाने लगाने में क्या देर है !"

"दोनों लाशें पोस्ट मार्टम के लिए शिवसागर जायेंगी।" गोपीनाथ ने शान्त भाव से कहा, "हमें खुद जल्दी है। भारती को भेजा था। तुम्हारा ही इन्तजार था।"

पचास



अब्दुल क़ादिर अपना घर एक हज़ार से कम में बेचने पर राज़ी न था, जबकि चिन्ताप्रसाद इसे अपने 'असली मूगा सहकारी संस्थान' के लिए पाँच सात सौ में ही पटा लेना चाहता था।

चिन्ताप्रसाद ने टूटी-फूटी झोंपड़ी की तरफ़ उँगली उठाकर कहा, "इस झोंपड़ी का नहीं, मोल तो इस ज़मीन का है।"

"ज़मीन का मोल ही तो माँग रहा हूँ।" अब्दुल क़ादिर की आँखें चमक उठीं और फिर जैसे एकाएक यह चमक विलुप्त हो गई, "एक जी चाहता है—यह सौदा न करूँ, बाप-दादा की निशानी इसी तरह बनी रहने दूँ। फिर सोचता हूँ कि जब अपनी कोई औलाद ही नहीं, तो फिर किस के लिए बचाकर रखूँ यह जायदाद! आज नहीं तो कल, एक दिन इस घर को भी ब्रह्मपुत्र निगल जाएगा, जैसे मेरी ज़मीन चली गई ब्रह्मपुत्र के मुँह में।"

"ऐसे बोल मुँह से न निकालो।" चिन्ताप्रसाद ने बागडोर सँभाली, "ब्रह्मपुत्र यह अत्याचार नहीं करेगा।"

अब्दुल क़ादिर पहले तो ख़ामोश हो गया, फिर आवेश में आकर बोला, "अरे भैया, इस बस्ती का तो नाम ही भासीस्थिगा है। इसका तो यही इतिहास है। न जाने कितनी बार टूटी यह बस्ती, जो शिव सागर से यहाँ आकर ब्रह्मपुत्र के किनारे-किनारे स्टीमर-घाट तक चली गई

है। जानते हो, कभी दिसौंगमुख के नाव-घाट और शिवसागर का मील का फ़ासला था। फिर यह फ़ासला घटते-घटते सत्रह-अठारह रह गया, और अब तो यह फ़ासला तेरह मील का भी नहीं है। छोटी-सी उम्र में ही ब्रह्मपुत्र हमारी पाँच मील ज़मीन निगल गया थोड़ी करके।"

चित्राप्रसाद ने प्रसंग बदलकर कहा, "हमारे 'अमसी मूगा स्थल संस्थान' का आदर्श यही है—अच्छी तरह जीने से पहले हमें जीना चाहिए।"

"अच्छी तरह जीने का इशारा तो इस्लाम में भी किया गया है। अल्लाह से दुआ माँगने से पहले हम हमेशा यह मानकर चलते हैं 'अल्लाह हमारी गरदन की नस से भी हमारे ज़्यादा नज़दीक है' आप क्या यह नहीं मानते?"

"मानते क्यों नहीं, मिर्ज़ा अब्दुल क़ादिर!" चित्राप्रसाद ने ... की तूलिका से चित्र-सा अंकित करते हुए कहा, "भगवान् बुद्ध भी ... गये हैं कि हर आदमी बुद्ध हो सकता है, अर्थात् ज्ञान का प्रकाश सब ... लिए है। लिली को ही देख लो—"

"हाँ हाँ, अंग्रेज़ की लड़की होकर भी दिसौंगमुख की कितनी सेवा ... रही है!" अब्दुल क़ादिर ने जैसे चित्राप्रसाद के शब्द छीन लिये।

"लिली का अस्पताल इस बात का प्रमाण है कि सेवा के काम ... देशी और विदेशी का भेद भाव नहीं रह सकता।" चित्राप्रसाद की आँखें चमक उठीं, "ईसा के शब्दों में लिली यह मानकर चलती है कि 'भगवान् का राज्य तुम्हारे भीतर है।'"

"कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि दिसौंगमुख छोड़कर मैंने अच्छा नहीं किया।"

"लिली भी तुम्हारे बारे में अक्सर पूछती रहती है। तुम फिर से दिसौंगमुख में ही रहने का विचार बना लो, तो हम तुम्हारा घर ख़रीदने का विचार छोड़ देते हैं।"

"मैं लिली से मिलकर बात करूँगा ।"

"लिली भी इस पक्ष में तो बिलकुल नहीं है कि किसी के जन्म-दाता की अन्तिम निशानी इनारा बरपान खरीद ले ।'

"पिछली बार मैं एक दिन के लिए डिसाँगमुख आया था तो मुकाम ही क्या लेने लिली के इस्तबाल गया था ।" अप्पुल हाजिर मुस्कराया, "लिली ने छूटते ही कहा—'तुम बीबी-बच्चों के झंझट से मुक्त हो, मियाँ जी ! तो फिर तुम शिवसागर में झूठी अफवाहें दे-देकर क्यों बदनामी कमाते हो ?' मैं ने साफ़-साफ़ कह दिया—देखो, मेम साहब ! किसी ने झूठ-मूठ बहका दिया है मेरे बारे में ! मैं तो यह गुमान शुरू करता हूँ न किसी को इसकी सलाह देता हूँ ।' इस पर मैं ने देखा कि लिली की तसल्ली हो गई ।"

"और क्या कहा था लिली ने ?"

"नीरद की बहुत प्रशंसा कर रही थी कि वह एक ऐसी पोथी लिखने में लगा है, जो सब देशों के सामने ब्रह्मपुत्र की सच्ची तसवीर रखेगा । कह रही थी—नीरद जब से डिसाँगमुख से बाहर चला गया है, उसका एक-एक पल अपनी पोथी के लिए मुनासिब सामग्री जुटाने में ही बीत रहा है । नीरद की चर्चा करते हुए लिली की आँखें कुछ-कुछ भीग गईं । बोली—'नीरद की चिट्ठी बहुत देर से आती है ।' मैं ने कहा, 'नीरद बहुत निर्मोही है, जैसे यह हमारा ब्रह्मपुत्र है ।' मेरी बात बदलकर वह बोली—'नीरद की पोथी के पहले भाग की सब से बड़ी उपमा की है ।' हाँ तो भैया विद्याप्रसाद, मेरे देखते-देखते लिली अलमारी से नीरद की पोथी निकाल लाई और एक जगह से पढ़कर सुनाने लगी ।"

बातें करते-करते वे विद्याप्रसाद की बैठक में चले आये थे । विद्याप्रसाद अपनी अलमारी से झट उस पोथी का प्रथम खण्ड निकाल लाया । पहले उस ने पोथी खोलकर नीरद के अपने हाथ के लिखे हुए शब्द दिखाये, जो उस ने यह पुस्तक विद्याप्रसाद को भेंट करते हुए लिखे

ब्रह्मपुत्र ।

विदेशों में बहुत मँहगे दामों बिकवा देते हैं। दो-तीन सौ की कसर निकलते बहुत देर नहीं लगेगी।

चाय की चुस्की भरते-भरते उस की दृष्टि समाचार-पत्र की एक सुर्खी पर पड़ी—'ब्रह्मपुत्र की सहायक नदियों में बाढ़'। चाय का कप समाप्त करके उस ने पढ़ना आरम्भ किया :

"डिब्रूगढ़, २० जुलाई। यहाँ अन्तिम रूप से प्राप्त समाचार के अनुसार ब्रह्मपुत्र की सहायक नदियों बूढ़ी दिहींग और दिहींग में भयानक बाढ़ आ गई है। डिब्रूगढ़ सब डिवीज़न का विस्तृत क्षेत्र जलमग्न हो गया है। अधिक नहीं, तो इसका प्रभाव एक लाख व्यक्तियों पर तो निश्चय ही पड़ा है।

"दिहींग के किनारों पर बनाये गये बाँध अनेक स्थानों पर क्षतिग्रस्त हो चुके हैं। तींगाखेत और डिब्रूगढ़ तथा माहारकेरिया और मुराने के बीच की सड़कें स्थान-स्थान पर टूट-फूट गई हैं। बाढ़ में अनेक पशु मर गये। कई गाँवों के मकान तीन-तीन फुट पानी में हैं।

"कुछ स्थानों का सम्बन्ध देश के अन्य क्षेत्रों से बिलकुल टूट गया है। इस के फलस्वरूप सहायता-कार्यों में विलम्ब हो रहा है। सरकार ने कई स्थानों पर आवश्यक सहायता-कार्य आरम्भ कर दिया है और बाढ़ पीड़ित लोगों को बाढ़ वाले प्रदेश से निकाला जा रहा है।"

"अरे यहाँ एक कप चाय और चाहिए!" उस ने आवाज़ दी, और यह सोचकर कुछ लज्जित भी हुआ कि लोग बाढ़ में डूब रहे हैं और यहाँ चाय के कप में तूफ़ान आ रहा है। चाय का कप आया तो उस ने सोचा कि इसे बिलकुल न उठाया जाय। शीघ्र ही चाय की चुस्की भरते भरते वह सोचने लगा—खबर-कागज़ की भाषा बाढ़ का वास्तविक चित्र कहाँ खींच सकती है? इन्हें तो खबर छापने से मतलब। यहाँ तिलौंगमुख में भी तो ब्रह्मपुत्र का पानी हमारे भालीडीगा से डेढ़ मील भी नहीं रह गया और कौन जाने कब हमारे घर भी पानी में डूब जायें। फिर तो अब्दुल क़ादिर चाचा का घर भी पानी में डूब जायगा!

चलो यह सौदा हो गया, यह अच्छा हुआ। हमारे ईस्लाम के लिए यह शुभ हो, मंगलमय हो।'

शिवसागर की अदालत में अब्दुल क़ादिर के घर की रजिस्ट्री का दृश्य उसकी कल्पना को छू गया। सौ-सौ के दस नोट अब्दुल क़ादिर ने कितने मज़े से मेरे हाथ से ले लिये थे। पूरा घाघ ही तो है अब्दुल क़ादिर। अब ये नोट उस के पास जमा रहेंगे।

उस ने एक गहरी साँस ली—पहले भी सौ-सौ के दस नोट मार लिये! हज से आकर तो उसे उदार बनना चाहिए था। पर उलटा और भी लालची बन गया। मैं कहता हूँ, उस ने हज नहीं किया होगा। यों ही रास्ते से लौट आया होगा। हाजी क्या ऐसे होते हैं? मैं ने क्या हाजी नहीं देखे? हाजी तो बहुत उदार होते हैं। अब्दुल क़ादिर का क्या है? वह स्वयं भी तो कहता है—दम-का-दम, न पैसा न दाम! फिर वह सात सौ में क्यों न माना? और अधिक लेता, तो आठ सौ में राज़ी हो जाना चाहिए था। बाप रे बाप! पूरे एक हज़ार में राज़ी हुआ। एक पाई कम पर भी न माना। अच्छा केप, तुम खुश रहो! तुम ने यह न सोचा कि विद्यामन्दिर पर पूरी धारणी का भार है। यहाँ तो निबाह होना कठिन हो रहा है। ऊपर से दिखावा बनाये रखना पड़ता है। बचत तो होती ही नहीं। खर्च पर खर्च। बाप रे! खर्च तो यों आता है जैसे चेहरे के आसपास मच्छर मँडराता है।

वे दिन उस की कल्पना में घूम गये, जब वह यहाँ के स्कूल में अध्यापक बनकर आया था। किस तरह गाँव-बूढ़ा नीलमणि ने उसे स्कूल से निकलवाया, किस तरह उस ने विपत्ति के दिन काटे, किस तरह इस्लाम साहब की सहायता से यह 'पासकी मूरा सहकारी सम्भार' खड़ा किया, फिर तो सैकड़ों बच्चे आये और गये पिछले अनेक वर्षों में—यह लम्बी कहानी है। नीलमणि से मैं अभी तक बदला नहीं ले सका। नीलमणि के स्थान पर शायद मीरी को गाँव-बूढ़ा बनवाने का मेरा विचार अभी तक पूरा नहीं हुआ। मैं ने नीलमणि से बदला न लिया, तो यह भी क्या

पार करेगा ?"

उस ने उठकर स्नान किया, फिर धुली हुई धोती-कमीज पहनी। शिवप्रसाद दर्पण के सामने खड़े होकर बालों में कंघी की। नई चप्पल पहनकर वह बाहर जाने के लिए तैयार हुआ। फिर उसे विचार आया—क्या और बाढ़ के दिन हैं नई चप्पल तो खराब हो जायगी, वैसी भी नहीं रहेगी।

फिर से पुरानी चप्पल पहनकर वह उस तरफ़ निकल पड़ा, जहाँ ब्रह्मपुत्र के किनारे बड़ी-बड़ी दरारें पड़ गई थीं। एक क्षण के लिए उसे उन लोगों का विचार आया जिन के पशु ब्रह्मपुत्र में बह गये थे या जिन के घरों में दो-दो फुट पानी आ गया था। इस तरह तो लोग दरिद्र और कंगाल बन जायेंगे, उन्हें दरिद्र नारायण कहा जायगा; सुनने में यह नाम कितना ही मज़ा क्यों न लगे महाजनों के मुख से, पर दरिद्र और कंगाल होना तो बहुत कष्टदायक है।' चलते-चलते वहाँ पहुँच गया जहाँ बहुत से लोग एकत्र हो चुके थे और जहाँ दरारें मुँह बाये नज़र आ रही थीं।

कोई कह रहा था, "यह तो ऐसे है जैसे हवन करते हुए किसी के हाथ जल जायें।"

"हाँ भाई, हम लोग ब्रह्मपुत्र पर नारियल चढ़ाते नहीं थकते, फिर भी इस का कोप दूर नहीं होता।"

"हरि इच्छा! बड़ विकारी! बड़ विकारी!"

"सरकार स्थान-स्थान पर सहायता तो कर रही है, पर यह आटे में नमक से भी कम है।"

"अरे भाई, सरकार भी क्या करे!"

"विदेशी सरकार है न! अपनी सरकार होती तो बे-मन से थोड़े ही करती सहायता।"

जन-जन की करुण मुद्रा देखकर शिवप्रसाद ने भी वैसी ही मुद्रा बना ली। वह सोचने लगा—इस बाढ़ से कैसे छाया मिलेगा? उस का मन

तूफान में डोलने वाली नाव के समान असमंजस में पड़ गया। यह सब नियति की विडम्बना है। पर लोगों को बाढ़ से बचाने के लिए सरकार कुछ कम सहायता तो नहीं कर रही। फिर भी लोग सरकार को दोष देते नहीं थकते, सरकार को 'विदेशी' कहकर असहयोग की धमकी देते हैं।

लोग एकटक ब्रह्मपुत्र को देख रहे थे। असमिया, मीरी, नेपाली—सभी लोग एकत्रित थे। किसान, मछुवे और गाबरिया भाभी और दुकानदार। किसी ने कहा, "हमारे आलीसीमा को डुबोते ब्रह्मपुत्र को उतनी देर भी नहीं लगेगी जितनी श्राद्ध दिवस पर ब्राह्मण के सम्मुख केले का पत्ता रखकर भोजन परोसने और उसके आचमन करने में लगती है।"

यह कल्याण भगत की आवाज़ थी।

"ऐसा मत कहो, भगत जी!' विद्याप्रसाद ने पास आकर भर्राई हुई आवाज़ में कहा, "दिसाँगमुख से ब्रह्मपुत्र का कोई वैर तो नहीं है।"

इतने में आलीसीमा की तरफ से अब्दुल क़ादिर आता दिखाई दिया।

"कहिए, हाजी साहब!' विद्याप्रसाद ने आगे बढ़कर अब्दुल क़ादिर का स्वागत किया। वह उस का बाज़ू खींचकर भगत जी के पास ले गया और बोला, "हाजी मियाँ से पूछो भगत जी, कि अपने घर के बदले इतनी बड़ी रक़म उन्हें कैसे हज़म होगी!"

"एक हज़ार भी कोई मोल होता है अपने बाप-दादा के घर का!" अब्दुल क़ादिर मुस्कराया, "यों ही मैं ने अपना घर बेच दिया, फिर भी शाम सबेरे शिवसागर में बैठे-बैठे सोचा, चलकर देखें कि कहीं दरारें हमारे घर के बिलकुल पास तो नहीं आ गईं।"

"यह कहो कि एक हज़ार लेकर भी घर से मोह नहीं टूटा!"

बावन



अतुल देर तक वह श्लोक गुनगुनाता रहा, जो एक बार उस ने अपने ससुर कन्हैया भगत से सुनकर कण्ठस्थ किया था। इस में मामो भगत जी की आत्म-कथा बोल उठी थी। उसका ध्यान बार-बार भगत जी की अपनी की चादर की ओर चला जाता, जिसे वे अनेक वर्षों से सँभाल-कर ओढ़ते आते थे।

वह घर के बगीचे में खड़ा कभी बतखों और हंसों की किलकारियाँ सुनने लगता, कभी उसका ध्यान अपने बेटे विक्रम की ओर चला जाता, जो अब आठ वर्ष का हो गया था और इस समय बतखों के पीछे भाग रहा था।

फिर अतुल को ध्यान आया कि वह चार बच्चों का पिता है। पहला अतिथि तो विक्रम ही था; फिर एक-एक करके तीन कन्याएँ आईं। फूलतारा की रूप-छटा पर जैसे चार बच्चों की माँ होने का तनिक भी प्रभाव न पड़ा हो। विक्रम के बाद पहले नीरजा आई, फिर पद्मप्रिया और फिर हेमप्रतिमा।

वह सोचने लगा—किस प्रकार मैं सर्वप्रथम फूलतारा की ओर आकर्षित हुआ था, फूलतारा भी तो मेरी ओर आकर्षित हुई होगी। स्त्री-पुरुष का परस्पर आकर्षण तो चिर-सत्य है। फूलतारा सुहासिनी है, पतिभक्ता है, कल्याणी है। हमारा विक्रम बड़ा होकर महाप्रतापशाली

बनेगा। नीरजा पाँच वर्ष की होने आई, पद्मप्रिया दो वर्ष की है और हेमप्रतिमा तो मुश्किल से सात मास की होगी।

नीरजा गिलहरी के पीछे भाग रही थी, पद्मप्रिया माँ की बगल में सो रही थी, नन्ही हेमप्रतिमा माँ का दूध पी रही थी। वह सोचने लगा—हमारा घर बिलकुल नहीं बदला; हाँ, पेड़ बड़े हो गये। नारियल के पेड़ तो आकाश को छू रहे हैं। पोखर वैसा ही है, जैसा पहले था। दिसाँग मुख के लोगों में सियाप्रसाद ने ही सब से अधिक धन कमाया है अब तो उस ने अपने संरथान के लिए अब्दुल कादिर वाला घर भी खरीद लिया। हडसन साहब का रौब बढ़ा है, पर सिली का सेवा भाव देखकर तो सियाप्रसाद की अमीरी अच्छी लगती है न हडसन साहब का रौब। नीरद बहुत दिनों से बाहर चला गया। रतनलाल काका का समय अब मनसिंह की दुकान पर ही बीतता है। हमारा हाट बाजार यथापूर्व लगता है वैसे ही चीजें बिकती हैं और खरीदी जाती हैं। बहुत कम अन्तर पड़ा है, बहुत ही कम। पठार में यथापूर्व घास उगता-पकता है, वैसे ही मधुमक्खियाँ मधु जुटाती हैं फूल-फूल से रस लाकर। बापू अब पहले से अधिक धीर, गम्भीर और शान्त प्रतीत हो रहे हैं। शायद बापू मेरी बात मान जायें; शायद वे फिरंगी की पराधीनता का सिक्का उतार फेंकें। मैं तो कई बार सलाह दे चुका हूँ—'बापू, तुम गाँव-बूढ़ा का पद छोड़ दो।' अब तो रतनलाल काका भी यह सलाह दे रहे हैं।

वह गुनगुनाने लगा—

मम पटो मे पितुरंगभूतः पितामहाद्यैः समुपभुक्तयौवनः।
अलंकरिष्यत्यथ पुत्रपौत्रकान् मयाधुना पुष्पवदेव धार्यते॥

मूलतारा ने पास होकर पूछा, "यह कैसा पाठ कर रहे हो?"

"मूलतारा, बड़ा ही मंगलमय श्लोक है। कवि कहता है—'मेरे पितामह आदि ने इस वस्त्र के यौवन का उपभोग किया, यही वस्त्र मेरे पिता के अंगों का भूषण था, अब यही वस्त्र मेरे पुत्र-पौत्रों के अंग सुशोभित करेगा इसलिए मैं इसे पुष्प के समान धारण किये हुए हूँ।' कवि

बाप्पी की वन्दना करो, फुलतारा!"

"इतना पुराना होने पर भी यह बस्त फटा क्यों नहीं?" फुलतारा हँस पड़ी।

हँसते समय फुलतारा के दाँत चमक उठे जैसे आज से अनेक वर्ष पूर्व चमक उठे थे, जब वह सर्वप्रथम मधुल के सम्पर्क में आई थी। हँसते-हँसते वह धरे को घूम गई। मधुल फिर विचारधारा में बह गया—दिसाँगमुख के मुखमण्डल पर तनिक भी क्षीणता नहीं आई। यथापूर्व अतिथि का आदर-सत्कार होता है। यथापूर्व बोहाग बिहू नाचते हैं, और माघ बिहू की 'मेजी' तापते हैं। यथापूर्व गाँव की पंचायत में पंच परमेश्वर की आवाज सुनते हैं। जो धूर्त हैं, वे धूर्तता नहीं छोड़ते, पर पंच-परमेश्वर बार-बार कहते हैं—'धूर्तता तो लँगड़ी-लूली वस्तु है, पर सचाई अपने पैरों से चलती है।'

विक्रम बराबर बरसों के पीछे भाग रहा था। बाल्यकाल भी कैसा स्वप्नयुग होता है! मधुल फिर विचारधारा में बह गया—साधन भी वैसे ही बापू से द्वेष करता है। मैं जानता हूँ, बापू ने गाँव-बूढ़ा का पद छोड़ दिया तो साधन के घर घी के दीये जलेंगे। फिरंगी से हाथ मिलाकर वह झट दिसाँगमुख का गाँव-बूढ़ा बन जायगा। जब से उस ने सुना है कि बापू गाँव-बूढ़ा के पद से मुक्त होने की सोच रहे हैं, वह ऊपरी मन से बापू का निकटस्थ मित्र बन रहा है। शिकारी गाँव का बापू अपनी प्रेयसी मोघी के साथ भागकर यहाँ आया, तो बापू ने उन्हें अपने यहाँ आश्रय दिया। उनका विवाह कराने में बापू के साथ साधन ने भी हाथ बटाया, पर बाद में फिरंगी के पास जाकर साधन ने यही रिपोर्ट की—'दिसाँगमुख के गाँव-बूढ़ा ने शिकारी गाँव का थाना जलाने वाले अपराधी के विवाह में योगदान दिया!' साधन तो दिसाँगमुख को फिरंगी का गुलाम बनाये रखना चाहता है। फिरंगी के आगे लार टपकाना ही वह श्रेयस्कर समझता है। अधम! पामर! वह क्या जाकर बापू का मुकाबला करेगा! बापू तो दिसाँगमुख के हितचिन्तक हैं।"

एकाएक उस के कल्पना-क्षितिज पर धमानन्द का चेहरा उभरा। उस ने सोचा—उस दिन जब धमानन्दी ने आकर कहा—'कहो, गाँव बूढ़ा जी! भारती को नीलकण्ठ से ब्याह दें, या कहो तो शिकारी गाँव के मुकुन्द या प्रमोद में से एक को वर चुन लें!' बापू बोले—'भारती की क्या राय है?' धमानन्दी ने साफ़-साफ़ कहा—'भारती तो मन ही-मन देवकान्त का वरण कर चुकी है।' बापू बोले—'फिर तुम चिन्ता छोड़ो। समय आने पर देवकान्त के साथ ही भारती का विवाह होगा।' मैं ने पास से कहा—'देवकान्त की भी इच्छा होगी, तब न!' अरे हाँ हाँ। बापू ने गम्भीर मुद्रा बनाकर कहा, 'दिसाँगमुख में तो सदा से यही होता आया है पर और कन्या की परस्पर स्वीकृति के बिना कब कोई विवाह सम्पन्न हुआ!' अरे वाह री भारती तुम धन्य हो! कब से बैठी देवकान्त की प्रतीक्षा कर रही हो। तुम्हारा विवाह हो गया होता, तो तुम भी चार बच्चों की माँ बन गई होतीं! चार बच्चों की माँ! अमल इस विचार पर वह हँस पड़ा।

फूलतारा ने पास आकर कहा "किस बात पर हँसी आ गई!"

"सोच रहा था, न भारती का विवाह हुआ न वह चार बच्चों की माँ बनी!" अतुल फिर हँस पड़ा।

"भारती तो देवकान्त से ही विवाह करेगी।" फूलतारा ने सरल भाव से कहा, "वह पूछ रही थी—कुछ देवकान्त का भी पता है? तुम तो जानते होगे!"

"देवकान्त मास्को से आकर शायद भारती को पहचाने भी नहीं, यह पूछना तो अलग रहा कि तेरे मुँह में कितने दाँत हैं। भारती से कहना—क्यों मिथ्या कल्पना में आयु गँवा रही है! दिसाँगमुख में उसकी जोड़ का लड़का मिलना कठिन क्यों न हो, असम्भव तो नहीं!"

"गोपी कह रही थी, देवकान्त तो मेधावी वीर है और वह भारती को भूला नहीं होगा।"

"ये लड़कियाँ भी कितनी मूर्ख होती हैं!"

"वे लड़के कितने अशिष्ट होते हैं, मगरमच्छ के समान!"

अतुल ने वस्तुस्थिति पर काबू पाते हुए कहा, "देखो मर्द, रुको मत। भारती की क्या आयु होगी?"

"चौबीस की तो होगी!" फूलतारा मुस्कराई, "जितनी मैं हूँ, उतनी समझो। भारती कहती है—देवकान्त जैसे लड़के सारे हिन्दुस्तान में कम ही होंगे।"

"छिनाल!" अतुल ने व्यंग्य कसा, "देवकान्त की इतनी तारीफ कर रही थी। उस से कहना—बिल्ली के भाग्य से यह छींका टूटने का नहीं।"

"मेरी सहेली को छिनाल कहते हो! तुम्हारी तो यह बात है—ब्रह्मपुत्र में जितना बाँध लगाओ, उसका जोर भी बढ़ने लगता है।"

"ब्रह्मपुत्र तो हर साल चढ़ता है। कोई ऐसा साल भी आता है, जब यह चढ़ता न हो? खैर, छोड़ो। भारती क्या सचमुच सोचती है कि देवकान्त से उसका विवाह होगा?"

फूलतारा मुँह बनाकर बोली, "भारती दूध-पीती बच्ची नहीं है कि ऊपर का रंग जाने बिना ऊपर से दीये की बाती सँजो दे।"

"भारती और देवकान्त का विवाह हो भी जाय, तो कितना बड़ा बेमेल जोड़ा बनेगा! वह मछलियों की बातें करेगी, तो वह महाशय क्रान्ति-चर्चा में संलग्न रहेंगे।"

फूलतारा ने विनयपूर्वक कहा, "भारती पर तो तुम्हें दया आनी चाहिए।"

"दया क्या?" अतुल हँस पड़ा।

फूलतारा ने मिचकाकर कहा, "सुना नहीं—कभी ब्रह्मपुत्र की नाव बैलगाड़ी पर, तो कभी बैलगाड़ी ब्रह्मपुत्र की नाव पर। दूसरों की खिल्ली उड़ाने से पहले सोच-समझ लो कि कोई हमारा भी उल्लू बना सकता है।"

"अच्छा, अच्छा!"

जूरातमा गम्भीर मुद्रा बनाकर रसोई की तरफ़ चली गई। अतुल वैसे-का-वैसा बग़ीचे में खड़ा रहा। बिल्ल यथापूर्व बछड़ों के पीछे भाग रहा था। उस के जी में तो आया कि उस से कहे—इधर आ जाओ बेटा, तुम थक गये होगे। पर वह अनमने भाव से खड़ा रहा।

ब्रह्मपुत्र की ओर से पानी से भीगी हवा आ रही थी। चतुर्दिक् काले मेघ घिरे हुए थे। कभी-कभी श्यामल मेघपट पर दामिनी अपनी बाँकी छब दिखा जाती थी।

बाहर से फाटक उठाकर नीलमणि ने बग़ीचे में प्रवेश किया और घुसते ही आवाज़ लगाई, "किधर हो, अतुल बेटा!'

"आया, बापू!" कहते हुए अतुल आगे बढ़ा।

"तुम्हारे लिए शुभ समाचार है। मैं फ़िरंगी को गाँव-बूढ़ा की पदवी लौटा आया।'

"यह तो बहुत अच्छा किया, बापू!" अतुल ने प्रशंसापूर्वक कहा, "अब उस घूसख़ोर की न चलेगी। परवाह नहीं, आज सिसीमुख के भाग जागे। मैं कहता हूँ बापू, अब आनन्द आयेगा। सिसीमुख में दो गाँव-बूढ़ा होंगे जन-जन की ओर से तुम होगे बापू, और फ़िरंगी की ओर से होगा सापन मौजे' अब फ़िरंगी से हमारी लड़ाई चलेगी।"

नीलमणि ने अपने कन्धे पर अपनी ही चादर दुरुस्त करते हुए कहा, "ब्रह्मपुत्र बढ़ा आ रहा है, और लोगों को दिखाने के लिए फ़िरंगी सहायता का नाटक खेल रहा है। मैं देखकर आ रहा हूँ। बड़ी-बड़ी दरारें पड़ गई हैं किनारे-किनारे।"

"अब तो बाँध बाँधने की आवाज़ लगानी होगी, बापू!"

अतुल और नीलमणि फाटक उठाकर बाहर निकल गये।

तिरपन



शिवाप्रसाद ने अब्दुल कादिर वाले घर की भी पूरी तरह मरम्मत कराने से पहले ही सफ़ेदी की एक कूची फिरवाकर इस में अपने निवास का प्रबन्ध कर लिया ।

पहला घर, जो इस घर से बिलकुल सटा हुआ था, जहाँ उस ने अपने निवास के अतिरिक्त 'असमी-मूगा सहकारी संस्थान' का केन्द्र खोला था, अब नये प्रबन्ध के अनुसार संस्थान के केन्द्र के लिए ही प्रयोग में लाने का फ़ैसला किया गया ।

ब्रह्मपुत्र बाढ़ का राग गाये जा रहा था, तैराकों को चुनौती देता, किनारों की परिधि फैलाता जैसे कोई लखपती सेठ अपना व्यापार बढ़ाता है । शिवाप्रसाद को लगा कि पिछले दस-पन्द्रह वर्षों में विशेष रूप से उन के संस्थान ने वैसे ही प्रगति की है, जैसे ब्रह्मपुत्र का पाट पहले से चौड़ा हो गया था ।

रात का समय था, घर वाले सो गये थे ।

शिवाप्रसाद लैम्प के प्रकाश में बैठा कुछ पढ़ रहा था । पुस्तक से नज़र हटाकर वह आकाश की ओर देखने लगता । मेघाच्छन्न आकाश पर एक भी तारा दिखाई नहीं देता था । बिजली चमक जाती थी । अपनी विजय पर वह मन-ही-मन पुलकित हो उठा—अब्दुल कादिर का घर मिल जाने से संस्थान का रौब बढ़ गया । इस का मोल इतना अधिक देने का कारण यही था कि यह मकान संस्थान के केन्द्र से सटी हुई

थी। उस की कल्पना में सम्मुख कादिर की दृष्टि उभरी—'सलाम, हाजी साहब !' उस ने मन-ही-मन कहा—मेरे जीवन पर तो श्रम की छाप है। मेरे पथ में यह कोलम आये। तुम्हें क्या याद नहीं, मीलमणि ने स्कूल से मेरी नौकरी छुड़वा दी थी ? फिर भी क्या मैंने पराजय स्वीकार की ?

सहसा ज़ोर की बिजली कड़की। विश्वप्रकाश की पत्नी उठकर दौड़ी दौड़ी आई और बोली, "तुम सोते क्यों नहीं ?"

"सो जाऊँगा। तुम जाकर सो रहो।" कहकर विश्वप्रसाद फिर पुस्तक खोलकर बैठ गया।

अपने कक्ष से पत्नी ने फिर आवाज़ दी, "बिजली कड़क रही है। मुझे डर लगता है।"

"डरने की क्या बात है ।' विश्वप्रसाद ने भी बिजली के समान कड़ककर कहा।

वह पढ़ने लगा

'जैसे लता वृक्ष से लिपट जाती है, वैसे ही तुम मुझ से लिपट जाओ ! तुम मेरे वश में आ जाओ; मैं मधु से भी अधिक मधुर हूँ। जैसे हवा धरती पर घास को हिला देती है, वैसे ही मैं तुम्हारे मन को हिला दूँ जिस से तुम मुझसे प्रेम करो !'

अथर्व वेद में वर्णित प्रेम-सम्बन्धी दृष्टिकोण का यह सुन्दर उल्लेख देखकर उस की कल्पना में अपना लम्बा दाम्पत्य-जीवन घूम गया। वह सोचने लगा—जीवन की मंज़िल तो बहुत लम्बी है। जीवन में लता और वृक्ष के परस्पर आलिंगन की बात ही होती, तो फिर यह हमारा 'भारतीय-युग सहकारी संस्थान' जन्म न लेता। हवा घास को धरती पर हिला देती है। उस पर तो कुछ खर्च नहीं होता। पर पत्नी को वश में रखने के लिए क्या केवल 'मधु से भी अधिक मधुर' बनकर ही गुज़र होनी सम्भव है ! घर में पैसा न हो, तब चोपट हो जाता है। वही स्त्री, जो कल तक मुस्कराती प्रतिमा थी, घर के खर्च के लिए पैसा न मिलने पर

सिविल लाइन बन जाती है।"

वह उठकर अपनी पत्नी के कक्ष में गया। वह बेसुध सो रही थी। दूसरे कक्ष में बच्चे सो रहे थे।

वह फिर आकर अपनी जगह पर बैठ गया। उस ने सोचा—आज नींद क्यों नहीं आ रही?

अब मूसलाधार वर्षा आरम्भ हो गई थी। हवा की धमाचौकड़ी, बिजली की कड़क, दूर से ब्रह्मपुत्र की बाढ़ का भयंकर-घूँ स्वर।—यह थी बड़ी भीषण पृष्ठभूमि थी। जैसे यह प्रलय की रात हो, जैसे आज सब बह जाने वाला हो।

शिवप्रसाद सोचने लगा—आज ही अब्दुल कादिर को एक हज़ार के नोट दिये। रिशोंमुख का तो अन्त आ गया। अब नहीं बच सकता। अब कोई आशा नहीं। उस ने अपने मन में कहा—बेटा, कैसे पार करोगे वैतरिणी नदी? किस गाय की पूँछ थामकर तैरोगे? नाव भी डूबेगी और तुम भी नहीं बच पाओगे!

उस ने उठकर अपनी पत्नी को जगाया। बच्चे उसी तरह सो रहे थे।

सहसा बिजली कड़की। पत्नी ने भयभीत होकर पति को जकड़ लिया। शिवप्रसाद को लगा—मैं वृक्ष हूँ, लता मुझ से लिपट गई है।

वे देर तक भयभीत-से बैठे रहे। आँखों की नींद जाने कहाँ विलुप्त हो गई थी।

"यह सब हमारे लिए शुभ प्रतीत नहीं होता।"

"तुम क्यों डर रही हो? इस में अशुभ क्या है? अब्दुल कादिर तो हाजी हैं; बीस पीढ़ियों से उन के पुरखा हाजी रहे। वे सब नेक इन्सान थे। हमारे हाजी साहब भी तो कम नेक नहीं।"

"बहुत देखे हैं हाजी और तीस-मार्खा। मुँह में राम, बगल में छुरी। मेरे मन का मैल तो रिशोंमुख को डुबोकर ही छोड़ेगा।"

"तुम तो व्यर्थ ही डर रही हो।"

अचानक बिजली कड़की। शिवप्रसाद की पत्नी पति के भुजपाश

से निकलकर बच्चों के कक्ष में चली गई। विद्याप्रसाद सोने का यत्न करने लगा।

सहसा बिजली कड़की। विद्याप्रसाद की पत्नी चौंककर उठी। बिजली तो पास ही गिरी थी, बहुत पास, ठीक इसी घर की छत को बेधती हुई, ठीक उसी जगह गिरी थी, जहाँ विद्याप्रसाद लेटा हुआ था।

"हाय! पतिदेव!' विद्याप्रसाद की पत्नी ने चीख भरी और फिर वह बच्चों को छाती से लगाने लगी, जो इस दुर्घटना से बुरी तरह भयभीत हो गये थे।

चौवन



मुर्गे के बाँग देने के घण्टा-भर बाद लोग आने आरम्भ हुए। किसी के हाथ में कुदाल थी, किसी के हाथ में टोकरी। देखते-देखते सारा दिसाँगमुख आकर खड़ा हो गया।

हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने अथवा नारियल या दूध का घड़ा ब्रह्मपुत्र पर चढ़ाकर ही उस का कोप शान्त करने का युग समाप्त हो गया था। क्या मीरी, क्या आसमिया, क्या बंगाली हिन्दू-मुसलमान, पुरुष और स्त्रियाँ, युवक और वृद्ध, सभी दृढ़ प्रतिज्ञ थे—अपने हाथों के परिश्रम से हम ऐसा बाँध तैयार करेंगे, जिस के सामने ब्रह्मपुत्र घुटने टेक देगा। इस सामूहिक कार्य द्वारा तो हम फिरंगी के मन पर भी अपनी छाप लगा देंगे।'

और तो और, देवकान्त की माँ भी टोकरी उठाये आ पहुँची। रामलाल काका ने उसे बहुत रोका, पर उस ने एक न मानी। "हम दिसाँगमुख का नया नक्शा बनाने आ रहे हैं!" उस ने टोकरी उठाते हुए कहा।

"हमें बहुत बाद में अक्ल आई!" रामलाल ने कहा, "चलो आई तो सही!"

कुदालें चल रही थीं, टोकरियाँ उठ रही थीं। मिट्टी की लम्बी और मोटी दीवार उठाने का शुभ संकल्प बता रहा था कि जनशक्ति का रुख किधर है।

देवकान्त की माँ को पुत्र के अन्तर्धान का इतना दुःख न था

जितना बिजली गिरने से चिरागप्रसाद के मरने का। मिट्टी ढोते-ढोते वह सोचने लगी—ज़ोर से बिजली गिरने की आवाज़ आई, तो किसने सोचा होगा कि किस का परवाना कट गया। बेचारा चिरागप्रसाद! लोग कहते हैं कि वह दिसौंगमुख का ठग था; मेरा तो वही भाया था। भगवान् उस की आत्मा को शान्ति दे!

किसी ने आवाज़ देकर कहा, "जल्दी-जल्दी हाथ चलाओ। यह बेगार नहीं, फिर हाथ धीरे-धीरे क्यों चलें?"

हाथ पहले से तेज़ चलने लगे। तरह-तरह की आवाज़ें आ रही थी

"बाढ़ उतार पर है। ब्रह्मपुत्र में ही नहीं, दिसौंग में भी पानी कम हो गया।"

"धान की सारी फसलें तो नष्ट हो गई।"

"सुनते हैं, माकिरपुर चाय बाग़ान को बाढ़ से भारी नुकसान पहुँचा है।"

"सड़क के आठ मील लम्बे भाग में बाढ़ का पानी भर गया था। सुना है, अभी तक पानी नहीं उतरा।"

"तुम तो खबर-कागज़ खोलकर बैठ गये। टोकरी उठाओ, टोकरी!"

"आसाम ट्रंक रोड के कुछ भाग में पानी भरा रहा दो सप्ताह तक। पर डर नहीं है।"

"और कोई खबर हो, तो उसे भी ढेर कर दो मिट्टी के साथ। खबर कागज़ में यह हमारी खबर नहीं छपेगी।"

"कौन-सी खबर?"

"यही कि दिसौंगमुख में बहुत बड़ा बाँध बाँधा गया।"

"पहले तैयार तो हो जाय। खबर होनी चाहिए लम्बी, फिर उसका ढोल बजता है।"

"बिजली गिरने से दिसौंगमुख के सेठ चिरागप्रसाद मर गये, यह खबर भी तो छपी होगी।"

"बुरा आदमी तो नहीं था शिवाप्रसाद !"

"भाई, अब तो वह मर गया। अब उस की बुराई क्यों की जाय ?"

"बेचारे की घरवाली की माँग का सिन्दूर पुँछ गया, जैसे ब्रह्मपुत्र मि को बहा कर ले जाता है।"

किसी का मुँह निस्तेज न था। वे लोग भी, जिन्होंने आरम्भ में धि की योजना को 'बिल्ली के गले में चूहा द्वारा घण्टी बाँधने' की संज्ञा दी थी, पूरी तरह आस्थावान थे।

ऐसे लोग भी थे, जो सुनकर भी इन बातों को अनसुनी रहे थे। वे स मिट्टी खोद रहे थे, मिट्टी डाल रहे थे। निर्निमेष दृष्टि से वे आकाश ी ओर देखने लगते, जैसे कह रहे हों—इसी तरह बिना वर्षा के एक ास और बीत जाय, फिर यह बाँध तैयार हो जायगा।

"अरे वाह रे पट्ठे, कमाल कर दिया।"

"दिसाँगमुख का इतना मोह न होता, तो हम यहाँ से भाग लते होते!"

"इस मन्थर गति से काम चला, तो तीन मास में भी बाँध नहीं बन ायगा।"

"रोम-रोम से जवानी फूटी पड़ती है, और हाथ चलता रहा है मरि गन की तरह!"

बाँध बनते कई दिन हो गये थे मुर्गे के बाँग देने के घण्टा-भर बाद कार्य आरम्भ हो जाता था। हवा में बड़ी ताजगी थी धूप सन्तुलन से बुनी पीशे के समान पारदर्शक; आकाश नीलवर्ण। एक सप्ताह से निरन्तर दिसाँगमुख का वातावरण ऐसा ही था।

अम्मुख कादिर भी आकर मिट्टी ढोने वालों में सम्मिलित हो गया था। उसे देखकर एक तरफ खेलते बच्चे धमाचौकड़ी मचाने लगे।

"अख्तयार मियाँ कहते हैं कि बच्चे तो बहिश्त के फूल हैं।" अम्मुख कादिर बोला, "दिसाँगमुख वालों के सिर पर जितने बाल हैं, उतने साल की उम्र अख्तयार मियाँ दिसाँगमुख के इन बच्चों को बख्शे!"

बच्चों ने अब्दुल कादिर के मुँह से यह प्यारा-सा बोल सुना, तो उन में से एक ने नारा लगाया, "हाजी साहब—" दूसरे बच्चे बोल उठे, "ज़िन्दाबाद!"

"आवाज़ पूरी नहीं निकली!" अब्दुल कादिर ने ठट्ठा किया, "निकले कैसे! उतना भी तो नहीं खाते, जितना चुग्गा चिड़िया के बच्चे के मुँह में जाता है। जब हम बच्चे थे, तो दिन-दिन भर चरते रहते थे।"

बच्चे हँस पड़े और किलकारियाँ मारते अब्दुल कादिर के चारों ओर नाचने लगे।

"मुझे तुम से यही आशा थी, अब्दुल कादिर!" रामलाल काका ने पास आकर कहा, "क्या हुआ, अगर तुम्हारा घर गिर गया, दिसाँगमुख के साथ तो तुम अब भी जुड़े हुए हो।"

अब्दुल कादिर ने आकाश की तरफ हाथ उठाकर कहा, "यहाँ का अन्न-जल मेरी हड्डी में मिला हुआ है, क्या मैं उसे भुला सकता हूँ! मुझे किराये के मकान में ही क्यों न रहना पड़े, मैं दिसाँगमुख में ही रहूँगा। मेरा घर खरीदने वाला भी तो बिजली का शिकार हो गया। हाय बेचारा शिवप्रसाद!"

"ठग विद्या में कुशल था शिवप्रसाद!" रामलाल ने विवेचनात्मक स्वर में कहा, "फिर भी देवकान्त की माँ को ठगते समय थोड़ा हाथ रोक लेता था।"

"अरे मियाँ, कोई आता है, कोई जाता है!" अब्दुल कादिर ने दुआ के अन्दाज़ में हाथ उठाये, "जीवन की नाव तो चलती ही रहती है। हमारी तो बीस पुश्तें यहीं बीतीं, यहीं दिसाँगमुख में, यहीं ब्रह्मपुत्र के किनारे। अब यह बाँध तैयार हो गया, तो दिसाँगमुख बच जायगा अनेक पुश्तों तक!" यह कहते-कहते अब्दुल कादिर की भर्राई हुई आवाज़ में वेदना और भी तीव्र हो गई, जैसे उसे ख्याल आ गया हो—मेरी तो कोई सन्तान नहीं, फिर मेरी पुश्त कैसे आगे चलेगी!

रामलाल बोला, "हमारी और हमारे बच्चों की रक्षा करेगा यह

बाँध। मियाँ जी, आने वाली पीढ़ियाँ इसे सम्मानपूर्वक याद करेंगी। इस बाँध के बनने की कहानी का उल्लेख तो लोरियों में भी होगा। माघ बिहू की 'मिजी' गाते समय जब कोई बाँध-बूढ़ा ब्रह्मपुत्र और मामुली के बीच चलने वाली मयूरपंखी नाव की कथा सुनाने बैठेगा, तो अन्त में इस बाँध का नाम भी जोड़ दिया करेगा।"

"मयूरपंखी नाव की कथा में देवकान्त का प्रसंग भी तो जुड़ जायगा, जिसकी बाट जोहते एक महुए की बेटी ने अब तक ब्याह नहीं कराया।" अब्दुल कादिर का सिर नारियल की तरह डोल रहा था, "रानी गुइडालो अभी तक फिरंगी की कैद में है! उस ने नागा पहाड़ियों में क्रान्ति का झण्डा ऊँचा किया था। फिरंगी ने उसे पकड़कर कैद कर लिया। कई साल से वह कैद है। उसका भी तो कोई प्रेमी होगा, जैसे हमारी भारती का प्रेमी है देवकान्त।'

राखाल ने भुनभुनाकर कहा, "जब तक फिरंगी का पत्ता नहीं काट दिया जाता, न रानी गुइडालो जेल से छूट सकती है और न देवकान्त ही दिसाँगमुख लौट सकता है। जब रानी गुइडालो और देवकान्त के बाल पक जायेंगे, दाँत झड़ जायेंगे, अगर उस समय फिरंगी का बिस्तर यहाँ से गोल हुआ भी, तो उन बेचारों का क्या बनेगा!"

पास से किसी ने कहा, "देवकान्त और रानी गुइडालो का जोड़ा कैसा रहेगा!" और वह खिलखिलाकर हँस पड़ा।

"क्रान्तिकारियों की खिल्ली उड़ाना पाप है!" दूसरे ने बढ़ावा दिया।

राखाल काका अपनी ही कहते चले गये, "मैं भी बाल-बच्चों वाला आदमी नहीं हूँ, अब्दुल कादिर। पर दिसाँगमुख के सभी बच्चे अपने ही बच्चे तो हैं। उन की भावी मुसीबतों का हल है यह बाँध, जो हम बाँध रहे हैं। यह हमारा उपहार होगा आने वाली पीढ़ियों के लिए। सोने का कंगन, या चन्द्रहार, या नीलम की अँगूठी ही उपहार होता हो, यह बात नहीं।"

"हाँ, हाँ!" अब्दुल कादिर की कल्पना शक्ति सजग हो उठी, "अगर हम ने यह बाँध तैयार करने में ढील की होती, तो ब्रह्मपुत्र सारे विर्मोयिमुख को निगल जाता, जैसे वह मेरी ज़मीन को हड़प गया था!" उस की आँखों में आँसू आ गये, और उस ने बच्चे की तरह बिलखते हुए कहा, "मैं ने अपना घर बेचकर गुनाह किया। अल्लाह मियाँ मुझे कभी माफ़ नहीं करेंगे।"

रतलाल ने उसे दिलासा देते हुए कहा, "हज़ार के नोट तो तुम ने सँभालकर रख छोड़े होंगे न! हम उसी मोल पर तुम्हारा घर वापस दिला देंगे।"

अब्दुल कादिर फिर बिलखने लगा, "मेरा घर अब मुझे नहीं मिलेगा!"

जहाँ दरारें पड़ गई थीं, वहाँ से आधा फलाँग गाँव की तरफ़ हटकर बाँध बाँधा जा रहा था। काम बड़ी तेज़ी से काम हो रहा था, जैसे मिट्टी हलमि लगाकर बाँध की दीवार पर आ रही हो। हाथ छलाँगों में सात टोकरी मिट्टी बाँध पर पहुँच जाती, जैसे बाँध वाली मिट्टी नीचे वाली मिट्टी से कह रही हो—तुम भी ऊपर आ जाओ तो नीचे पड़ी रहने से तो कहीं अच्छा है कि सौ गज़ ऊपर चली आओ।

एक तरफ़ बच्चे बातें कर रहे थे :

"कल हाट बाज़ार है, बाँध का काम बन्द रहेगा।"

"कल हम लेमनचूस खरीदेंगे। पूरन वाला चूरन बेचेगा, आवाज़ लगा-लगाकर—भात हज़म, मिट्टी हज़म, कसल हज़म, पत्थर हज़म!"

"लेमनचूस की लारी! लेमनचूस की लारी! खटमिट्ठे लेमनचूस! मुँह में पानी, आँख में सुरमेदानी!"

"और हम लेमनचूस खरीदेंगे—शिवसागर के बने हुए नहीं, गोहाटी के बने हुए।"

एक तरफ़ जलतारा और भारती मिट्टी ढो रही थीं। भारती ने अवसर पाकर कहा, "जलतारा, आज वह भी यहाँ होता, तो कितना

अच्छा लगता ।"

"किसी क्रान्तिकारी को दिल देने से तो यही अच्छा है, बैठकर प्याज के छिलके गिनती रहो ।" अलतारा हँस पड़ी ।

भारती के चेहरे पर एक शान्त, स्निग्ध आभा थी। उस की आँखों में एक मधुप की लड़की की-सी धूर्तता तो नाम को भी न थी। चेहरे का रंग, जैसे तपा हुआ ताँबा। उस की आँखें बता रही थीं कि देवकान्त के लिए वह अन्तिम सांस तक प्रतीक्षा करती रहेगी।

"क्या तुम्हें विश्वास है कि देवकान्त की प्रेमिका रानी गुड़ासो नहीं, भारती है ?" अलतारा ने मज़ाक के स्वर में कहा, "तुम्हें मछलियों की पहचान तो है, आदमी की पहचान बिलकुल नहीं ।"

भारती ने बड़ी स्निग्धता से कहा, "कभी तो मामुली में उसका काम खत्म होगा, कभी तो वह दिसाँगमुख आयेगा। वह एक बार आये तो सही, मैं उसे वश में कर लूँगी ।" और फिर उसने ठण्डी आह भरकर कहा, "शायद भगवान् ने यही लिख दिया हो भारती के माथे पर कि वह अपने निर्मोही की बाट जोहते-जोहते मर जायेगी ।"

"यह बात तुम आज सोच रही हो !" अलतारा ने व्यंग्य कहा, "अभी तो सौ-सौ टोकरी मिट्टी ढोने का काम सामने है, फिर कहीं छुट्टी मिलेगी ।"

वे फिर मिट्टी ढोने लगीं ।

पचपन



बाँध को तैयार होते चार मास लग गये। दूसरे तीसरे दिन लिली भी वहाँ जा निकलती और वह भी टोकरी उठाने की इच्छा प्रकट करती। अतुल हमेशा यही कहता, "रोग के विरुद्ध हस्पताल भी तो एक बाँध है, जो पहले ही तैयार कर रखा है आपने!" लिली पुलकित हो उठती और हस्पताल में आकर रोगियों की देखभाल और दवा-दारू में अपना समय बिताने लगती।

इधर वह कुछ दिनों से उदास रहने लगी थी। नीरद का कोई पत्र नहीं आया था। उसके पिता को उसका मार्ग पसन्द न था वे तो यही चाहते थे कि वह सरकारी नौकरी करे और अपने वंश की ख्याति बढ़ाये, पर लिली के मन पर तो ईसा के सेवा-धर्म की छाप थी।

एक दिन सहसा लिली को एक लिफ़ाफ़ा मिला। खोलकर देखा, तो नीरद का पत्र था

प्रिय लिली,

इतने दिनों से तुम्हें कोई पत्र नहीं लिखा, पर श्वेत कमलिनी के समान तुम्हारा अपूर्व रूप मेरे मानसरोवर में बराबर खिला हुआ है।

इधर मैंने एक कविता लिखी है। तुम भी इसे देखो। यह मेरी पहली कविता है; अभ्यास न रहने के कारण कहीं-कहीं छन्द-भंग हुआ होगा निश्चय ही बीच-बीच में लय भी टूटी होगी; पर यदि तुम न इसे

औपचारिक कसौटी पर परखने की बजाय इस का रस लेने की चेष्टा की, तो मुझे सन्तोष होगा :

वर्तमान का अन्त हो चला,
अच्छा तो अब विदा,
उठाओ अपना झोली,
स्थान करो खाली ।
वह देखो भविष्य-पाहुना
मंगल-छत्र सँवारे,
आ गया हमारे द्वारे !
बोल भरी औ भोली,
अब तो आ गई डोली;
चार कहार,
खड़े तैयार !
विद्यापति की कविता से अपना मन लगाता है मेरा—
'जनम अवधि हम रूप नेहारिनु,
नयन न तिरपित भेल !'
चण्डीदास की कविता से लो सीख,
अरी ओ स्वप्नमयी, यह मिथ्या आनाकानी :
'एमन पीरिति कभू देखी नाइ सुनि,
पराने पराण बाँध आपना आपनि !'
इस वातायन से मैं देख रहा हूँ—
कोई एकाकिनि, चिर-सुहासिनि, सेवाव्रत-धारिणि,
थर्मामीटर लिये हाथ में सोच रही है—
ज्वर बहुत अधिक है,
देना होगा क्वीनिन-मिक्सचर !
तंग आ गया मैं भी लिखते-लिखते अपना यह 'ब्रह्मपुत्र'
जाने कब होगा पूरा ।

मैं भी सफ़र में हूँ, ओ सेवाव्रत-धारिणि !
सोचा था, मैं कभी नहीं लूँगा कड़वी कोनीन !
कलकत्ते में कहे तुम्हारे शब्द आज भी गूँज रहे मेरे कानों में—
'स्वाद-भरी कोनिन-गोली तो डरपोकों के लिए बनी है !
अरे मूर्ख, सोचो तो जब तक नाव डुबेगी,
उस से पहले कड़वी कोनिन-गोली अपना असर करेगी !'
आज तो मैं भी पी सकता हूँ कड़वा कोनिन-मिक्सचर !
लिये हाथ में मंगल-सूत्र, मैं दे सकता हूँ
सच्चा लेक्चर !
धन्य तुम्हारा अस्पताल, हे सेवाव्रत धारिणि !
धन्य यह मेरा चिर अपूर्ण ग्रन्थ 'ब्रह्मपुत्र', हे मन्दाकिनि !
लिली, तुम श्वेत कमलिनी,
और मैं नीरद कजरारा मेघ !
आज करो स्वीकार मेरी पाती,
संजोओ दीया-बाती !
सच मानो तो मैं कहता हूँ,—
जैसा कि लिखता है एक शायर—
'साल परस के बाद शायद
हासिल हो सके नज़्मों को कुव्वत,
जिससे बढ़ कर सके पयाम
वहदात का फ़रमान
अलफ़ाज़ की है क्या मजाल कि कुछ करें बयान,
जवानी की यादों का दर्द
कि जिसका होता जाता इख़्तिताम !
इस की तो है एक मिसाल—
ऊँचे एक पहाड़ पर
साल में एक बार

आती है नन्ही-मुन्नी चिड़िया
और घसी जाती है करके तेज़ अपनी चोंच
चिड़िया की इस कोशिश से,
सोचो तो कितनी मुद्दत बाद
यह पहाड़ घिस-घिसकर हो जायेगा ग़ायब !
उतनी ही मुद्दत दरकार
कि शायद अपने लफ़्ज़ों में कर सके बयान
अपने दिल के ब्रह्मपुत्र का खौफ़नाक तूफ़ान !
कि बस एक आहे सर्द के सिवा,
कि बस एक अश्के गर्म के सिवा,
इस सिलसिले में और कुछ कहना नहीं आसान !'

पुनश्च

मेरी इस तुकबन्दी पर हँसना मत।

तुम्हारा

नीरद।

इस चिट्ठी को बन्द करके अभी कुछ सोच ही रही थी कि किसी ने आकर कहा, "राखाल काका देवकान्त की माँ को लाये हैं। उसे तेज़ बुखार है।"

सिली झट उठकर खड़ी हो गई।

छप्पन



जहाँ कभी अंग्रेज़ों ने सर्वप्रथम दिसांगमुख के घाट पर उतरने के पश्चात् बाँसों का बैरक बनवाया था, और वहाँ से उठकर कैम्प के शिवसागर चले जाने पर बेल-गाँव की बस्ती बस गई थी, वहाँ शिवसागर-दिसांगमुख सड़क के किनारे लिली ने बाँसों का अस्पताल खोल रखा था। असमिया कारीगरों ने इस प्रदेश में मिलने वाले बाँसों से ही अस्पताल के वार्ड खड़े किये थे, बाँसों से ही लिली ने अपने रहने के लिए क्वार्टर बनवाया था।

अब तो खैर इस अस्पताल को सरकारी सहायता भी मिलने लगी थी, पर लिली का खयाल था कि अस्पताल जैसी संस्था को अन्य आत्म निर्भर संस्थाओं के समान चलाना उचित नहीं। जिस दिशा से भी सहायता आये, ठीक है; सरकार दे, तो ठीक है, मिशन वाले अपने फ़ण्ड से रुपया दें, तो ठीक, या शिवसागर, डिब्रूगढ़ और गोहाटी के धनी-मानी व्यक्तियों से चन्दा लिया जाय, या दिसांगमुख और आसपास के गाँवों के खाते-पीते लोग अपनी इच्छा से हाथ बटायें; कैसे भी हो काम चलना चाहिए। यह सोचते-सोचते वह देवकान्त की माँ के पास पहुँची, जिसे सवेरे का जलपान दिया जा रहा था।

"कैसी तबीयत रही रात-भर ! नींद आई ?"

"नींद दो-तीन बार टूटी, हाथ-पैर सुन्न होने लगते हैं।"

लिली जानती थी कि देवकान्त की माँ खून की कमी से पीड़ित है, उस

के अनुसार इलाज शुरू कर दिया था। "तुम बिलकुल ठीक हो जाओगी।" शिली मुस्कराई और दूसरे बीमारों को देखने के लिए आगे बढ़ गई।

गांधी जी के किसी व्याख्यान की रिपोर्ट में शिली ने पढ़ा था कि वे इस देश के प्रत्येक गाँव को आत्म-निर्भर देखना चाहते हैं। 'हमारा हर गाँव एक उद्योगशाला बनना चाहिए।' ये शब्द तो ठीक ही हैं इन के पीछे सचाई झलकती है। हमारा अस्पताल भी तो किसी उद्योगशाला से कम नहीं।

सवेरे के 'राउंड' के पश्चात् शिली अपने क्वार्टर के बरामदे में कुरसी डालकर बैठ गई और जेब से निकालकर नीरद का पत्र पढ़ने लगी। इस पत्र को वह सातवीं बार पढ़ रही थी।

कुछ समझ में नहीं आता कि नीरद कहना क्या चाहता है। उस ने सोचा—'उठाओ डबल डोली।' वर्तमान को सम्बोधित करते हुए कवि ने दूर की कौड़ी ढूँढ लाने की कोशिश की है।' वह मन-ही मन हँस पड़ी—'पोइट्री' का शौक चालीस साल की उम्र के बाद अजीब लगता है। ये तो फ़िजूल सी लाइनें हैं, उलझी-उलझी बे-सिर-पैर फिर भी मन में सिहरन-सी हुई।'

भीतर जाकर उस ने दर्पण में चेहरा देखा—छोटे-छोटे बिल्लौरी दाँत वालों की धूँघर वाली लटें होठों पर लिपस्टिक का हल्का-सा रंग। सफ़ेद स्कर्ट को ध्यान से देखा कमर पर बँधी लाल पेटी को थोड़ा कस लिया। जी में आया, ब्रह्मपुत्र की ओर घूमने चला जाय।

वह हर रोज़ ब्रह्मपुत्र पर घूमने आया करती थी। किसी-किसी दिन रात को वह स्टीमर-घाट पर अपने डैडी और मम्मी के साथ भी रात गुज़ारने चली जाती, पर जब से डैडी ने साफ़-साफ़ कह दिया, 'नीरद से तुम कोई रिलेशन न रखो', उस का मन कुछ फट गया था। उस ने अपने मन को समझाया—जल्दी नहीं, मैं हर रोज़ की तरह शाम को ही सैर को निकलूँगी।

सन्ध्या समय शिली निर्निमेष दृष्टि से ब्रह्मपुत्र को देखती रही, जिस

पर डूबते सूरज की किरणें नाटकीय ढंग से झिलमिली-सी झाँकियाँ कर रही थीं। वह सोचने लगी—नीरद इसी ब्रह्मपुत्र पर विचित्र-सी पोथी लिख रहा है। भानुमती के पिटारे की तरह वह इधर उधर से गुज़रे हुए बातें किसी-न-किसी तरह ठूँसा-ठूँसकर भर देना चाहता है। शायद उस इस बात की परवाह नहीं कि पुस्तक का पूरा भार एकाकी 'इफैक्ट' क्या होगा। वह परछाइयों के पीछे भाग रहा है। शायद उस के सामने कोई प्लान नहीं। इसीलिए उसकी गाड़ी बीच-बीच में रुक जाती है। अधिक पन्ने ही पुस्तक को बड़ा नहीं बनाते। उतनी बात लिखी जाय, जितनी पूरी तरह महसूस की जाय। फिर तो लेखक नोबल प्राइज़ भी पा सकता है।

यहीं ब्रह्मपुत्र के किनारे खड़े-खड़े मैं ने ये बातें नीरद से कही थीं। मैं ने उस की तरफ मुस्कराकर देखा था। उस ने हँसकर कहा था—लिली, तुम कोई मेनका नहीं हो कि मेरी तपस्या भंग कर सको!' मुझे बहुत गुस्सा आया। जी हुआ कि साफ-साफ कह दूँ—मेनका के बच्चे, यहाँ से हट जाओ! पर हँसकर बात टाल दी। घिसे हुए ताँबे के समान चमक रहा था नीरद का चेहरा। लिखना कोई छूमन्तर नहीं। लिखना तो तपस्या चाहता है, अनुभव चाहता है, लगन चाहता है, खाली भाषा के दम पर नहीं हो सकता। इस के लिए लेखक का दृष्टिकोण चाहिए, विषय चाहिए, पुराने और नये साहित्य का अध्ययन चाहिए!'

उसकी कल्पना में डैडी का चेहरा उभरा। डैडी ठीक सोचते हैं कि मैं ऐसे आदमी से 'मैरेज' करूँ जो इज़्ज़त वाला हो और जो उन की लड़की की लाइफ तबाह न करे!'

कई नावें आ-जा रही थीं। नाव-घाट से सवारियों और मल्लाहों की आवाज़ें सुनकर लिली को लगा कि इन में उसके लिए कोई आवाज़ नहीं। मुझे नीरद पसन्द है, तो डैडी को बीच में बोलने का क्या 'राइट' है! मम्मी पर भले ही डैडी हुक्म चलाया करें, भले ही राह चलते लोगों पर रौब गाँठें, स्टीमर-घाट पर काम करने वालों को भले ही डिसिप्लिन की धमकी दिया करें, मैं तो डरने वाली नहीं हूँ। गुस्से में आकर डैडी पर

को सिर पर उठा लेते हैं। घर में तो घर की तरह रहना चाहिए, घर को मछली बाजार तो नहीं बनाना चाहिए। और वह सोचने लगी—यह विशाल जलधारा अपने भीतर कोई भयंकर तूफान छिपाये बह रही है। 'आज डैडी मेरे और नीरद के मामले में बोलते हैं, कल अस्पताल के मामले में टाँग अड़ायेंगे।'

माव-घाट से लौटते हुए शिली को रास्ते में जलतारा मिली जो कलसा उठाये पानी-घाट से पानी लाते आ रही थी। "देवकान्त की माँ का बुखार कुछ उतरा, डॉक्टरनी जी?" जलतारा ने पूछ लिया।

"वह चंगी हो जायगी।" शिली मुस्कराई।

"एक बात कहूँ," जलतारा ने समीप होकर कहा, "जब मेरा विवाह हुआ, तो मैं ने अपनी माँग के सिन्दूर से थोड़ा-सा तुम्हारे सिर पर लगा दिया था—"

"मुझे याद है।" शिली हँस पड़ी।

"उस सिन्दूर ने असर क्यों नहीं दिखलाया?" जलतारा मुस्कराई और फिर सँभलकर बोली, "नीरद बाबू कब आयेंगे? उन्हें बुला लो न।"

"बुला लेंगे।" शिली ने बिना झेंपे उत्तर दिया।

शिली अस्पताल लौटी, तो नीरद के पत्र का जवाब लिखने बैठ गई, पर कुछ लिखा ही नहीं जा रहा था। उसे याद आया कि नीरद उसे कलकत्ता से शान्ति-निकेतन घुमाकर लाया था, जहाँ से उस ने एक चित्र खरीदा था, जो अब तक उस के पास था।

डिनर पर बैठे-बैठे उसे लगा कि नीरद अब जल्दी आयेगा और आकर अपनी तुलना रेशम के कीड़े से करेगा—"जैसे रेशम का कीड़ा रेशम कातता है, मैं यह पोथी लिख रहा हूँ। हम एक शर्त पर 'लाइफ पार्टनर' बन सकते हैं कि तुम अस्पताल चलाओ और मैं लेखनी चलाऊँ।"' वह मन-ही-मन हँसी—यह कैसी शर्त है!'

'स्कर्ट' उतारकर उस ने 'नाइट गाउन' पहना और नौकर को आवाज दी, "डिनर में क्या देर है?"

सत्तावन



भारती ने कजरारी आँखें नीचे अम्बर की ओर
उठाईं। खड़े-खड़े उस ने अँगड़ाई ली। एकदम
नितम्बिनी, जो कभी मछली-सी चंचल थी। आज
तो वह गम्भीर प्रतीत हो रही थी—मर्यादा में बँधी,
परम्परा से जुड़ी। अब वह पच्चीसवें वर्ष में
पदार्पण कर रही थी।

दो दिन से वह बराबर कमलिनी छापरी पर आ रही थी देवकान्त
की बाट जोहकर वापस विसर्जित चली जाती। आज तीसरा दिन था
आज फिर वह बापू से बहाना करके आई थी।

आ रे आ, अब आ जा रे!—वह मन-ही-मन कह रही थी। कल
हंसों का झुण्ड आधी पूड़ी के समान अर्ध गोलाकार बनाता दूर निकल
गया। भारती का उड़नछू मन भी कलहंसों के साथ ही उड़ जाता, पर
-से तो देवकान्त की प्रतीक्षा थी।

उस ने खड़े-खड़े फिर अँगड़ाई ली—लोग क्या सोचते होंगे? किसी
और महुए की बेटी तो इतने दिन बिन-ब्याही नहीं बैठी रही। प्रथम
फाल्गुन था उस दिन, जब मैं ने मन-ही-मन देवकान्त को वर लिया था।
मदारी है मदारी—वह हमारा देवकान्त। अपने झोले से कान्ति का
गोला निकालकर हवा में क्या उछाला, मेह लगाने की धुन ही बिसर
गई। ऐसा भी करते हैं!'

जैसे वह सदियों से देवकान्त से स्नेह किये जाती थी। वह शिकारी
मखपुत्र।

गाँव की दिशा में देखने लगी, जिधर से देवकान्त के आने की आशा थी।

उसका सिर चक्कर काटने लगा—क्या देवकान्त आज भी नहीं आयेगा? पास से खरगोशों की जोड़ी सिर से ऊँची घास की ओर आती पगडंडी की तरफ़ सिर पर पैर रखकर भागी। मुझ से तो ये खरगोश भी अच्छे हैं।

उसने मन-ही-मन कहा—देवकान्त का शायद यह विचार हो कि ब्रह्मपुत्र की मछली, ब्रह्मपुत्र में ही भली। मुझ से बात करने के लिए उसे अवकाश नहीं। होता, तो वह कभी अवश्य मिलता।' यह शिकारी गाँव की दिशा में निर्निमेष दृष्टि से देख रही थी।

स्नेह तो सनातन है—यह सोचने लगी—प्रतिदिन नूतन बन आता है स्नेह।' और फिर जैसे भीतर से आवाज़ आई—'ओ री ओ, मितम्मिली, मैं आऊँगा, अवश्य आऊँगा।' उसका हृदय पुलकित हो उठा।' आज मैं उस से कहूँगी—बहुत हो ली कान्ति। अब घर में रहो। तुम्हारी कान्ति से तो कुछ आता-जाता नहीं। पुलिस का दबदबा तो रत्ती भर भी कम नहीं हुआ। नाव-घाट पर गोपीनाथ बारोसा का मामूली सिपाही भी पहुँच जाता है, तो हर नावरिया और मछुआ मन से काँपने लगता है। तुम दिसाँगमुख जाकर नहीं रहने लगो, तो अब गोपीनाथ बारोसा तुम्हें हाथ नहीं लगायेगा। तुम्हें तो नौकरी भी मिल सकती है। स्टीमर-घाट पर कम्पनी को एक आदमी चाहिए। स्कूल में भी एक मास्टर की जगह खाली है। पुलिस से लड़कर तो घाटा-ही-घाटा है। गाँव बूढ़ा भीमसमेदिया ने अपनी पदवी छोड़ दी, तो क्या सरकार को दूसरा गाँव बूढ़ा नहीं मिला? अब छायम मीरी गाँव-बूढ़ा बना बैठा है। व्यर्थ ही उस दिन जुलूस निकाला। उस से क्या होता है? लिली ने हस्पताल खोलकर दिसाँगमुख को नाम पहुँचाया। अतुल ने भी कुछ तो किया; उसी ने तो ब्रह्मपुत्र का बाँध बाँधने के लिए लोगों को ललकारा था। उस दिन नाव-घाट पर खड़ा अब्दुल कादिर बापू से मछली ख़रीदते समय कह रहा था—'आज़ादी अजादीन के चिराग से नहीं आ सकती, एक

दिन में !' देवकान्त क्या इतना भी नहीं समझता ? राखाल काका बापू से अपनी ही कहते रहते हैं—'एक देश के लोग दूसरे देश के लोगों पर तभी तक हुकूमत कर सकते हैं, जब तक गुलाम देश गुलामी के लिए राज़ी हो !' वह फिर शिकारी गाँव की दिशा में देखने लगी—अब तो देवकान्त को आ जाना चाहिए !'

भौंहें ऊपर उठाकर उस ने शिकारी गाँव की दिशा में देखा। कोई नाव नहीं आ रही, एक भी नहीं ! मैं देवकान्त से कहूँगी—अतुल की बात मानकर दिसाँगमुख में रहो। तुम्हारे चरित्रवान होने में तो मुझे सन्देह नहीं। तुम अच्छे हो, तुम्हारा स्वभाव अच्छा है, तुम्हारा रूप अच्छा है बस एक बात मान जाओ। दिसाँगमुख में रहो, यहीं से काम चलाओ। लाइन मिस्त्री को भी अपने हाथ में कर लो। ऐसी स्थिति लाओ कि फिरंगी को दीया लेकर ढूँढने से भी गाँव-बूढ़ा न मिले। मैं कहूँगी—घर का सुख बड़ी चीज़ है। तुम अब दिसाँगमुख में ही जमकर रहने का संकल्प करो। मेरे प्रति तुम्हारा कर्तव्य तभी शुरू होगा, जब हमारा विवाह होगा पर माँ के प्रति क्या तुम्हारा कोई कर्तव्य नहीं ? माँ की सेवा क्या देश-सेवा से अलग है ? माँ को कुछ हो गया, तो तुम हमेशा के लिए कर्तव्यच्युत हो जाओगे !

वह एक घर चाहती थी, अपना घर, पिता का घर नहीं, पति का घर, जहाँ वह स्वतन्त्रता से रह सके, अपने मन की कर सके। फिरंगी के हाथों दिसाँगमुख की स्वाधीनता से कहीं पहले, वह अपने पिता के हाथों स्वाधीन होना चाहती थी। वहाँ बापू मेरी राह देख रहे होंगे !—उसे ध्यान आया—परवाह नहीं। मैं बापू के नाम लिखी हुई तो नहीं हूँ। मैं ने अपना जीवन किसी के हाथ गिरवी नहीं रखा। अपने जीवन का भाड़ा मैं खुद चुकाऊँगी !'

दूर से कलहंसों की तिरछी पाँत गगन-पथ से आई और शिकारी-गाँव की ओर निकल गई। भारती सोचने लगी—अतुल ने झूठ तो नहीं बताया होगा कि एक दिन इसी कमलिया चापरी पर उसकी देवकान्त

से भेंट हुई थी। वह तो कह रहा था—देवकान्त स्वयं तुम से मिलने को उत्सुक है कमलिया सापरी पर! वह आये तो सही, मुझ से कहे तो सही—ब्रह्मपुत्र की मछली ब्रह्मपुत्र में ही मली! मैं कहूँगी—प्यार करो, प्यार को ही लक्ष्य बनाओ। प्यार की पालकी में बैठो। प्यार का इतिहास लिखो। मैं तो मछुए की लड़की हूँ। मैं तो मछली पकड़कर गुज़र करना जानती हूँ। मैं तुम्हें भी यह काम सिखा दूँगी, अगर तुम मानोगे। नहीं तो, जो भी करो, बस दिसाँगमुख में आकर रहो मेरे साथ। मैं तुम्हें अपनी आँखों पर बिठाऊँगी, पलकों की चिक डालकर छिपा लूँगी, ताकि तुम्हें नज़र न लग जाय।'

साँझ उतर रही थी। शिकारी गाँव की ओर से कोई नाव आती दिखाई न दी। "अच्छी बात है," उसने मन-ही-मन कहा, "न आये देवकान्त। अब तो नाव खोलनी चाहिए।" और वह नाव में बैठकर चप्पू चलाने लगी।

ब्रह्मपुत्र शान्त गम्भीर गति से बह रहा था। जाड़े में ब्रह्मपुत्र का यही रूप रहता था। आरती ने सोचा, ब्रह्मपुत्र ने दही माँगने वाली बिल्ली के समान अपनी आवाज़ बदल ली। अन्धकार घना हो गया था। आरती जल्दी-जल्दी चप्पू चला रही थी। वह जानती थी कि पीछे से एक नाव आ रही है। वह इस नाव से आगे रहने की चेष्टा करने लगी।

पीछे से आवाज़ आई, "आरती!"

उस ने चौंककर पीछे देखा। बोलने वाले का चेहरा नज़र न आया।

पीछे की नाव समीप आ गई। फिर आवाज़ आई, "आरती!"

आरती की नाव रुक गई। "देवकान्त, तुम! अच्छा तो तुम आ गये!"

अट्ठावन



दोनों नावें साथ-साथ जा रही थीं। एक में भारती चप्पू चला रही थी, दूसरी में देवकान्त। "मैं बस आधा घण्टा देर से पहुँचा।" देवकान्त बोला, "तुम तक पहुँचने के लिए मुझे बहुत तेज़ चप्पू चलाना पड़ा। मेरे तो हाथ रह गये।"

"एक घण्टा देर से पहुँचे होते, तो तुम मुझे न मिल सकते।" भारती ने उलाहना दिया, "तो तुम लौट क्यों न गये?"

"कैसे लौट जाता?"

"जैसे लौटा जाता है, और कैसे?"

"तुम्हारे दिल में गुस्सा है। इस गुस्से से तुम अपनी रक्षा करो, जैसे आजकल मामूली फिरंगी से अपनी रक्षा कर रही है।"

"मुझे उपदेश नहीं चाहिए।"

"थोड़ा विचार करो, मैं मजबूर था।"

"अब यह सफ़ाई नहीं चाहिए। जिस की कथनी और करनी में धरती और पाताल का अन्तर हो, उसे उपदेशक तो बिलकुल नहीं बनना चाहिए।"

"तो मैं क्या करता?"

"समय पर आते।"

"तुम ने थोड़ा और प्रेम किया होता, और गुस्से की बजाय संयम से काम लिया होता।"

"फिर उपदेश शुरू कर दिया !"

"एक बात तो साफ है। प्रेम ही मेरे लिए जीवन का सर्वस्व नहीं है। मैं मातृभूमि में काम कर रहा हूँ।"

"विशेषगमुख को भूल गये ! जानते हो, तुम्हारी माँ अस्पताल में है।"

"जानता हूँ।"

"तुम तो माँ को भी भूल गये, फिर मैं क्या शिकायत करूँ !"

"पुलिस मेरा पीछा कर रही है, मैं मजबूर हूँ।"

"यह सफाई तो बहुत हो ली।"

बातें हो रही थीं। दोनों नावें साथ-साथ बढ़ रही थीं। रात साफ थी। ब्रह्मपुत्र शान्त और गम्भीर था, काले के गगन पर तारे ठिठुर रहे थे। किनारे की तरफ कहीं किसी झोंपड़ी के समीप आग चमकती नजर आ जाती, जैसे कोई अघोरिया बैताल आग उगल रहा हो। हवा तेज हो गई थी।

"यह रात कितनी काली है !"

"उतनी काली तो नहीं, जितने काले तुम्हारे लम्बे केश हैं।"

"यह चापलूसी किसलिए !"

"अच्छा तो छोड़ो, क्यों न हम मिलकर ब्रह्मपुत्र का गुणगान करें ! कितना पवित्र है ब्रह्मपुत्र !"

भारती कुछ न बोली और चप्पू चलाती रही। कुछ क्षणों की खामोशी के बाद देवकान्त ने कहा, "तुम्हारा गुस्सा अभी तक ठण्डा नहीं हुआ। मेरी स्थिति को समझो। पुलिस मेरे पीछे पड़ी है। मेरे हाथ में जो काम है, उस में मैं अपनी आत्मा को उतारे बिना नहीं रह सकता।"

"तुम टिटहरी के समान एक टाँग आकाश की ओर उठाकर सोते हो कि कहीं आकाश सिर न पड़े।" यह कहकर भारती खिलखिलाकर हँस पड़ी, जैसे उसका गुस्सा ठण्डा हो गया हो।

भारती को हँसते देखकर देवकान्त भी हँस पड़ा दोनों माझी के चप्पू हँस पड़े, ब्रह्मपुत्र भी हँस पड़ा।

देवकान्त ने सँभलकर कहा, "मैं आज माँ से ज़रूर मिलूँगा।" और वह गुनगुनाने लगा—स रे ग म प ध नी!

भारती बोली, "पुलिस के हाथ पड़ गये तो!" और जैसे वह अपने मन को सरगम में बाँधने लगी, "स नी ध प, स नी ध प!"

"म ग रे स!" देवकान्त बोला। जैसे कह रहा हो—परवाह नहीं।

जब दोनों नावें *दिसौमुख* के नाव-घाट पर पहुँचीं, तो भारती के लाख मना करने पर भी देवकान्त पीछे लौटने के लिए तैयार न हुआ।

नावें घाट से बाँधकर वे गाँव पर बनी झोंपड़ी की ओर चल पड़े।

भारती ने दस्तक देकर कहा, "बापू, बापू, किवाड़ खोलो! देखो कौन आये हैं!"

द्वार खोलकर धर्मानन्दी बाहर आया तो वह देवकान्त को इस रूप में देखकर बिलकुल न पहचान सका।

भारती ने बापू के कान में कुछ कहा और वह अन्दर चली गई।

धर्मानन्दी ने देवकान्त के सिर पर हाथ फेरा, उसे गले से लगाया, "धन्य भाग हमारे, जो पाहुन घर पधारे!" धर्मानन्दी पूछता नहीं थमा रहा था, "भीतर चलो, बेटा! तुम बहुत थक गये होगे। कब चले थे?"

भीतर जाकर किवाड़ बन्द करते हुए पहले भारती ने आग जलाई, फिर बापू को सम्बोधित करते हुए बोली, "तुम खाना गर्म करो; मैं जाकर भतुआ को बुला लाऊँ!"

धर्मानन्दी कहता रह गया, "तुम बैठो, मैं जाता हूँ!" पर भारती शीघ्रता से बाहर निकल गई।

उनसठ



एक का चेहरा सपाचट, दूसरे के चेहरे पर पाँच अंगुल दाढ़ी। वे बिलकुल सटकर चले आ रहे थे, जैसे दोनों एक डोरे में गुँथे हों।

अस्पताल के फाटक पर पहुँचकर दरबान को जगाना पड़ा।

"यह बुढ़िया है न—वह देवकान्त की माँ।" मधुल ने कहा, "ये उस से मिलेंगे। डिब्रुगढ़ से आये हैं। उस के सम्बन्धी हैं। कल सवेरे ही इन्हें यहाँ से चले जाना है।"

"बड़ा दिक्कदारी!" दरबान के मुँह से निकल गया।

"बुढ़िया से मिले बिना तो चल ही नहीं सकता इन का काम। कहो तो डाक्टरनी से पूछ आयें।"

"डाक्टरनी का नाम सुनकर दरबान मान गया। भीतर जाकर वह उन्हीं पैरों वापस आ गया। बोला, "वह बुढ़िया तो सो रही है, बड़ा दिक्कदारी!"

"ये तो बुढ़िया के चरण छूकर ही चले जायेंगे।"

"हरि इच्छा!" कहते हुए दरबान उन्हें बुढ़िया की खाट के पास ले गया और बोला, "आप बैठकर थोड़ा आराम कर लें। बुढ़िया की आँख खुल जाय, तो मिल लेना। मैं चलता हूँ।"

बाँस की खपचियों से तैयार किये अस्पताल के इस कमरे में दीया जल रहा था। मधुल ने धीरे से माँ को आवाज़ दी, "माँ! माँ! देखो

कौन आये हैं ?"

माँ हड़बड़ाकर जाग गईं, "कौन ?"

"मैं अतुल हूँ, माँ !"

"और यह दूसरा ?" माँ भौंचक्की-सी देखती रह गईं।

देवकान्त ने माँ के चरण छूकर कहा, "मुझे नहीं पहचाना ?"

"कौन ? तुम ! अच्छा, अच्छा ! मैं समझ गई। तुम क्यों आये ?"

"जी किया तो चला आया !" देवकान्त ने माँ के चरणों पर सिर रखकर कहा, "अब कैसी तबीयत है ?"

"पहले से अच्छी है !" माँ ने खाँसकर कहा, "तुम क्यों आये ? तुम चले जाओ। जाना ही ठीक है।"

"डरो मत। मैं चला जाऊँगा।"

"विद्याप्रसाद बेचारा बिजली गिरने से मर गया, सुना ही होगा तुम ने ?" माँ खाँस-खाँसकर बेहाल हो गई।

देवकान्त माँ के चरण दबा रहा था। अतुल ने माँ का सिर थाम लिया। ज़रा सँभलकर माँ बोली, "तुम्हारा काम ठीक चल रहा है ?"

"जैसे करघे पर रेशम बुनते हैं, वैसे ही हम नया जीवन बुनने जा रहे हैं, माँ !" देवकान्त कहता चला गया, "जैसे करघे पर ताना बुनते-बुनते नये-नये नमूने काढ़ते हैं, वैसे ही हम नये नमूने काढ़ेंगे, माँ ! ब्रह्मपुत्र की बाढ़ के सामने हम बाँध बन जायेंगे। ब्रह्मपुत्र एक है, हम अनेक हैं। ब्रह्मपुत्र से हमारा मुकाबला है। हम डटे रहेंगे। ब्रह्मपुत्र को हट जाना उसे हटकर ही रहना पड़ेगा।"

"ब्रह्मपुत्र देवता !" माँ ने ठण्डी साँस भरकर कहा, "अतुल का नाम तो दिसाँगमुख में अमर हो गया। अतुल न होता, तो दिसाँगमुख में ब्रह्मपुत्र का बाँध भी न होता।"

"अतुल दिसाँगमुख का वीर है।"

"मैं तो इतनी प्रशंसा का पात्र नहीं।" अतुल भी चुप न रह सका, "अब हम नया आन्दोलन चलाना चाहते हैं।"

"कौन-सा आन्दोलन ?" देवकान्त ने झट पूछ लिया।

"ब्रह्मपुत्र में बहकर आई हुई लकड़ी को घर लाने से पहले हमें सरकार को टैक्स देना पड़ता है। ब्रह्मपुत्र हमारा है, तो उस में बहकर आई हुई लकड़ी भी हमारी है। इस टैक्स के विरोध में चलेगा हमारा आन्दोलन।"

"कौन-कौन तुम्हारे साथ हैं ?"

"सभी। बस, गाँव-बूढ़ा साधन मौरी ही हमारा साथ नहीं देगा।"

माँ बोली, "अतुल वीर है।"

"वह युग तो कभी का लद गया, माँ! जब एक-दो वीर काम चला सकते थे।" अतुल कहता चला गया, "अब तो सब को मिलकर आगे बढ़ना होगा। मिलकर हमने बाँध बाँधा, मिलकर ही हम ब्रह्मपुत्र में बहकर आई हुई लकड़ी को मुफ्त घर लाने के आन्दोलन में सफल होकर दिखायेंगे।"

बाहर से किसी के कदमों की चाप सुनाई दी। माँ डर गई—कहीं पुलिस तो नहीं आ गई। वह बोली, "तुम जाओ, जल्दी जाओ। मेरी चिन्ता न करना। तुम्हें पाकर तो मेरी कोख धन्य हुई। मैं मर भी गई, तो यही आशीर्वाद देकर जाऊँगी कि विश्वेसमुख में मेरे लाख बेटे बेटे जन्म लें।"

"अब चलना चाहिए।" अतुल ने देवकान्त का कन्धा झंझोड़ा, "अब देर करना ठीक नहीं।"

उठने से पहले देवकान्त ने माँ के चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया। फिर वे दोनों बाहर निकल गये।

माँ उन्हें फटी-फटी आँखों से देखती रह गई।

साठ



अहंवादी नाटक के सूत्रधार के समान हसन साहब आग-बबूला हो उठे। आखिर सिली ने अपनी मनमानी करके छोड़ी। नीरद के साथ सिली का जोड़ा उन्हें नापसन्द था। सिली ने एक न सुनी, शिवसागर जाकर विवाह के रजिस्टर पर हस्ताक्षर कर दिये।

जब सिली बुलाने आई, तो ममी शायद मान भी जाती, पर डैडी के साफ इन्कार करने पर सिली अपना-सा मुँह लेकर चली गई। विवाह हो रुक नहीं सकता था।

"सिली तो पागल हो गई है। 'मैरेज' की एक 'बैकग्राउण्ड' होती है, एक 'अण्डरस्टैंडिंग'। मेरी समझ में नीरद को शिलिंग का आदमी भी नहीं है।"

"उसे 'एक्सक्यूज़' कर दो।" मिसेज़ हसन मातृसुलभ स्नेह को छिपा न सकीं।

"जिस ने हमारी 'प्रैस्टीज' को डुबोया, उसे 'एक्सक्यूज़' कर दूँ!"

"सीधी-सी बात है। सिली की 'मैरेज' तो होनी ही थी एक-न-एक दिन। शायद यही 'डेस्टिनी' का तकाजा था सिली के लिए। मैं तो नीरद को बुरा नहीं समझती।"

"नीरद के साथ 'मैरेज' करने से तो अच्छा था कि सिली ब्रह्मपुत्र में डूबकर 'सुइसाइड' कर लेती।"

मिसेज हडसन को अपने पति के मुँह से यह बात बहुत अखरी। उस की कल्पना में वे दिन घूम गये, जब कलकत्ता से विलायत आते हुए रास्ते में इसी स्टीमर पर ही लिली का जन्म हुआ था। उसे उन दिनों बहुत कष्ट रहा करता था। उसका पति हमेशा यही कहा करता था, "'प्रेगनेन्सी' होकर 'चाइल्ड' की 'बर्थ' तक यह सब मुश्किल-ही-मुश्किल है, फिर एकदम 'रिलीफ' हो जायगा।" उसे याद था कि लिली का जन्म होने पर वह तीन दिन तक बेहोश रही थी। लिली स्वस्थ थी। उस का अपना स्वास्थ्य ही ठीक नहीं था। वह मरते-मरते बची थी। उस ने जोर देकर कहा, "नीरद इतना बुरा तो नहीं।"

हडसन की भृकुटि उसी तरह चढ़ी रही। वह कुछ न बोला।

मिसेज हडसन जानती थी कि लिली और नीरद की अपनी-अपनी कल्पना और अनुभूति है, अपने-अपने दृष्टिकोण हैं, फिर भी उसका ख्याल था कि दोनों एक अच्छे उद्देश्य की पूर्ति में संलग्न रह सकेंगे। उसका विश्वास था कि जब हडसन का गुस्सा ठण्डा हो जायगा और वह शान्त मन से सोचेगा, तो वह भी इसी परिणाम पर पहुँचेगा। विवाह को वह बहुत बड़ी घटना मानती थी—आग में से गुजरने के बराबर, फूलों की सेज पर सोना नहीं। इसलिए लड़के-लड़की का एक-दूसरे को जानना-समझना जरूरी था। उसका विश्वास था कि जितना समय लिली और नीरद को एक-दूसरे को जानने-समझने को मिला, इतना बहुत कम लड़के-लड़कियों को मिला होगा।

"मैं कम्पनी के बड़े दफ्तर को लिख रहा हूँ कि यहाँ से मेरी बदली कर दी जाय।"

"इस से क्या 'डिफरेन्स' पड़ेगा?"

"न लिली सामने होगी, न मुझे गुस्सा आयेगा।"

"गुस्सा तो तुम यहाँ रहते भी ठण्डा कर सकते हो, डारलिंग! नीरद अच्छा लड़का है। वह शिमला गया था यहाँ उसके माँ-बाप रहते हैं।"

"वैसे ही गप्प हाँक रहा होगा।'

"वह तो कह रहा था कि उसका बाप बहुत साल पहले 'केलकत्ता' से सहसा चला गया था।"

"बड़ा गप्पी है।"

"सुनो भी, डार्लिंग! नीरद का बाप 'केलकत्ता' के एक होटल के इस बरताव से नाराज़ था कि 'इंगलिशमैन' अपने 'डाग' को तो भीतर ले जा सकता है, पर एक 'इण्डियन' के लिए उस होटल में 'एण्ट्रेन्स' मिलना 'इम्पासिबल' है—"

"नान्सेन्स!"

"नीरद कह रहा था कि उस के बाप ने यह 'ओथ' ले ली कि वह ऐसे 'स्लेव कन्ट्री' में रहेगा ही नहीं, और सहसा से उस वक्त लौटकर आयेगा, जब यह 'स्लेव कन्ट्री' 'इण्डिपेण्डेण्ट कन्ट्री' बन जायगा।"

"वट ए शेम! इस 'कण्ट्री' को 'इण्डिपेण्डेन्ट' बनते भी साल लगेंगे। यह 'टाइम' भी थोड़ा है—"

"मेरा तो दिल कहता है कि 'इण्डिया' अब अधिक दिन 'स्लेव' नहीं रह सकता।"

"लिली ने यह सब जानते हुए भी कि नीरद एक ऐसे आदमी का लड़का है जिसे 'इंगलिश मैन' का 'इण्डिया' में रहना पसन्द नहीं, एक 'इण्डियन' से 'मैरेज' कर ली। मैं समझ लूँगा कि लिली नाम की मेरी कोई 'डाटर' थी ही नहीं।"

मिसेज हडसन को अपने पति का यह रुख अच्छा न लगा। वह कुछ न बोली।

हडसन ने प्रसंग बदलकर शिवाप्रसाद की चर्चा आरम्भ कर दी। बिजली गिरने से शिवाप्रसाद की मृत्यु होने की दुःखद घटना से उन्हें दुःख हुआ था। 'ब्रह्मपुत्र सहकारी संस्थान' का काम अब शिवाप्रसाद के बड़े लड़के ने सँभाल लिया था। "बेटा बाप का मुकाबला तो नहीं कर सकता, फिर भी मैं खुश हूँ कि मेरा 'शेयर' पहले की तरह ही 'सेफ' है।" हडसन की आवाज़ में कुछ नर्मी आ गई।

मिसेज़ हडसन ने गहरी उपेक्षा से पति की बात अनसुनी कर दी। उसने उठकर ग्रामोफ़ोन पर बीथोविन की सातवीं सिम्फ़नी का रिकार्ड लगा दिया।

हडसन को इस समय अपनी पत्नी की यह हरकत बहुत बुरी लगी। "बन्द करो यह रिकार्ड।" उस ने मुँह बनाकर कहा, "डारलिंग, इस रिकार्ड में ऐसी क्या बात है? मैं जानता हूँ, लिली को यह बहुत पसन्द है।"

मिसिज़ हडसन मुस्करा दी, जैसे वह कहना चाहती हो—संगीत से गहरी कोई चीज़ नहीं। रिकार्ड बजता रहा। मिसिज़ हडसन की मुद्रा अद्भुत थी, एकदम अभूतपूर्व जैसे आज पहली बार वह इस सिम्फ़नी को समझने में सफल हुई हो।

ब्रह्मपुत्र मुस्करा रहा था, और ब्रह्मपुत्र का बाँध दिलसौंगमुख वालों की मिली-जुली मेहनत का प्रतीक प्रतीत हो रहा था। गगन-पथ पर तारों और कलहंसों की टोलियाँ जैसे दिलसौंगमुख का यशोगान करती निकल जातीं। स्टीमर-घाट का शोर बता रहा था कि अभी-अभी किसी चाय बागान से एक ट्रक आया है। ट्रक से चाय की पेटियाँ उतारी जा रही थीं।

ब्रह्मपुत्र की जलधारा पर लहरों की सिलवटें बड़ी सुन्दर लग रही थीं। रिकार्ड बन्द हुआ तो फिर से इसे ही लगा दिया गया। हडसन को यह बात बड़ी विचित्र-सी लगी।

"मुझे तो यह सिम्फ़नी बिलकुल 'टच' नहीं करती।"

"बाहर बजने वाली सिम्फ़नी पहले हमारे अन्दर बजे, तब बाहर की सिम्फ़नी भी अच्छी लगती है, डारलिंग!"

"मैं सोचता हूँ, यह बाँध नहीं बचेगा, ब्रह्मपुत्र इसे 'वाश आउट' करके ले जायगा।"

"तुम्हारा ख्याल है, इन लोगों ने बेकार ही बनाया यह बाँध! यानी इन्सान अपने 'डिफ़ेन्स' की कोशिश न करे!"

नीचे से पासद् बच्चों की आवाज़ें आ रही थीं। रिकार्ड बन्द हो गया था। मिसेज़ हडसन अनमनी-सी बैठी रहीं। हडसन आराम

कुर्सी पर पैर फैलाये बैठा सिगरेट के कश लगाता रहा।

"'फ्लड' आता है तो 'वाटर'-ही-'वाटर' हो जाता है। सैकड़ों गाँव यों डूब जाते हैं, जैसे 'कप' में 'टोस्ट' के टुकड़े। फिर भी ये लोग ब्रह्मपुत्र' से 'लव' करते हैं, डार्लिंग!"

"'ब्रह्मपुत्र' से 'लव' न करने का तो सवाल ही नहीं उठता! बड़ र ग्रेट रिवर!"

कहीं-कहीं नावें आ-जा रही थीं। ब्रह्मपुत्र के जलमार्ग पर मानव का आभास था, जैसे मंगल-ही-मंगल हो। किसी नाव के चलने से ऐसी आवाज आती, जैसे शिशु माँ के स्तन को मुँह में लेकर चूसता है; किसी से ऐसी आवाज आती, जैसे बड़ी मछली छोटी मछली को खाकर डकार लेती है। मिसेज हडसन सोच-सोचकर बोली, "यहाँ रहते हमें कितना 'टाइम' हो गया, पर इन लोगों के साथ हम 'फैमिलियर' नहीं हो पाये। हम इन्हें 'स्लेव' क्यों समझते हैं?"

"ये हैं ही 'स्लेव'!" हडसन ज़ोर से हँस पड़ा, "फिर हम इन्हें 'स्लेव' समझते हैं तो क्या 'मिस्टेक' करते हैं?"

"चाय की पेटियाँ 'लोड' करा-कराकर हम बुड्ढे हो गये।"

"इसी काम की तो तुम्हें 'पे' मिलती है।"

"सारा-सारा दिन 'बोट्स' आती-जाती हैं। ये लोग अपना काम करते हैं। ये तो किसी से 'पे' नहीं लेते। 'ब्रह्मपुत्र' में 'फिश' की कमी नहीं। 'फिशर-मैन' मज़े से 'फिश' पकड़ने निकलते हैं। ब्रह्मपुत्र उन्हें 'फिश' देता है और वे इसे बेचकर पेट पालते हैं वे किसी की 'पे' के मोहताज नहीं।"

"फिर भी ये लोग हमारे 'स्लेव' हैं।"

"इन के अपने 'हाउस' हैं, अपने 'विलेज' हैं, अपना 'ब्रह्मपुत्र' है। इन्हें 'अण्डरस्टैंडिंग' हो रही है। ये बहुत दिन 'स्लेव' नहीं रह सकेंगे, डार्लिंग!"

"इन के बाप को भी हमारा 'स्लेव' रहना होगा।"

"इन के अपने 'फ्रिज' हैं, जहाँ 'पैडी' होती है अपने 'स्पिनि
व्हील' हैं, जिन पर ये घर के पाले रेशम के कीड़ों का तैयार किया रेशम
'स्पिन' करते हैं अपने 'हैंडलूम्स' हैं, जिन पर ये घर के कते रेशम से
कपड़ा 'वीव' करते हैं। कपड़ा भी ऐसा, जो बड़ी-बड़ी मिलों के कपड़े को
'डिफीट' देता है।"

"यह तो ठीक है। 'दे आर वण्डरफुल स्पिनर्स एण्ड वीवर्स' !"

"मैं कहती हूँ, ये लोग बहुत दिन हमारे 'स्लेव' नहीं रह सकते।"

चाय की पेटियाँ उतारकर ट्रक फिर से शिवसागर की ओर जाने के
लिए मुड़ा तो ज़ोर से उसका हॉर्न बज उठा। मिसेज़ हडसन ने बेरुखी
से अपने पति की ओर देखा, जैसे कह रही हो—ब्रह्मपुत्र के शान्त, मधुर
गान के साथ इस हॉर्न का ज़रा भी मेल नहीं।

इतने में किसी ने पीछे से आकर कहा, "लिली और नीरद आ
रहे हैं।"

हडसन ने आँखों-ही-आँखों में अपनी पत्नी को बताया—मैं उन से
बिलकुल बात नहीं करूँगा।

"लिली फिर भी तुम्हारी 'डाटर' है। उस का 'हार्ट ब्रेक' न करना
अब तो उस ने 'मैरेज' कर ही ली।" और अगले ही क्षण लिली और
नीरद के मुसकराते चेहरे देखकर वह बोली, "कम आन, लिली! कम
आन, नीरद! आज हम तुम्हें बहुत 'रिमेम्बर' कर रहे थे। बैठो, नीरद!
तुम्हारे माँ-बाप की कोई 'लैटर' आई लहासा से? बहुत अच्छा 'कण्ट्री'
है 'टिब्बट', हमारे 'ब्रह्मपुत्र' का 'बर्थप्लेस'। आज तो 'ब्रह्मपुत्र' के
'बर्थप्लेस' की बातें ज़रूर सुनाओ!"

"ज़रूर, ज़रूर!" हडसन भी चुप न रह सका।

माँ ने उठकर बेटी के लिए ग्रामोफोन पर बीथोवेन की सातवीं
सिम्फनी वाला रिकार्ड लगा दिया।

इकसठ



"बंगाल में प्रवेश करने के कई रास्ते हैं, निकलने का एक भी रास्ता नहीं है।" सवेरे की चाय पीते पीते लिली कई बार कह चुकी थी। ये शब्द उस ने कलकत्ता की इम्पीरियल लाइब्रेरी में किसी पुस्तक में पढ़े थे उसी लाइब्रेरी में नीरद से प्रथम परिचय हुआ था, तब वह क्या जानती थी कि यह परिचय एक दिन विवाह का रूप धारण कर लेगा।

एक दिन लिली बोली, "हमारी 'मैरेज' को सात महीने हो गये, फिर भी डरती हूँ, कैसी इधर आकर गाली न देने लगें; उन्हें बहुत गुस्सा आता है, डार्लिंग!"

नीरद ने हँसकर कहा, "ब्रह्मपुत्र में बाढ़ आती है जरूर, पर हमेशा तो बाढ़ नहीं रहती। जो बात बंगाल के बारे में सही है, वह आसम देश पर भी ठीक उतरती है।"

"बंगाल तो 'ब्लैक मैजिक' के लिए 'फेमस' है!" लिली हँस-हँसकर दोहरी हो गई, "कहते हैं ढाका की स्त्रियाँ आदमी को भेड़ा बनाकर घर में छिपा लेती हैं।"

"यह तो सब गप्पबाजी है।" नीरद ने गम्भीर मुद्रा में कहा।

"गप्पबाजी कैसे है? मैं कहती हूँ, ढाका की स्त्रियाँ 'मैजिक' जानती होंगी, तो क्या यहाँ के पुरुष वह विद्या नहीं जानते होंगे?"

"अरे हाँ, डार्लिंग!" नीरद को भी हँसी आ गई, "जानते हैं,

ज़रूर जानते हैं म जानते होते, तो क्या हडसन साहब की बेटी विपन गुप्त के बेटे नीरद से विवाह कराती ? बाबू यह जो सिर पटककर बोले। बिलकुल ठीक। बंगाल में प्रवेश करने के कई रास्ते हैं, निकलने का एक भी रास्ता नहीं।" और फिर उस ने गम्भीर होकर कहा, "और जो एक-बार असम पहुँच गया, वह भी वापस नहीं जाता, जाता भी है, तो बहुत जल्द लौट आता है।"

"तुम तो देर से लौटे!" लिली हँस पड़ी।

"अपने डैडी को भी अब नहीं के समझते!"

"मेरे डैडी तो इगलैंड लौट जाने का 'ड्रीम' देखते हैं दिन-रात।"

"असम देश को छोड़ सकना अब उनके लिए सहज नहीं। अब तो दिसाँगमुख में ही उनका जीवन बीतेगा।"

"यह ज्योतिष विद्या कब से सीख ली ?" लिली हँस पड़ी और उस ने टोस्ट पर मक्खन लगाकर नीरद के हाथ में थमाते हुए कहा, "डैडी को दिसाँगमुख बहुत पसन्द नहीं, नौकरी के सिलसिले में वह यहाँ रहते ज़रूर हैं।"

"ब्रह्मपुत्र का इतना सुन्दर रूप असम देश में है और कहीं नहीं, और फिर माजुली यहाँ से इतनी नज़दीक है। जानते हो दुनिया-भर की नदियों में और किसी भी नदी में इतना बड़ा द्वीप नहीं है। बीस मील लम्बी है, माजुली और सात-आठ मील चौड़ी!"

"मैं ने तो देखी नहीं माजुली। दिखाकर लाओ तो मानूँ।"

"अरे दिखा लायेंगे, डार्लिंग!" कहते हुए नीरद उठकर भीतर से वह सुन्दर एलबम उठा लाया, जिस में उस ने अपनी हाल की तिब्बत यात्रा के फोटो लगा रखे थे।

लिली ने फोटो देखती रही। नीरद बीच-बीच में लिली के चेहरे की ओर निहार लेता। उसे अपने उस पत्र की याद आई, जिस में उस ने ल्हासा में बैठकर लिखी हुई एक कविता भी लिली को भेजी थी।

"डार्लिंग, मैं ने अपने पिता जी से साफ़-साफ़ पूछ लिया था—'क्या

आप यह पसन्द भी करेंगे कि जिन अँग्रेज़ों के अभद्र व्यवहार के कारण आप अपनी जन्मभूमि को छोड़कर यहाँ आसाम में आ गये, मैं उन्हीं के कुल में जन्मी एक भद्र कुमारी से विवाह कर लूँ ?' "

"उन्होंने क्या जवाब दिया ?" झिली ने उत्सुकता से पूछ लिया।

"उन्हें शुरू में यह बात विचित्र-सी लगी थी, पर वह कुछ बोल नहीं सके थे। पास से माँ बोल उठी थी—'अरे बेटा, तू विवाह करता तो सही, चाहे मेम से ही करता।' याद है न, विवाह के पश्चात् यहाँ से अपना और तुम्हारा एकसाथ खिंचवाया हुआ फ़ोटो माँ को भेजा था, तो उस ने अत्यन्त सन्तुष्ट होकर लिखा था—'ऐसी चाँद-सी दुलहन तो देवों को मिले।' "

उस फ़ोटो की एक प्रति नीरद ने इस एलबम में भी लगा रखी थी। यह शिवसागर के एक स्टूडियो में लिया गया था। इस एलबम में तो विवाह के उपरान्त लिये गये और भी कई फ़ोटो लगाये हुए थे। झिली इस समय उन्हें ध्यान से देख रही थी। मन-ही-मन वह सोच रही थी—यह रूप नहीं बहुरूप है।

"तुम्हारा यह फ़ोटो ही सब से अच्छा है।" नीरद ने उस फ़ोटो की ओर संकेत किया, जिस की एक प्रति माँ को भिजवाई गई थी।

झिली की दृष्टि एक और फ़ोटो पर जमी थी, जिस में वह अपने स्कर्ट की बजाय ठेठ असमिया वेश में नज़र आ रही थी—वही मेखला, चादर और रीगिया। उसे याद था कि यह मेखला देवकान्त की माँ ने अपने हाथ से तैयार करके दी थी। चमकीली सुनहरी रेशमी मेखला उस ने अभी तक अपने सूटकेस में सँभालकर रख छोड़ी थी। फ़ोटो में उस ने सुन्दर दिखाई देने वाला 'टङाली' भी तो अपनी कमर पर मेखला में एक ओर खोंस रखा था।

"इस 'टङाली' ने तुम्हारी मेखला की शोभा बढ़ा दी।" नीरद ने जैसे झिली के मन की बात कह दी।

"तुम भी तो पूरे असमिया 'हैण्डसम' नज़र आ रहे हो।" झिली

कोई-कोई युवक अब तक अतुल के विरोध में कहता, "सावन
का क्या बिगड़ा ? उस की तो पाँचों उँगलियाँ घी में हैं।" कोई क
"हाँ भाई, इस से तो अतुल की मूर्खता ही सिद्ध होती है।" फिर भी
जानते थे, सावन अक्सर से ज्यादा लम्बा सलाम ठोंक कर पि
को खुश करता है गोपीनाथ दारोग़ा को देखते ही उस के मुँह से
के खिलौने की तरह निकल जाता है—हुज़ूर, माई बाप! गाँव क
उसे कोई चिन्ता नहीं।

"हिटलर के साथ फ़िरंगी की लड़ाई हो रही है, तो क्या इस
नुक़सान सब से ज्यादा दिसाँगमुख के सिर ही पड़ेगा, धनसिंह भा
अतुल ने शाम की चाय की चुसकी भरते हुए कहा, "कभी पुलिस
मदद से, कभी शिवसागर के किसी मजिस्ट्रेट के रौब से, कितनी
चन्दा जमा किया जायगा ? हम लोगों का काम फ़िरंगी के लिए
जमा करना ही रह गया है ?"

दिसाँगमुख का स्कूल-मास्टर अभिराम फुकन बैठा समाचा
सुनाने लगा। एक ही साँस में उस ने बता दिया कि वहाँ भी हिटल
जीत हुई, वहाँ भी हिटलर का ही पलड़ा भारी रहा, और वहाँ भी हि
ही स्वर्गलोक से उतरे हुए मन्त्रसिद्ध देवता के समान अचरज से भी
गति से देश-के-देश अपने सामने भारी लाने चित्त करता लड़ाई के मै
में आगे निकल गया।

अतुल बोला, "और दो चन्दा ! फ़िरंगी को बचाओ !"

"किसी ने सोचा भी न था कि हिटलर ऐसा मज़ा चखा स
है।" धनसिंह ने तान अलापी।

"सोचा क्यों नहीं था ?" पास से रतन कह उठा, "भूत और
तो एक ही बात है। चन्दे पर चन्दा जमा किया जा रहा है दैक
बढ़ गया। हमें बार-बार वचन दिया गया, शिवसागर से रेलवे ला
दिसाँगमुख आयेगी। आज तक तो फ़िरंगी ने वचन पूरा नहीं कि
तो समझ लो, हम ने सोचा था, बरकर सोचा था, कोई हिटलर आ

फ़िरंगी का गड़बड़झाला बन्द करे।"

स्कूल-मास्टर अभिराम फूकन ने सिगरेट का धुआँ उड़ाते हुए कहा, "दिसम्बर तो दुनिया का नक्शा बदल रहा है। जब यह युद्ध शुरू हुआ तो फ़िरंगी ने हिन्दुस्तान को भी इस युद्ध में धकेलना चाहा। गांधी जी ने कहा—ऐसा नहीं होगा।"

रतनाम बोला, "गांधी जी तो हमारे सब से बड़े नेता हैं। वैसे कांग्रेस के चार आना देने वाले मेम्बर भी नहीं हैं, फिर भी कांग्रेस उन्हें पूछे बिना कोई क़दम नहीं उठाती।"

अभिराम फूकन ने ज्ञान बघारा, "हां की एक बात है। हिन्दुस्तान के जिन प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल काम कर रहे थे, उन्होंने त्यागपत्र दे दिये। फिर आसाम का कांग्रेस मन्त्रिमण्डल ही कैसे कुरसी पर जमकर बैठा रहता? वह भी बाहर आ गया।"

किसी की आवाज़ आई, "मैं यह आज तक नहीं नहीं सोच सका, त्यागपत्र देकर उन्होंने भलाई की या बुराई।"

रतन ने हँसकर कहा, "लाल कपड़ा देखकर साँड भड़कता है। उन्होंने फ़िरंगी को लाल कपड़ा दिखा दिया।"

जिस ने यह आपत्ति की थी, उस की आवाज़ आई, "फ़िरंगी की सरकार तो वैसे ही चल रही है। टैक्स और बढ़ गये युद्ध के नाम पर। भाई, हम तो धक्का देते तंग आ गये।"

अभिराम फूकन ने ख़बर-काग़ज़ परे रखकर आँखों से ऐनक उतारी, और शीशे साफ़ करते हुए कहा, "फ़िरंगी को जाना पड़ेगा।"

"कहाँ जाना पड़ेगा?" पास से आवाज़ आई, "झूठी बात है, फ़िरंगी नहीं रहेगा। हम देश-सेवा की भावना से बहुत दूर जा पड़े हैं। फ़िरंगी नहीं रहेगा।"

अभिराम फूकन बोले, "दिलसिंगमुख को ही लो। मीरी समझते हैं, यहाँ उनका बहुमत है; दूसरे लोग उन से दबकर रहें। शासन मीरी पर ये अपना अधिकार समझते हैं। शासन तो किसी का मित्र नहीं। मीरी लोग

कोई-कोई युवक अब तक अतुल के विरोध में कहता, "साधन मीरी का क्या बिगड़ा ! उस की तो पाँचों उँगलियाँ घी में हैं।" कोई कहता, "हाँ भाई, इस में तो अतुल की मूलता ही सिद्ध होती है।" फिर भी सभी जानते थे, साधन अस्सल से ज्यादा लम्बा सलाम ठोक कर फिरंगी को खुश करता है गोपीनाथ दारोगा को देखते ही उस के मुँह से रबड़ के खिलौने की तरह निकल आता है—हुजूर, माई बाप ! गाँव की तो उसे कोई चिन्ता नहीं।

"हिटलर के साथ फिरंगी की लड़ाई हो रही है, तो क्या इस का जुर्माना सब से ज्यादा दिसाँगमुख के सिर ही पड़ेगा, धनसिंह भाई !" अतुल ने शाम की चाय की चुसकी भरते हुए कहा, "कभी पुलिस की मदद से, कभी शिवसागर के किसी मजिस्ट्रेट के रौब से, कितनी बार चन्दा जमा किया जाएगा ! इन लोगों का काम फिरंगी के लिए चन्दा जमा करना ही रह गया है !"

दिसाँगमुख का स्कूल-मास्टर अभिराम फूकन बैठा समाचार-पत्र सुनाने लगा। एक ही साँस में उस ने बता दिया कि यहाँ भी हिटलर की जीत हुई, वहाँ भी हिटलर का ही पलड़ा भारी रहा, और वहाँ भी हिटलर ही स्वर्गलोक से उतरे हुए मन्त्रसिद्ध देवता के समान बवण्डर से भी तेज गति से देश-के-देश अपने सामने चारों खाने चित करता लड़ाई के मैदान में आगे निकल गया।

अतुल बोला, "और दो चन्दा। फिरंगी को बचाओ !"

"किसी ने सोचा भी न था कि हिटलर ऐसा सवा पला सकता है।" धनसिंह ने तान अलापी।

"सोचा क्यों नहीं था ?" पास से रत्न चहक उठा, "झूठ और पाप तो एक ही बात है। चन्दे पर चन्दा जमा किया जा रहा है टैक्स भी बढ़ गया। हमें बार-बार वचन दिया गया, शिवसागर से रेलवे लाइन दिसाँगमुख आयेगी। आज तक तो फिरंगी ने वचन पूरा नहीं किया। तो समझ लो, हम ने सोचा था, जरूर सोचा था, कोई हिटलर आकर

फ़िरंगी का गड़बड़झाला बन्द करे।"

स्कूल-मास्टर अभिराम फूकन ने सिगरेट का धुआँ उड़ाते हुए कहा, "हिटलर तो दुनिया का नक्शा बदल रहा है। जब यह युद्ध शुरू हुआ तो फ़िरंगी ने हिन्दुस्तान को भी इस युद्ध में घसीटना चाहा। गांधी जी ने कहा—ऐसा नहीं होगा।"

रतनलाल बोला, "गांधी जी तो हमारे जन्म से बड़े नेता हैं। वैसे कांग्रेस के चार आना देने वाले मेम्बर भी नहीं हैं, फिर भी कांग्रेस उन्हें पूछे बिना कोई कदम नहीं उठाती।"

अभिराम फूकन ने ज्ञान बघारा, "यो भी एक बात है। हिन्दुस्तान के जिन प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल काम कर रहे थे, सब ने त्यागपत्र दे दिये। फिर आसाम का कांग्रेस मन्त्रिमण्डल ही कैसे कुरसी पर जमकर बैठा रहता! वह भी बाहर आ गया।"

किसी की आवाज़ आई, "मैं बस आज तक यही नहीं सोच सका, त्यागपत्र देकर उन्होंने भलाई की या बुराई।"

रतन ने हँसकर कहा "लाल कपड़ा देखकर साँड डरता है। उन्होंने फ़िरंगी को लाल कपड़ा दिखा दिया।"

जिस ने यह आपत्ति की थी, उस की आवाज़ आई, "फ़िरंगी की सरकार तो वैसे ही चल रही है। टैक्स और बढ़ गये युद्ध के नाम पर। भाई, हम तो चन्दा देते देते तंग आ गये।"

अभिराम फूकन ने सूचर-कागज़ परे रखकर आँखों से ऐनक उतारी, और धीरे साफ़ करते हुए कहा, "फ़िरंगी को जाना पड़ेगा।"

"क्यों जाना पड़ेगा?" पास से आवाज़ आई, "झूठी बात है फ़िरंगी नहीं रहेगा। हम देश-सेवा की भावना से बहुत दूर जा पड़े हैं। फ़िरंगी नहीं रहेगा।"

अभिराम फूकन बोले, "दिसाँगमुख को ही लो। मीरी समझते हैं, यहाँ उनका बहुमत है; दूसरे लोग उन से दबकर रहें। शासन मीरी पर वे अपना अधिकार समझते हैं। शासन तो किसी का मित्र नहीं। मीरी लोग

बस इसी पर कालें बजाते हैं कि असमिया गाँव-बूढ़ा नहीं रहा, और कोई नेपाली भी गाँव-बूढ़ा नहीं बन सका।"

बनसिंह भी खामोश न रह सका, "किसी नेपाली को दिसौंगमुख का गाँव-बूढ़ा बनने का तो शायद कभी अवसर नहीं मिलेगा। हम बाहर से आये, यहाँ आकर हम ने मेहनत की। मेहनत करना तो पाप नहीं! हम ने मेहनत की और पैसा बनाया। दूध का सारा काम हमारे हाथ में आता गया। हम में से कुछ लोगों ने ज़मीन भी ख़रीद ली। अब भीरी लोग कहते हैं, नेपाली लोग एक दिन दिसौंगमुख की सारी ज़मीन ख़रीद कर यहाँ के छत्रपति बन जायेंगे! दिसौंगमुख का गाँव-बूढ़ा कोई नेपाली बना दिया जाय, तो इन लोगों को आग लग जाय!"

अभिराम फूकन ने उचित अवसर देखकर कहा, "मेरा मन कहता है कि आपसी भेद-भाव मिटाने के लिए हमें एक-दूसरे के राखी बाँधनी चाहिए। रक्षा-बन्धन का इतिहास तो बहुत पुराना है। प्रसंग तो यह है कि—"

"हाँ हाँ," राजखा ने गम्भीर होकर कहा, "जब देवासुर संग्राम में देवताओं के राजा इन्द्र बारह साल तक लड़ते रहने पर भी असुरों को नहीं हरा सके, तो इन्द्राणी ने पूजा-पाठ के पश्चात् अपने पति के हाथ में राखी बाँधकर हरि से प्रार्थना की कि यह युद्ध देवताओं के पक्ष में समाप्त हो जाय।"

अभिराम फूकन ने बात को आगे बढ़ाया, "हाँ, हाँ! और आधुनिक काल में बंगाल में रक्षा-बन्धन का एकदम नूतन प्रयोग किया गया। फ़िरंगी ने बंगाल के दो खण्ड कर डाले, तो सारा बंगाल एक साथ खड़ा हो गया।"

"और अब सारे दिसौंगमुख को एक साथ खड़ा हो जाना चाहिए!" रत्न एक हाथ की हथेली पर दूसरे हाथ की उँगली तबले की तरह ठेका करते हुए बोला, "जीते रहो, मास्टर जी! बहुत अच्छा प्रसंग है।"

"हाँ, तो मैं कह रहा था," अभिराम फूकन गम्भीर मुद्रा में कहता

कहा गया, "सारा बंगाल एक हाथ खड़ा हो गया था। एक ने दूसरे के हाथ में, दूसरे ने पहले के हाथ में और इस तरह सब ने एक-दूसरे के हाथ में राखी बाँधकर फ़िरंगी को बता दिया, सब बंगाली भाई-भाई हैं। और फ़िरंगी को झक मारकर अपना फ़ैसला बदलना पड़ा।"

आज यह गोष्ठी देर तक जमी रही। सब लोग बढ़-चढ़कर बोलते रहे। अतुल खामोश बैठा सुनता रहा।

"तुम क्यों चुप हो, अतुल!" घनसिंह ने चकित-सा होकर कहा, और इस से पहले कि अतुल कुछ कहे, वह स्वयं ही कह उठा, "अतुल को बिर्सोंगमुख की चिन्ता सता रही है।"

सब ने अनुरोधपूर्वक अतुल से कुछ बोलने को कहा, तो उस के कण्ठ से यही स्वर निकला, "अब मौका है, हम फ़िरंगी को चुनौती दें। ब्रह्मपुत्र हमारा है, तो उस में बहकर आती लकड़ी भी हमारी है।"

अभिराम फूकन ने समाचार-पत्र पर नज़रें गाड़ते हुए गम्भीर मुद्रा बना ली और कहा, "अभी वह अवसर नहीं आया।"

रत्न ने तान तोड़ी, "अतुल ठीक कहता है, मास्टर जी!"

"लोहा गरम हो, तो चोट करने से चूकना मूर्खता है।" घनसिंह भी चुप न रह सका।

रालाल ने मानो किसी हाथी पर अंकुश लगाया, "अरे ज़रा आगे भी कदम उठा, बिर्सोंगमुख! मकर तो न बन! जब बिर्सोंगमुख ऐसे काम को हाथ में लेगा, जिस में सब को लाभ हो, तो मीरी, असमिया और नेपाली के भेद-भाव खुद ही मिट जायेंगे।"

अभिराम फूकन ने टेक लगाई, "क्यों न हम एक-दूसरे के राखी बाँधें! हमारा एक संकल्प होना चाहिए।"

सारी गोष्ठी मन्त्रमुग्ध-सी नज़र आने लगी। अतुल कुछ न बोला। सब उसी के मुख की ओर देखते रह गये।

तिरसठ



साबन मीरी ने घर-घर घूमकर यह कहना शुरू कर दिया—"सरकार को टैक्स दिये बिना ब्रह्मपुत्र में बहकर आती लकड़ी को उठाकर घर लाने का विचार भीतर से थोथा है।"

एक दिन उस ने भरी पंचायत में यहाँ तक कह दिया, "ऐसी चोरी की लकड़ी पर तो मैं थूकता हूँ।"

गोपीनाथ दारोगा ने गाँव के लोगों को थाने में बुलाकर धमकाया, "खबरदार, अगर किसी ने अतुल के पीछे लगकर ब्रह्मपुत्र से मुफ्त लकड़ी लाने की बात भी सोची!" और पीछे उस ने पुचकारा, "टैक्स लिये बिना तो कोई सरकार नहीं चल सकती!'

अतुल ने निडर भाव से कहा, "दारोगा जी, सरकार को यह तो देखना चाहिए कि वह लोगों को टैक्स देने योग्य बना सकी है या नहीं। हम पहले से कहीं अधिक निर्धन हो गये हैं। बाढ़ हमारा कचूमर निकाल देती है। सरकार हमारी सहायता करती भी है, तो केवल नाममात्र के लिए। फिर यदि यही ब्रह्मपुत्र, जो हमें तंग करता है, हमारे लिए उपहार-स्वरूप लकड़ी ही बहाकर लाता है, तो वह लकड़ी हमारे लिए कर-मुक्त क्यों न हो!"

गोपीनाथ दारोगा ने मन-ही-मन अतुल के तर्क की प्रशंसा की, पर प्रत्यक्ष रूप से उस ने सरकार का दबदबा जमाते हुए कहा, "यह तो सरकार के सम्मान का प्रश्न है। विदेशी सरकार हो चाहे देशी, कर

तो वह लगायेगी ही। क्या देशी सरकार कर लगाये बिना ही काम चलायेगी ?"

मधुल के जी में तो आया, अभी उठकर उस दिन की घोषणा कर दे जब यह आन्दोलन आरम्भ होगा; पर वह चुप बैठा रहा। अभी अगले ही दिन फूलतारा ने उसे सलाह दी थी, "तुम पहले घर को देखो, फिर बाहर को। फिरंगी से लोहा लेना खेल नहीं। बापू की गाँव-बूढ़ा की पदवी छुड़ाकर तुम ने पहली भूल की। अब तुम यह दूसरी भूल करने जा रहे हो। या तो पहले मेरा गला घोंट डालो, बच्चों को उठाकर ब्रह्मपुत्र में फेंक आओ, या फिर चैन से रहो और घर के लिए काम करो।" इस के उत्तर में उस ने कहा था, "मुझे तो तुम कायर समझती हो। मैं कोई गलत कदम नहीं उठाता। घर को देखने से पहले मैं सदा बाहर को देखता हूँ। बाहर को देखे बिना घर को देखते रहना स्वार्थ है।" पर फूलतारा का तर्क तो दूसरा ही था, 'तुम चार बच्चों के बाप हो, यह मत भूल जाओ।" उस समय मधुल को लगा था कि फूलतारा भी शासन के चक्कर में आ गई।

गोपीनाथ काका घण्टे तक व्याख्या करता रहा, अंग्रेजी राज्य के अभ्यागत आने से हिन्दुस्तान को कितने लाभ पहुँचे। उस के कथनानुसार अंग्रेज न आते तो न डाकघर बनते, न रेलें चलतीं, न हवाई जहाज नज़र आते, न रेडियो बजता। मधुल को चुप देखकर उस ने कहा, "तुम नहीं जानते मधुल कि मैं ने कितनी बार तुम्हारा बाप्पा कटते कटते बचाया। अब भगवान् के लिए लोगों में सरकार के विरुद्ध प्रचार करना छोड़ दो।"

मधुल ने पहले तो गोपीनाथ का धन्यवाद किया, फिर साफ-साफ कह दिया, "सचाई किसी के रोके रुकने की नहीं, दारोगा जी। दिसाँगमुख को तो ब्रह्मपुत्र भी नहीं हरा सका; ब्रह्मपुत्र से बड़ा हम किसी को नहीं समझते।"

यह कहकर वह चुप हो गया। उसे याद आया कि किस तरह फूलतारा

ने उस रात घर में कुहराम मचा दिया था। उस ने यहाँ तक धमकी दे डाली थी, "यदि तुम्हारा वारन्ट निकल गया, तो मैं इस घर में नहीं रहूँगी।" सामने से कन्याराम भगत आ निकले थे और आधी रात तक बैठे मधुल को समझाते रहे थे। 'फिरंगी से टक्कर लेना मूर्खता है।'— उनका यही मत था।

गाँव की स्थिति यह थी कि शासन ने सब मीरियों को सरकार के पक्ष में कर लिया था। रामदास के सिवाय एक भी मीरी नज़र नहीं आता था, जो मधुल के सुझाये हुए रास्ते पर चल सके बल्कि कुछ आसमिया और नेपाली लोगों को भी सरकार ने खरीद लिया था। मधुल ने थाने के वातावरण की परवाह न करते हुए कहा, "सरकार कब तक हमें वशीभूत करती रहेगी!"

गोपीनाथ ने पुचकारा, "सरकार तो दिल से दिसाँगमुख का भला चाहती है। आप लोग भी ऐसा काम न करें, जिस से सरकार का काम ठप्प होने का भय हो।"

मधुल की अन्तरात्मा सिहर उठी। वह खुलकर कहना चाहता था— अपना काम तो हम करेंगे ही, करके ही छोड़ेंगे अपना काम; उस से तो हमें ब्रह्मपुत्र भी नहीं रोक सकता।

गोपीनाथ दारोग़ा का ध्यान खींचते हुए मधुल ने उठकर कहा, "कई बार मैं अपने खेत की मिट्टी मुट्ठी में भर कर नाक के पास लाता हूँ। इस की सोंधी-सोंधी सुगन्ध मुझे बहुत भली लगती है। मैं सोचता हूँ, दिसाँगमुख की माटी दिसाँगमुख वालों को एकता के सूत्र में क्यों नहीं बाँध सकती!"

"बैठो, बैठो!" गोपीनाथ मुस्कराया, "यह तो तुम ठीक ही कह रहे हो। सरकार भी यह चाहती है, दिसाँगमुख की एकता बनी रहे!"

थाने से लौटते समय शासन ने ताना दिया, "इतनी ही ऐंठ है, तो कल ही शुरू कर के दिखाओ अपना सत्याग्रह!"

वह घर पहुँचा तो रामदास ने भी उसे बहुत समझाया कि सत्याग्रह के

लिए यह उचित समय नहीं है। वे मारिसस के पेड़ों की ओर देखते रहे, जिन के पीछे से पूनम का चाँद झाँक रहा था।

अतुल बैठ गया और सोचने लगा—सुलतारा गर्भवती न होती, तो शायद मैं उस से बिना पूछे ही मैदान में कूद पड़ता। आठवाँ मास आरम्भ हो गया। सुलतारा को कहीं कुछ हो न जाय। नया शिशु आ रहा है नवांकुर के समान झूम-झूम उठेगा नया शिशु। चाँद-सा मुख प्यारा शरीर केले के समान गठा हुआ। कई काम ऐसे हैं जो बापू न कर सका, मैं ने कर डाले। कुछ काम जो मैं न कर सकूँगा, मेरा बेटा करेगा। जो वह भी नहीं कर सकेगा, वह कोई और करेगा। मुझे सुलतारा का दिल नहीं दुखाना चाहिए। मुझे कुछ दिन रुक जाना चाहिए।

अतुल को दृढ़-प्रतिज्ञ देखकर रासलाल ने कहा, "वैसे तो मैं अब भी यही सलाह दूँगा अतुल कि अभी यह कदम न उठाओ; पर अगर तुम यह सत्याग्रह शुरू करोगे तो मैं पीछे नहीं रहूँगा। हमारे नार्मन साहब कहा करते थे—या तो आदमी सोचे नहीं कि एक काम करना है, सोचे तो पीछे न हटे।"

चौंसठ



वर्षा ऋतु में ही लकड़ी बहकर आती थी। बहकर आती लकड़ी उठाकर लाने की तो कोई मनाही न थी अहोम राजाओं के समय से ऐसा ही होता आया था। अहोम राजाओं से पहले के राजाओं ने भी तो कभी इस की मनाही नहीं की होगी। मनाही तो वहाँ शुरू होती थी, जहाँ कोई इसे किनारे लाने के बाद सरकार को कर दिये बिना घर ले जाय। अहोम राजाओं के हाथ से असम का राज्य फ़िरंगी के हाथ में आया, तो वही पुराना कानून कायम रहा।

रामलाल ने ब्रह्मपुत्र के किनारे खड़े-खड़े अतुल की आँखों में झाँककर कहा :

"और कोई नहीं आया, परवाह नहीं।"

"परवाह नहीं!" अतुल मुस्कराया, "तुम मेरे साथ हो काका, तो सारा दिसाँगमुख मेरे साथ है!"

"मुझे तो इस बात पर आश्चर्य होता है कि कुछ वर्ष पूर्व, जब हिटलर ने जोर पकड़कर लड़ाई छेड़ दी थी, असम में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल कायम हुआ, तो उस ने भी इस कानून पर छाप लगा दी। कांग्रेस मन्त्रिमण्डल के त्यागपत्र देने के पश्चात् कानून वैसे-का-वैसा रहा।"

"हम इसे बदलकर दिखायेंगे, काका!" उसका स्वर स्थिर था।

सूर्योदय से पहले ही वे नाव लेकर ब्रह्मपुत्र में उतर गये। उन का प्रथ

था कि सूर्य ब्रह्मपुत्र के बीच आने पर उदय हो। सूर्योदय के प्रकाश में
ब्रह्मपुत्र में बहकर आते बड़े-बड़े विशालकाय वृक्ष देखे, तो अतुल तन्मय
हो गया। उस के हाथ चप्पू चलाते रहे।

"क्या सोचने लगे?" राखाल मुस्कराया, "तुम्हारा अब के बेटे को
जन्म देगी। मेरा मुँह मीठा कराना होगा।"

अतुल ने मन की बात स्पष्ट करते हुए कहा, "मैं सोच रहा था कि
कोई तीसरा आदमी भी हमारे साथ होता।"

राखाल हँस पड़ा, "कौन होता वह तीसरा आदमी? देवकान्त?"

"देवकान्त का तो इस सत्याग्रह में विश्वास नहीं।"

"तो और कौन होता वह तीसरा आदमी?"

अतुल चप्पू चलाता रहा। सूर्य का रक्ताभ गोला धीरे धीरे
सुनहला होता गया अतुल चप्पू चलाता रहा। उसे नीरद का ध्यान
आया। दो-तीन अलमारियों में रखी हुई उस की अंग्रेज़ी-बद्ध पुस्तकें
उस की कल्पना में घूम गई। वह काका से कहना चाहता था, नीरद
जैसे लोग तो पुस्तकों के कीड़े बन कर ही रह जाते हैं। परन्तु स्पष्ट शब्दों
में उस ने नहीं कहा, "काका, नीरद को भी हम बुरा क्यों कहें? धनसिंह
कभी-कभी हँसकर कहता है—'यह नीरद मज़े कर रहा है। किसी की
परवाह में कभी नहीं, और नीरद जी महाराज की पुस्तक कभी समाप्त नहीं
होगी। वाह रे नीरद, छिपाते जाओ, लिखते जाओ, कभी तो पुस्तक
समाप्त हो ही जायगी।' पर मैं तो नीरद पर व्यंग्य नहीं कस सकता।"

राखाल ने गम्भीर होकर कहा, "दूसरों पर टीका-टिप्पणी करना
सहज है। धनसिंह यह देखे कि वह स्वयं क्या कर रहा है।"

अतुल हँसकर बोला, "ठीक है, काका। नार्मन साहब भी यही कहते
होंगे।"

नार्मन साहब का नाम सुनकर राखाल मुस्कराया। उसे चाँद-सूजी का
जंगल याद आ गया। बोला, "हाथियों का संग छोड़कर मैं ने अच्छा नहीं
किया। मैं सोचता हूँ, नार्मन साहब को भी अवश्य हाथियों की याद सताती

होगी।"

ब्रह्मपुत्र में नावें आ-जा रही थीं; आकाश पर मेघ छा रहे थे। एक नाव में कुछ की मटकियाँ रखी थीं। ब्रह्मपुत्र में बहते एक विशालकाय वृक्ष पर मज़बूत रस्से की फाँस फेंककर उस वृक्ष को काबू कर लिया गया। इस नाव से मातिबूर एक स्थान पर बहुत बड़ा बेड़ा बना रहा था, जो अनेक शहतीरों को जोड़कर बनाया गया था। एक और विशालकाय वृक्ष को बहते देखकर इस बेड़े वालों ने फाँस लिया।

"ये लोग टैक्स भरेंगे इस लकड़ी पर, जैसे सदा से होता आया है।' अतुल ने गम्भीर होकर कहा, "पर यदि हमारा सत्याग्रह सफल रहा, तो बहती लकड़ी पर से टैक्स हट जायगा।"

"पहले कमलिया सापरी तो पहुँच लो।" रासाल ने धीरे से कहा, "हमारा सत्याग्रह तो वहीं से शुरू होगा। कमलिया छापरी के साथ गगन नावरिया की कथा जुड़ी हुई है। निस्तब्ध रात्रि में कमलिया सापरी के पास तुम ने भी कभी सुना है गगन नावरिया का गान? मैं ने तो सुना है।"

"मैं ने भी सुना है!" अतुल की मुख-मुद्रा गम्भीर थी, "गगन मरा नहीं, अपने गान में आज भी जीवित है। गगन ने कमलिया सापरी पर झोंपड़ी बनाई थी। वह ब्रह्मपुत्र से डरता नहीं था। लोगों ने लाख कहा, कमलिया सापरी तो कई बार बनी और कई बार डूबी, तुम यहाँ झोंपड़ी न बनाओ, नहीं तो डूब जाओगे वह न माना। वह उस का सत्याग्रह था। इस में वह सफल हुआ। वह मरकर भी नहीं मरा, काका!"

"नीरव रात्रि में गगन का गान ब्रह्मपुत्र की लहरों पर तैरता है, तो यही सिद्ध होता है। हमारे नार्मन साहब कहा करते थे—सचाई को कोई सूली पर भी क्यों न चढ़ा दे, सचाई कभी नहीं मरती!"

नार्मन साहब का बखान करते-करते वह चुप हो गया। कुछ क्षणों के मौन के पश्चात् उस ने कहा, "हथिनी को देखकर ही बता देते थे नार्मन साहब कि उस के पेट में कितने महीने का बच्चा है।"

"कैसे जान लेते थे?"

"सहज-बुद्धि और लम्बे अनुभव से। तुम भी चाहो तो यह सब जान सकते हो।"

रामलाल आत्म विभोर हो गया। एक चलचित्र के समान पिछले वर्ष उस की कल्पना में घूम गये, जिन में धीरे-धीरे उस ने हाथियों के सम्बन्ध में गहरा अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया था। उसे इस बात का दुःख था कि हाथियों से उस का संग कभी का छूट गया अब तो उस की पेन्शन हो चुकी थी। पेन्शन उस ने छोड़ दी थी। उस ने फिरंगी का विरोध करना आवश्यक समझा। उसे यह भी याद था कि जब पहले पहल फिरंगी की पेन्शन छोड़ने के पश्चात् उस ने नार्मन साहब के घर के पते पर पत्र लिखवाकर इस घटना की सूचना दी थी, तो लौटती डाक से ही नार्मन साहब का उत्तर आया था। वह पत्र पढ़वाने के लिए हडसन साहब के पास गया था। हडसन साहब ने बताया था कि इस पत्र में नार्मन साहब ने हडसन साहब को भी प्यार लिखा था। हडसन साहब ने बताया था कि नार्मन साहब ने यह बात पसन्द नहीं की कि इतने साल चौंदकुची के जंगल में हाथियों की नौकरी करने के बाद रामलाल ने अपनी पेन्शन से हाथ धो लिये। हडसन साहब ने बहुत समझाया था, वह चाहे, तो अभी समय है; उस की पेन्शन फिर से बहाल कराई जा सकती है। पर रामलाल को कोई कैसे उलटी पट्टी पढ़ा सकता था? उस ने यह सलाह मानने से साफ इन्कार कर दिया था। अब तक उस का यही विश्वास था, नार्मन साहब ने अवश्य उसे उस के इस शुभ निश्चय पर बधाई दी होगी यह सिर्फ हडसन साहब की चालाकी थी, वह झूठ-मूठ नार्मन साहब के कन्धे पर रखकर बन्दूक चलाना चाहता था।

"नीरद मूर्तिवत् बैठा होगा अपनी पुस्तकों वाली अलमारी के सामने कुरसी डाले!" मधुप ने रामलाल का ध्यान खींचा, "सच है, काका! नीरद की यह पोथी कभी समाप्त नहीं होगी। वह बस बैठा लिख रहा होगा। मैं सोचता हूँ, इतना लिखने से क्या होता है?"

"जैसे तुम धान उगाते हो, यह सिखाता है। सिखाना क्या व्यर्थ का काम है?"

"अच्छा होता यदि वह भी इस सत्याग्रह में हमारे साथ रहता।"

"यह तो अपनी इच्छा की बात है, कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती तो है नहीं।"

"देवकान्त मामुली में है।"

"उसका रास्ता दूसरा है। अपना अपना रास्ता है। घबराओ मत, मधुप! मैं अकेला ही काफी हूँ। हमारे नार्मन साहब कहा करते थे—अकेला आदमी दस हाथियों जितनी बुद्धि रखता है।"

मधुप इच्छापूर्वक मुस्कराया। जल के प्रवाह के विपरीत नाव चलाते हुए उसे काफी ज़ोर लगाना पड़ रहा था। वर्षा ऋतु के कारण ब्रह्मपुत्र अपने सामान्य तल से ऊँचा उठ गया था।

"हाँ, तो मैं कह रहा था, तीस साल तक चाँद-ट्टी के जंगल में, जहाँ मैं और नार्मन साहब साथ-साथ रहे, हाथी ही हमारे सब से बड़े मित्र रहे।"

"तुम्हें हाथियों पर इतना अधिक विश्वास था, काका! और अब हम पर विश्वास करने को मन नहीं! यह हाथी पुराण खोलकर क्यों बैठ गये? आज तो हम सत्याग्रह करने निकले हैं।"

राजाल सोचने लगा—शायद इस सत्याग्रह की सूचना तक किसी खबर-कागज़ में नहीं निकलेगी। निकले तो नार्मन साहब भी अपने देश में बैठे-बैठे पढ़ सकें, दिसाँगमुख में राजाल का क्या तौर-तरीका है; वहाँ बैठे-बैठे वे देख सकें, दिसाँगमुख क्रान्ति की ओर बढ़ रहा है, जैसे कोई हाथी अपनी मंज़िल की ओर बड़े चैन से चलता है।

अब वे कमलिया सापरी के किनारे पहुँच गये थे। बड़े आराम से नाव से उतरे और इसे किनारे से बाँधकर खुली आँखों से ब्रह्मपुत्र का दृश्य देखने लगे। विशालकाय और लघुकाय सभी प्रकार के वृक्ष जड़ से उखड़कर अपार जल-प्रवाह में बहते आ रहे थे। यह सब ब्रह्मपुत्र का उपहार था। जैसे ब्रह्मपुत्र कह रहा हो—यह सब तुम्हारे लिए है, मेरे

मिष्ट परसने वालो! यह मेरी भेंट है तुम्हारे लिए इस अनुकम्पा के लिए मैं धन्यवाद का एक भी शब्द नहीं चाहता।

वे यह भी जानते थे कि बढ़ते वृक्ष को खोंसने-मात्र से ही उनका सत्याग्रह आरम्भ नहीं हो जाता। इसकी तो सभी को खुशी हुई थी। कानून की पकड़ तो वहीं आरम्भ होती थी, जहाँ कोई कटे वृक्ष को चौसकर घर ले जाये और घर लाने से पहले सरकार को टैक्स न चुकाये।

शीघ्र ही वे नाव में बैठ गये। ऊपर से एक वृक्ष बहता आ रहा था। अतुल ने नावटी की पटरी पर खड़े-खड़े ही इसे फाँस लिया था। अब यह वृक्ष नाव के साथ-साथ बहता जा रहा था और अब उन के अधिकार में था।

दिसाँगमुख के नाव-घाट के पीछे इधर ही उन्हें नीरद भी नाव में बैठा जल्दी जल्दी चप्पू चलाता मिल गया।

“तुम कैसे आये, नीरद बाबू!” रामलाल चिल्लाया।

“बैठकर खेलनी चलाते!” अतुल ने व्यंग्य कसा, “सत्याग्रह का ध्यान तो तुम्हें आने से रहा!’

“क्यों? मैं क्या दिसाँगमुख में नहीं रहता? मैं भी आप लोगों के साथ हूँ।”

“सोचकर बात करना!” रामलाल ने गम्भीर होकर कहा, “याद करो उस जुलूस की बात, जिस में तुम हमारे साथ थे। तब जेल में नहीं भेजा था फिरंगी ने; अब वह नहीं चूकेगा। साधारण-सा जुर्माना करके ही नहीं छोड़ेगा।’

“जुर्माना किया तो नहीं भरेंगे!” नीरद की आँखें चमक उठीं।

“किसी से पूछ आये हो?” अतुल ने हँसते हँसते अपनी नाव नीरद की नाव के साथ मिला दी।

दोनों नावें अब दिसाँगमुख की ओर जा रही थीं। अतुल ने संकेत किया, “किसी का मन नहीं है, तो मारो चौंस उस पेड़ को!”

नीरद बोला, “रस्सा तो नहीं लाया।”

"छोड़ो यह बखेड़ा, नीरद बाबू !" रालाम ने सलाह दी, "तुम मत पड़ो इस सत्याग्रह में।"

अतुल ने नीरद की नाव में एक रस्सा फेंकते हुए कहा, "कैसे कह रहे हो, काका ? हम नीरद को अपने साथ रखेंगे।"

नीरद ने अगले ही क्षण उस वृक्ष को फँस लिया और अब दोनों नावों के साथ-साथ एक-एक वृक्ष भी चलता नज़र आने लगा।

जब वे नाव-घाट पर पहुँचे, तो साधन मीरी पहले से विरोध के लिए तैयार था उस के बाद और गोपीनाथ दारोग़ा भी खड़ा था।

"नीरद बाबू, आप भी केस-यात्रा करेंगे ?" साधन मीरी ने गर्वित मुद्रा के अन्दाज़ में कहा, 'किसी से पूछ आये हो ? अब भी समय है, पूछ आओ दौड़कर।"

"कोई सत्याग्रह नहीं होगा।' गोपीनाथ ने हँसकर कहा, "साधन, तुम तो मूर्ख हो। वृक्ष फँस लाना तो अपराध नहीं। सरकार टैक्स वसूल करेगी। फिर वे वृक्ष इन लोगों के हो जायेंगे।"

"हम टैक्स नहीं देंगे।" अतुल ने बड़ी दृढ़ता से कहा, "सरकार का इन वृक्षों पर हम कोई अधिकार नहीं समझते।"

"अतुल ठीक कह रहा है।" रालाम ने भी अपना स्वर जोड़ दिया।

"तुम क्यों चुप हो, नीरद बाबू ?" गोपीनाथ ने पुचकारा, ' टैक्स देने का इरादा हो, तो सरकार तुम्हें कुछ नहीं कहेगी।"

"मैं भी टैक्स नहीं दूँगा।" नीरद ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"तो आप तीनों गिरफ्तार हैं।"

"हमें कोई आपत्ति नहीं।' तीनों एक स्वर होकर बोले, "जय ब्रह्मपुत्र। जय दिसाँगमुख।"

पैंसठ



एक-एक करके दिसाँगमुख के दिन बीतते गये। नीलमणि आकर धनसिंह की दुकान पर मूर्ति के समान बैठा रहता।

धनसिंह समझाता, "यह तो ठीक है कि सिली तीनों की जमानत देने को तैयार थी, और यह भी ठीक है कि जुर्माने से ही तीनों का निस्तारा हो सकता था। पर क्या यह दिसाँगमुख के वीरों को शोभा देता?"

अतुल, रमाकान्त और नीरद को छः-छः मास की सजा हो चुकी थी।

नीलमणि के लिए एक-एक घड़ी लम्बी हो रही थी। अतुल के बिना उसका संसार सूना हो गया था। उसका छरहरा शरीर मानो और भी दुबला-पतला हो गया, आँखों की दृष्टि भी कमज़ोर होने लगी। उस के मुख पर सदैव विषाद की रेखाएँ नज़र आतीं।

कन्याराम मास्टर कहते, "देवकान्त ने अतुल को भी खराब किया।"

अभिराम फूकन कभी-कभी दफ्तर-कागज़ की बात छोड़कर धनसिंह की दुकान पर दिसाँगमुख के वीरों का अभिनन्दन करने लगता। उस की आँखों में एक प्रकार का विजयी प्रकाश नज़र आता।

धनसिंह कहता, "मास्टर जी, सुना है देवकान्त का ज़ोर मामूली से बहुत बढ़ गया है।"

"बढ़ेगा कैसे नहीं?" अभिराम फूकन उत्तर देता, "ब्रह्मपुत्र की

प्रेरणा स्पर्श नहीं करती। ब्रह्मपुत्र की बाढ़ से लड़ने वालों में जब कोई वीर जन्म लेता है, तो वह ऐसा-जैसा वीर नहीं होता।"

दिसाँगमुख वाले अतुल की प्रशंसा करते नहीं थकते थे। दिसाँगमुख में ब्रह्मपुत्र का तट-बन्ध अतुल के साहस और परिश्रम का प्रतीक था। ब्रह्मपुत्र का इतिहास तो लोगों को मालूम नहीं था इस तट-बन्ध का तो इतिहास था, अतुल ने ही इस के लिए सब से पहले आवाज उठाई थी। ब्रह्मपुत्र के किनारे टहलोरी करता अभिराम फुकन तट-बन्ध की ओर देखता और सोचता—काश, मैं न इस बन्ध को बनते हुए देखा होता! जिस समय यह तट-बन्ध बनाया गया, अभिराम फुकन किसी दूसरी जगह पढ़ाता था। गाँव के एक प्रतिष्ठित भद्र पुरुष के समान वह मन-ही-मन कहता—शाबाश अतुल! तुम्हारा नाम तो इस तट-बन्ध के साथ सदा के लिए जुड़ गया। ब्रह्मपुत्र के विस्तृत प्रवाह के समान है तुम्हारा जीवन। अरे तुम तो यह सुनकर भी अडोल रहे कि सुलतारा के मरा हुआ बच्चा जन्मा है। अरे शाबाश अतुल, तुम ने केवल इसी बात से सन्तोष नहीं किया कि इस तट-बन्ध पर तुम्हारा नाम अदृश्य अक्षरों में लिखा हुआ है। जब से यह बन्ध बाँधा गया, ब्रह्मपुत्र ने गाँव पर चढ़ाई नहीं की। अब तो ऐसा लगता है, मानो ब्रह्मपुत्र ने दिसाँगमुख का प्रहरी बनना स्वीकार कर लिया है।

गाँव के साधारण नर-नारी अपना स्वाभाविक जीवन बिता रहे थे। इस पठार में धान की कमी न थी, भूमि की कमी न थी बाढ़ के कारण बहुत-सी भूमि किसी सीमा तक परती का रूप धारण करती चली गई थी, पर इस से कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता था; यहाँ का विस्तृत पठार प्रचुर मात्रा में, और वह भी थोड़े से परिश्रम से ही, धान उपजाता था। वैसे तो हल चलाए बिना कोई उपाय न था पर वस्तुतः यहाँ का पठार इतना उर्वर था कि यदि वैसे ही बीज फेंक आओ, और फिर जाकर देखो भी नहीं कि बीज का क्या बना, तो फसल के दिनों में जाकर फसल काट लो। वैसे रोपा वाला धान तो रोपने वालों का श्रम माँगता था। उन के

श्रम के बदले धरती उन्हें सुनहरी फ़सल से मालामाल कर देती।

ब्रह्मपुत्र में बहकर आते वृक्षों को कमसुक बनाने के सत्याग्रह का कोई विशेष महत्त्व है, यह बात बहुतों की समझ से परे थी। अतुल, रामलाल और नीरद का केस बाना दुस्तर विषय था, पर बहुतों का यही विचार था कि सरकार अपना अधिकार नहीं छोड़ सकती।

कोई कहता, "अरे बाबा, सरकार से टक्कर लेना तो ऐसा है जैसे एक छोटी-सी भाव बाढ़ के पानी से होड़ लेना चाहे।" दूसरा कहता, "तुम नहीं ले सकते होड़, तो उन को तो न रोको जो होड़ ले सकते हैं।"

बहुतों का विचार था कि जैसे ब्रह्मपुत्र द्रुतगामी है, वैसे ही सरकार का क़ानून भी द्रुतगामी है। लड़ाई की खबरें भी उन के कान में पड़ती रहती थीं। यह भी सुनने में आया था कि नेता जी सुभाषचन्द्र बोस जापान जा पहुँचे। जर्मनी का नया शिष्य था जापान। जर्मनी का शिष्य तो वैसे इटली भी था, पर जापान बहुत ज़ोर मार रहा था। धनसिंह की दुकान पर ड्राइ बैट्री का रेडियो सेट इन्हीं दिनों आया था। वैसे तो रेडियो की खबरों में हिटलर की बहुत बुराई की जाती थी, पर मालूम होता था, हिटलर को रोकने वाला अभी तक पैदा नहीं हुआ। कोई कहता, "किसकी होगा हिटलर।" कोई कहता, "बता, फ़िरंगी पड़े। अब बोल अपने इस बापू के सामने।" कोई कहता, "फ़िरंगी का दादा था यह ब्रजेम है। आया था हमारी सहायता को, हमारा घर-बार सँभाल बैठा, हमें उल्लू बनाकर।" कोई कहता, "विष का आरम्भ है, उस का अन्त भी अब नहीं टिक सकता फ़िरंगी।"

किसी-न-किसी तरह लोग अतुल, रामलाल और नीरद के सत्याग्रह का महत्त्व समझने का यत्न करते। वे सोचने लगे कि फ़िरंगी का पतन अवश्यम्भावी है।

नीलमणि बराबर दिन गिनता रहता। वह और लोगों के समान यह नहीं सोचता था कि कुछ ही दिनों में हिटलर अपने पैर हिन्दुस्तान तक पसार लेगा, और शिवसागर जेल के दरवाज़े खोलकर क़ैदियों को

मुक्त करने का श्रेय भी उसी को मिलेगा। दिसाँगमुख में सुख-सुविधा की तो कमी न थी, पर घर में अतुल की कमी नीलमणि को सब से अधिक अखरती थी।

वैसे ही उषा के रंग फैलते वैसे ही सूरज उगता वैसे ही सूरज डूबता वैसे ही जन्म और विवाह के दिन आते वैसे ही नावें चलतीं वैसे ही मछुए मछलियाँ पकड़ते। दिसाँगमुख की शोभा में तो कोई अन्तर नहीं आया था। वैसे ही धनसिंह की चाय बिकती वैसे ही रतन नापित की दुकान पर लोगों के बाल बनाये जाते, 'शेव' की जाती। मीरी, असमिया और नेपाली का झगड़ा वैसे-का-वैसा बना हुआ था।

साधन के जिम्मे यह काम आ गया था कि वह लोगों को हिटलर के पक्ष में होने से रोके। वह कहता फिरता था, "हिटलर के पैर अभी दूर हैं फिरंगी उसे लाल झण्डा दिखाकर रोकेगा। नये मित्र से पुराना मित्र लाख दर्जे अच्छा होता है। हिटलर का सर्वनाश! फिरंगी की जय!"

लोग हँसने लगते। कोई कहता, "यह बताओ साधन, फिरंगी को नींद भी आती है या नहीं?" कोई कहता, "अपने पाप भूल गया फिरंगी? हमारे असम देश में आर्थर उस ने आरम्भ में किस तरह राज वंश के लोगों को समाप्त किया, किस तरह निरपराधियों को सूली पर लटकाया था मणिपुर में! वह सब भूल गया फिरंगी?" कोई कहता, "फिरंगी की व्यवस्था समाप्त होगी, ब्रह्मपुत्र इसी तरह बहेगा।" इस पर सब हँस पड़ते, और साधन अपना-सा मुँह लेकर रह जाता।

गोपीनाथ से बढ़कर साधन किस-किस का मुँह बन्द करा सकता था? कई बार वह उन्हें चेतावनी देता—फिरंगी से डरो। पर वे समझ चुके थे, फिरंगी को जाना पड़ेगा।

गोपीनाथ लोगों को थाने में बुलाकर समझाता, "अंग्रेज के राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता। हिटलर को मुँह की खानी पड़ेगी। आप लोग दिसाँगमुख की रक्षा के लिए तैयार रहें। ये युद्ध के दिन हैं। किसी भी समय हमारे ऊपर बम-वर्षा हो सकती है।"

बम वर्षा की बात सब के लिए नई थी। आकाश पर हवाई जहाज देखकर सब भयभीत हो जाते, जैसे घर द्वारों पर वज्र-वर्षा करने आ गए हों।"

जनपाल गुसाईं की एक ही रट थी "सब [illegible]! हरि नाम की चादर ओढ़ लो। उसी में सर्वनाश का अन्त है। मछली-मांस त्यागो, शुद्ध, सात्विक, वैष्णव भोजन ग्रहण करो। जीवन का उद्देश्य है त्याग, विलास नहीं।"

लोगों की समझ में यह बात नहीं आती थी कि त्याग और विलास की होड़ के कारण ही हिटलर का जन्म हुआ है।

कोई कोई कहता, "एक ओर से हमें ब्रह्मपुत्र दबा रहा है दूसरी ओर से फिरंगी। हम किधर जायें? इधर या उधर?

देवकान्त मालुकी में था पुलिस उसे पकड़ नहीं सकी थी। अनुपम, रामलाल और नीरद शिवसागर जेल में थे शिवसागर के स्वाधीनता की छिटपुट बातें भी उन्हें उस के मन से नहीं हटा सकी थीं। अन्त में सब यही सोचने लगे—देवकान्त को कब गुप्त-वास से दिखौमुख आने का अवसर मिलेगा? अनुपम, रामलाल और नीरद के छूटने में कितने दिन रह गये?

देवकान्त की आगमन-तिथि को अनिश्चय का कोहरा ढाँप रहा था पर अनुपम, रामलाल और नीरद के छूटकर आने का दिन समीप आ रहा था।

जैसे भोर प्रतीत होती, वैसे सप्ताह और पखवाड़ा भी कटता रहता; वैसे ही रात के घण्टे क्षीण होते रहते। दिखौमुख में जीवन-धारा वैसी-की-वैसी चलती रही। रेशम के कीड़े वैसे ही पाले जा रहे थे। वैसे ही करघे पर पाट और मूगा के थान बुने जा रहे थे। वैसे ही हाट-बाजार लगता था वैसे ही दूर-दूर के गांवों की नावें आकर दिखौमुख के घाट पर लगती थीं। वैसे ही मछलियाँ पकड़ी और बेची जाती थीं। किन्तु अनिरुद्ध होता तो दिखौमुख न सीखा ही न था। यहाँ ब्रह्मपुत्र

भी स्थिर-कर्मठ था; दिसौंगमुख भी काल-नदी के समान प्रवहमान था।

धीरे धीरे समय बढ़ता गया। क्षण, पल, घड़ियाँ, दिन, सप्ताह, मास। अब तो लगता था कि अतुल, रासाल और नीरद के स्वागत के लिए सभी अधीर हो उठे हैं।

नीलमणि के मुख पर भी मुस्कान लौट आई थी। धनसिंह कहता, "अब तो थोड़े-से दिन रह गये।" नीलमणि उत्तर देता, "ये भी व्यतीत हो जायेंगे।"

दिसौंगमुख का अतलस्पर्शी सौन्दर्य-बोध और पूजा-पर्व का हर्षोल्लास जैसे फिर से लौट रहा था। रात को निःशब्द आकाश-गंगा भी मानो उसी आनन्द-वेला की वन्दनवार बन जाती, जिसे दिसौंगमुख अपने वीरों के लिए आलीसीमा के बाजार के सिरे पर लगाने का विचार कर रहा था। निस्तब्ध अन्धकार में बहता ब्रह्मपुत्र भी मानो पूछने लगता—कब छूट कर आयेंगे दिसौंगमुख के वीर!

अब तो मालूम होता था कि दिसौंगमुख वाले इस बात पर लज्जित हैं कि वे सब मिलकर सत्याग्रह में सम्मिलित क्यों नहीं हुए। सब को छः-छः मास की क्यों कैद ही हो जाती न बस! और तो कोई दण्ड न मिलता। जेल से आकर अगले वर्ष वे फिर सत्याग्रह करते। फिरंगी कब तक उन्हें पकड़ता चला जाता? चलो इस बार सही। अतुल, रासाल और नीरद को आ जाने दो। हम उन्हें वचन देंगे, हम उनके साथ हैं। फिरंगी हमें सूली पर तो चढ़ाने से रहा। यह सत्याग्रह हमें नये अधिकार देगा, हमारी पराधीनता को समाप्त करेगा। हम कहेंगे, हम में कोई दोष त्रुटि नहीं है, हम तुम्हारे नेतृत्व में काम करेंगे, अतुल!

लगता था दिसौंगमुख को विश्वास हो गया, स्वाधीनता की देवी यथासमय यथास्थान प्रवेश करती है। बहुत पीछे से आ रहा था ब्रह्मपुत्र, बहुत आगे जा रहा था; अतीत से भविष्य की ओर जा रहा था जीवन का विरामहीन पथ। कितना पथ कट गया, कितना शेष है, यह प्रश्न तो अनन्त काल से पूछा जा रहा था।

पिछले कई महीनों से कई बार दिसाँगमुख को भूकम्प के झटके लगे, पर भूकम्प से कुछ गिरा नहीं। यहाँ की झोंपड़ियाँ तो बनाकर भूकम्प के झटकों के अनुरूप ही तो निश्चित की गई थीं। युग-युग से दिसाँगमुख में ये झोंपड़ियाँ चलती आई थीं, जो भूकम्प के बड़े-से-बड़े झटके को भी सह लेती थीं।

एक दिन भूकम्प का स्पन्दन आधी रात के समय आया। धनसिंह की दुकान का बोर्ड गिर पड़ा। और किसी का कुछ नुकसान न हुआ।

सवेरे-सवेरे कामाख्या भगत ने आकर कहा, "पोथी अनुष्ठान कराओ। यह डिकशारी! यह डिकशारी!"

नीलमणि भी आ निकला। वह बोला, "धरती का दिल धड़कता है तो भूकम्प होता है।"

"यह देखो, धीन आ रहे हैं!" रत्न मानिक एक हाथ की हथेली पर दूसरे हाथ की उँगली ठस्सा तेज करने के अन्दाज़ में चलाने लगा।

सब की आँखें सड़क की तरफ़ उठ गईं। आगे-आगे रामलाल था, पीछे अतुल और नीरद बाँहों-में-बाँहें डाले।

छः मास मानो रात-की-रात में कट गये।

छियासठ



देखने में एकदम गुरु-शिष्य परम्परा का प्रतीक दाढ़ी मूँछ और सिर के बाल बढ़े हुए वैसे मामुली को उसका यही रूप पसन्द है। सिर पर गमछा बाँधे रखता है।

कभी वह सोचता है, सारा दिसाँगमुख एक साथ उठकर खड़ा हो जाय तो मैं मामुली छोड़कर दिसाँगमुख चला जाऊँ। पर अभी इस की कोई सम्भावना नहीं।

अतुल, रामलाल और नीरद के सत्याग्रह का समाचार समय पर मिल गया था जिस दिन वे जेल से छूटकर दिसाँगमुख पहुँचे, यह समाचार भी अपने विशेष साधनों द्वारा उसे मिल गया।

इस प्रकार तो स्वतन्त्रता आते सौ साल लग जायेंगे।—वह मन-ही-मन कहता है, ये लोग क्रान्ति का 'क ख' भी नहीं जानते।

इस बीच वह एक बार परशुराम कुण्ड की यात्रा कर आया है। अभी तक पुलिस उस पर हाथ नहीं डाल सकी। इस पर स्वयं उसे भी आश्चर्य होता है।

मामुली वाले मरते मर जायेंगे, पर मुझे कभी भूलकर भी पुलिस के हवाले नहीं करेंगे।—उस ने मन-ही-मन कहा, मामुली जाग उठी। मामुली का पासा अब उलटा नहीं पड़ सकता। वैसे 'गुरु जी' सम्बोधन सुनते-सुनते कान पक गये। फिर भी शिष्यों का कमाल इसे ही कहते हैं कि शिकारी गाँव से सरकार को थाना उठा लेना पड़ा। धन्य हो, मामुली!

तेरी धरती पर फ़िरंगी के पैर कम ही पड़ते हैं। कब कब से और कमिश्नर भी दौरे पर नहीं आया।

खातिरदारी में भी मामुली पीछे नहीं। जितना चाहो मक्खन खाओ। जितना चाहो दूध पियो। भूमि कहते हैं। मामुली को भी सुबुद्धि आयेगी, इस की आशा बहुत कम लोगों को थी। शिकारी गाँव में खाना बनाने दिया जाता तो फ़िरंगी ने मामुली में पा-ना पर खाना बना दिया होता। गुरु तो निमित्त मात्र हैं, कार्य तो शिष्यों को करना पड़ता है। पर तेरे भी, सात समुद्र तेरह नदियाँ पार करके तू यहाँ क्यों चला आया—यहाँ हमारे आसम देश में? मामुली मानो मन-ही-मन कहती है—कम-से-कम मुझे तो अपने पैरों पे अब मत करो। मैं तो ब्रह्मपुत्र के जल से बनी, आदर-मान से मैं ने स्वाधीनता की भावना को अभय दिया।

देवकान्त को लगता, मानो स्वयं मामुली कह रही है—गुरु जी, स्वाधीनता के अनुष्ठान में और क्या चाहिए, आज तो नारियल की ? और गुरु का सन्देश लाइए गाय का एक सेर दूध भी पीना होगा! । उसे लगता, मानो मामुली एक नारी है—बड़ी-बड़ी आँखें, माथे पर चन्दन का नहीं, श्रद्धा और आस्था का तिलक बड़ी-बड़ी आँखों में ब्रह्मपुत्र की भूख मारा। मानो मामुली की बड़ी-बड़ी आँखें धमधम और बड़ी हो जाती हैं, और उस आज से सैकड़ों-हज़ारों वर्ष पूर्व का वह पुण्य दिवस स्मरण हो आता है, जब ब्रह्मपुत्र को विशाल धारा से उस का जन्म हुआ। जैसे मुँह में आँचल दबाकर हँसती है कोई बड़ी-बड़ी आँखों वाली नारी, ठीक वैसे ही तो हँसती है मामुली। और यह न पूछे मामुली से, उस की आयु क्या है। उसे स्वयं भी ज्ञात नहीं। कभी-कभी तो लगता है, मानो मामुली अभी यौवनाभिरूढ़ा है एक नव-विवाहिता वधू, सिर पर घूँघट खींचती हुई वधू। मानो उस की शिकायत यही हो, रात को मच्छर बहुत काटते हैं मच्छरदानी के बिना तो गुज़ारा नहीं। मुख-कमल प्रसन्नता से खिला ब्रह्मपुत्र।

हुआ। कभी लगता है, मानो मामुली स्तम्भ-सी खड़ी कुछ सोच रही है कभी लगता है, अभी खिलखिलाकर हँस पड़ेगी। कभी लगता है, मामुली विराट शून्य में देखती हुई किसी प्रश्न का उत्तर ढूँढ रही है; आँखों में काजल-रेखा, जूड़े में रजनीगन्धा के फूल। महापुरुष से मामुली का जन्म हुआ, विराट जलधारा से जन्म हुआ, इसलिए उसकी निष्ठा क्षणभंगुर नहीं। अविचल भाव से वह किस बात का ध्यान कर रही है? यह सोचकर 'गुरु जी' विभोर हो जाते हैं।

पर सच पूछो तो 'गुरु जी' का मन अब मामुली से उचाट हो गया है। मामुली कदाचित् इसी बात का रहस्य पाना चाहती है कि 'गुरु जी' का मन उचाट क्यों हो गया। मामुली इस बात को लेकर हँस भी सकती है। उस की हँसी से तो दिग्दिगन्त गूँज उठते हैं। विह्वल दृष्टि से मामुली 'गुरु जी' की ओर देखती है—मन उचाट क्यों हो गया? जलपान का कष्ट है, न भोजन का फिर मन उचाट क्यों हो गया? यही सोचकर तो 'गुरु जी' खीझ उठते हैं—क्या मैं यहाँ केवल जलपान अथवा भोजन के लालच से आया?

किसी ताल पर झूम रही है मामुली। यह ताल तो बहुत पुराना है। कितनी गहरी है उस की कुतूहल-भरी दृष्टि, निद्रालु-सी आँखें, मानो अभी-अभी नींद से जाग उठी हो। मामुली तो कई बार सोई, कई बार जागी। इस से पहले भी इसे जगाने के लिए कई 'गुरु जी' आये।

बाँसुरी बजती है तो गीत जन्म लेता है, यह जानती है मामुली यह भी जानती है कि डूबना ही हो तो गन्दे नाले की अपेक्षा ब्रह्मपुत्र में क्यों न डूबा जाय। मामुली यह भी समझ गई है कि समय से पहले तो आदमी मर ही नहीं सकता।

जिस के भाग्य मे डूबकर मरना लिखा है, वह जलकर राख क्यों होने लगा? ब्रह्मपुत्र के किनारे रहने वालों को मछलियों की क्या कमी? ब्रह्मपुत्र पर नाव चलाते समय ब्रह्मपुत्र का पानी ही तो पीने को मिलेगा। अपने लम्बे अनुभव से मामुली यह भी समझ गई है, बप्पू से नहीं,

नाच तो मस्तिष्क से चलती है।

ब्रह्मपुत्र में गिरकर ही सब नदियों की मुक्ति है, पर मामुनी ब्रह्म सामने अनुभव से जान गई है, आदमी की मुक्ति ब्रह्मपुत्र में डूबने पर नहीं है। आदमी की मुक्ति तो ब्रह्मपुत्र के विशाल वक्ष स्थल पर तैरने में है।

जल के जिस शाप से धरती को बचाने का देवताओं ने यत्न किया था, आदमी ने उसे वरदान में बदलने का दृढ़-संकल्प कर लिया है। मामुनी यह जान गई है।

शायद 'गुरु जी' का मन उचाट हो, मामुनी के हृदय में जो आग धधक चुकी है, वह तो अब निद्रा में बदलने से रही। मामुनी की चेतना कभी अचेत नहीं हो सकती। कौन-सा शुभ मुहूर्त रहा होगा जब सर्वप्रथम मामुनी की अवचेतन देह में चेतना का संचार हुआ? 'गुरु जी' के मन में यह प्रश्न बार-बार उभरता है।

साधु, प्रभात और मुकुल इन दिनों में मामुनी में रहते हैं, वे 'गुरु जी' के यह शिष्य हैं, पुलिस से बचने के लिए उन्होंने भी और और नाम रख लिये हैं। गुरु शिष्य की परम्परा भी धन्य है। गुरु जी, प्रणाम! प्रत्येक शिष्य के ओठों पर यह बोल थिरक उठता है। माँ-बाप, भाई-बहन, पति पत्नी, सास-बहू—ये सब तो जीवन के रास्ते-घाट हैं। मामुनी सब जानती है। गुरु-शिष्य परम्परा को भी इन्हीं में से एक घाट समझ लो। गगन पर कबूतरों की पंक्ति देखकर मानो मामुनी भी अपने पंख पसारने लगती है। 'गुरु जी' सब समझते हैं। मामुनी उड़ भी सकती है, मामुनी में बड़ी शक्ति है—यह बात वह प्रत्येक शिष्य से कहते रहते हैं। सर्वप्रथम कब मामुनी का नामकरण हुआ था? बाँस की बाँसुरी से मिलता है मामुनी का स्वर। मामुनी की अपनी परम्परा है; इस परम्परा का एक अंश-मात्र है राजनीति, सब कुछ तो नहीं। बस यहीं 'गुरु जी' भूल कर जाते हैं कदाचित्। इसीलिए उनका मन यहाँ से उचाट हो चला है। मामुनी के गान में राजनीति का एकाकी स्वर ही कैसे स्थान पा सकता है? गान कभी एक ही स्वर से नहीं बनता, गान के तो कई रास्ते-घाट

होता है।

जैसे तुम्बी पर अँगुली से थाप देते हुए गाता है गायक, ऐसे ही गाती है मामुनी। गाते-गाते वह कई युग पार कर आई।

"मामुनी का भविष्य उज्ज्वल है, गुरु जी!"

"यह कहना अभी कठिन है।"

"यह संशय क्यों, गुरु जी?"

"मामुनी के कान कुछ-कुछ दूसरी ओर लगे हैं।"

लगता है, मामुनी हँस पड़ी, मानो कह रही हो, मेरा ध्यान तो तुम्हारी ओर भी है, गुरु जी! मामुनी मानो कहती है—ब्रह्मपुत्र का जल हाथ में लेकर ही मैं बता सकती हूँ, कितने मरोड़े की गति से जल बह रहा है।

मामुनी अपना परम कर्तव्य जानती है। मामुनी कृतसंकल्प है। जैसे चाँदी का रुपया हाथ में अथवा ज़मीन पर बजाकर इसकी झंकार से खरे-खोटे की पहचान की जाती है, ऐसे ही मामुनी भी अपने संकल्प की परीक्षा कर चुकी है। 'गुरु जी' की आवाज़ भी उस ने यही लक्ष्य रखकर सुनी। उस में नई स्फूर्ति आई, पर जीवन के अन्य सभी कर्तव्य भुलाकर 'गुरु जी' के एकाकी स्वर पर ही सारा ध्यान केन्द्रित कर दिया जाय, यह तो कठिन है।

"गुरु जी, आप खिन्न-से क्यों हैं आजकल?"

देवकान्त के मन पर अतुल, नीरद और राखाल के कार्य की छाप पड़ रही है। वह सहसा बोल उठता है, "चलो अतुल ने कुछ कार्य तो किया; पर इस प्रकार तो स्वतन्त्रता आने में सौ साल लग जायेंगे!"

सरसठ



इधर कुछ दिनों से गोपीनाथ दारोगा भी धनसिंह की दुकान पर आ बैठता है, और घंटों गपशप करता रहता है।

सब से पहले दिहिंगमुख स्कूल के अध्यापक अभिराम फूकन ने ही यह बात सुझाई, गोपीनाथ अब पहले जैसा जी-हुजूर नहीं रहा। रामलाल ने इस का समर्थन किया।

अतुल बोला, "यह दिलचस्पी!"

"तुम भी बूढ़ों के समान सोचने लगे, अतुल!" धनसिंह ने व्यंग्य कसा। फिर वह गम्भीर होकर बोला, "वातावरण आदमी को बदल सकता है।"

अभिराम फूकन के हाथ में 'समर-सम्वाद' था, जिस में मोटे अक्षरों में बम्बई की खबर छपी थी। "सवा लाख की खबर है!" उस ने आँखें नचाकर और धनसिंह की पैंट पर अँगुलियाँ बजाकर कहा, "पर गोपीनाथ के सामने मत कह देना यह बात। जैसे उस्तरा कैंची नहीं बन सकता, मैं कहता हूँ, चोर जी-हुजूर कभी देशभक्त नहीं बन सकता।"

"सवा लाख की तो यह बात है!" अतुल ने ज्ञान बघारा, "बम्बई की खबर तो यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते कुछ कमजोर पड़ सकती है, जैसे दूर पहुँचने पर लहर की गति धीमी होती जाती है।"

"पर इस लहर ने यहाँ पहुँचकर तेज होना चाहिए!" अभिराम फूकन

ने खबर-कागज पर नजर जमाते हुए कहा, "ताजा खबरों से कभी मुँह करवा हुआ है ?"

प्रसंग था 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव, जो कांग्रेस कार्यकारिणी ने बम्बई की एक सभा में पास कर दिया था। अब खबर-कागज में तो यह भी लिखा था, गांधीजी समेत बड़े-बड़े नेता पकड़ लिये गये।

अभी ये बातें हो ही रही थीं कि गोपीनाथ दारोगा दूर से आते दिखाई दिये। ये लोग सहम गये। धनसिंह ने कहा, "अब ऐसी-वैसी बात मुँह से न निकालें।"

"बैठिये, दारोगा जी!" अतुल ने बड़े प्रेम से कहा और उसने अन्दर भीतर से निकालकर एक कुरसी ला रखी।

"क्या समाचार है ?" गोपीनाथ ने मुस्कराया।

"अभिराम फुकन ने खबर-कागज गोपीनाथ की ओर बढ़ाते हुए कहा, "पढ़ लीजिए।'

गोपीनाथ ने खबर-कागज ले लिया, इस की मोटी सुर्खी पर एक उचटती सी नजर डाली, और उलझी-उलझी-सी आवाज में कहा, "देश का क्या बनेगा ?"

सब चुप हो गये एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। आज गोपीनाथ को सभी विशेष सन्देह की दृष्टि से देख रहे थे। फुटकर बातों का समय नहीं, यह सभी जानते थे। गोपीनाथ के एकाएक आ जाने से सभी को एक विचित्र-सा संकोच अनुभव हुआ। अन्य दिनों की तरह कोई भी मुँह में आई बात कहने की चेष्टा नहीं कर रहा था, जैसे सभी को छन्द-भंग का भय हो।

गोपीनाथ को यह समझते देर न लगी। उस का विचार था, पिछले कुछ दिनों के मेल मिलाप से लोग उसे जी-हुजूर समझने का भ्रम छोड़ते जा रहे हैं, पर उस का विचार गलत निकला। वह उठकर जाने को तैयार हुआ तो राजाराम ने हाथ पकड़कर कहा, "बैठो, दारोगा जी! हम से क्या नाराजगी ?"

गोपीनाथ जाने की ज़िद करता रहा। उस ने मौन लिया था, आज सब-कुछ पहले की तरह नहीं चल रहा। आश्चर्य! उस ने मन-ही-मन कहा और हाथ छुड़ाने लगा।

अब तो धनसिंह को भी कहना पड़ा, "दारोगा जी, बैठिये। चाय आ रही है। जाना ही हो, तो चाय पीकर जाइये।"

"मैं आप लोगों की आज़ादी में रोक नहीं बनूँगा।" गोपीनाथ बोला, "मैं जाऊँगा।"

अब तो अभिराम फूकन को भी उत्कर गोपीनाथ को रोकना पड़ा। दूसरी तरफ़ से मधुप ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "बैठो भी, दारोगा जी! मैं यह मानकर चलता हूँ कि अब सब-कुछ बदल रहा है, आप भी बदल सकते हैं।"

"आश्चर्य!" गोपीनाथ ने मन की बात मुँह पर लाते हुए कहा।

"बैठो, दारोगा जी!" धनसिंह बोला, "मेरी राय में तो कोई दोष नहीं। आप फिर भी हमारे दारोगा हैं।"

गोपीनाथ बैठ गया। अपेक्षाकृत स्वस्थ मस्तिष्क से सोचने पर उसे लगा, यदि मन में उत्कर चले जाने का विचार ही लाना था, तो फिर यहाँ आया ही क्यों था; ये सब तो अपने बन्धु-बान्धव हैं सात समुद्र और ढेरों नदियाँ पार से आने वाला फ़िरंगी तो बन्धु-बान्धव होने से रहा।

"ब्रह्मपुत्र में बहकर आती लकड़ी को घर लाने पर टैक्स नहीं लगना चाहिए।" गोपीनाथ ने कहा, "अब मेरी भी यही राय है।"

सब आश्चर्य से गोपीनाथ की ओर देखने लगे।

अड़सठ



नाव में एक ही सवारी थी। भारती ने तेज़ी से चप्पू चलाते हुए कहा, "चलो, किसी तरह मामुली में आपका काम तो समाप्त हुआ, गुरु जी!"

"यही समझ लो!"

भारती को लगा, 'गुरु जी' सम्बोधन में कहा पै-मेल है। मन को शान्त करने के लिए उस ने जेब से गुरु का लिफ़ाफ़ा निकाला और एक टुकड़ा बढ़ाते हुए कहा, "लेंगे, गुरु जी?"

"तुम खाओ। अपनी इच्छा नहीं इस समय।"

इस उत्तर में भी भारती को कोई अपनत्व न लगा, जैसे वह देवकान्त, जो उस का अपना था, जो उस के सपनों का राजा था, कोई और था, और यह 'गुरु जी' कोई और। पहली बात तो यह थी, 'गुरु जी' का सम्बोधन करते ही भारती को लगा, जो प्राप्त था वह भी अप्राप्त हो गया, हाथ से निकल गया। जैसे हाथ में आई थैली का मुँह बन्द हो और उसे खोलने की आज्ञा न हो। वह अनमनी-सी चप्पू चलाती रही।

'गुरु जी' कुछ सोचने लगते हैं। स्थिति को समझना चाहते हैं। इतने दिन मामुली में रहे 'गुरु जी' बनकर, अब दिशाँगमुख जा रहे हैं। स्वयं भारती लेने आई। कोई और भी आ सकता था, पर दिशाँगमुख वालों ने स्नेह की लाज रखी। स्नेह बड़ी वस्तु है। ढोल पीटकर स्नेह नहीं किया जाता। भारती मेरे मौन को अस्नेह की संज्ञा दे सकती

है। वह भले ही यह सोचे। अपने सामने तो अभी दूसरा काम है। दिसाँगमुख तो पहुँचें, वहाँ की स्थिति को समझें। देखें क्या होता है।

वह भारती की ओर देखने लगा। भारती के हाथ चप्पू चला रहे थे उस की आँखें गगन पर टिकी थीं, मानो वह उस विशाल पट पर किसी देवकान्त की मुख-छवि निहार रही है।

"तो यह सच है, गोपीनाथ हमारी तरफ आ गया!'

"ठवा सोलह आने सच है।"

ब्रह्मपुत्र की लहरें भी मानो चप्पू से टकराकर यही कह उठीं—सवा सोलह आने सच है!

"अतुल कैसा है!'

"अच्छा है।"

"रालास काका!"

"काका भी अच्छे हैं।"

"धमानन्दी काका!"

"अच्छे हैं।"

'अच्छे हैं' की रट भारती को बहुत अच्छी न लगी। सब की बात पूछ रहे हैं 'गुरु जी'। मैं सामने बैठी चप्पू चला रही हूँ। मेरी बात क्यों नहीं पूछते मुझ से! उसे लगा, 'गुरु जी' का काम तो कभी समाप्त ही नहीं होगा, कभी मामूली का काम, कभी दिसाँगमुख का; मेरे साथ बात करने का तो उन्हें अवकाश ही नहीं मिलेगा। यही सोचकर उस ने सिर को एक झटका दिया और बे-मन से चप्पू चलाने लगी। मैं न जानती थी, 'गुरु जी' का रंग-ढंग ही बदल गया। सब नीरस लगता है। देश सेवा की बात करते हैं आदमी चाहे प्यासी जमीन की तरह सूखा ही अनुभव करता रहे। 'गुरु जी' के सामने तो बड़े-बड़े काम हैं मुझ से यह क्यों बात करने लगे!

चाँदनी रात। ब्रह्मपुत्र में नाव-यात्रा। गगन पर मेघ छा रहे हैं। कभी

चाँद बाहर निकल आता है, कभी मेघ उसे ढाँप लेता है। चाँदनी हो चाहे गहन अन्धकार, क्या अन्तर पड़ता है? भारती सोच रही है—मेरे जिम्मे एक काम सौंपा गया। मैं यह काम कर रही हूँ। 'गुरु जी' पर तो कोई अहसान नहीं। ध्रुवतारा सब जानती है, देख-सेवा करने वाले लोग को क्या जानें?

"मनसिंह कैसा है?"

"अच्छा है।"

"रत्न?"

"अच्छा।"

"नीरव?"

"अच्छा है।" कहते-कहते भारती को लगा, नीरव बाबू तो बड़े लोग हैं, उन के लिए तो 'अच्छे हैं' कहना उचित होगा। फिर वह सोचने लगी। अब इस आदमी को ही लो। 'गुरु जी' बन गया। कैसे पूछूँ—कौन-सी मछली खाने में अच्छी लगती है? अरे मैं तो मछुवे की बेटी हूँ। आदमी से अधिक मछली को ही जानती हूँ। हर मछली का रंग-रूप और स्वभाव जानती हूँ। किस का कैसा स्वाद है, यह भी जानती हूँ। एक प्रकार से देखूँ, तो मैं ने भूल की, जो अब तक कुँवारी बैठी रही। 'गुरु जी' के मन में शायद मेरी कोई छवि ही न हो। होती तो मुझ से कुछ तो कहते। पर पहले तो ऐसे नहीं थे 'गुरु जी'।

आशा-आशंका, उद्वेग-उत्कण्ठा में डूबती-तैरती वह चप्पू चलाये जा रही है। वह, क्षण को जानती है—क्षण, जो बीत गया या फिर आज, जो बीत रहा है। आगामी क्षण के बारे में उसे अधिक चिन्ता नहीं।

'गुरु जी' के सामने अपनी बात कैसे बताऊँ? मामूली सा काम समाप्त हुआ, तो विसौंगमुख का काम आरम्भ हो जायगा। हर समय क्या काम की बात ही सोची जाती है? सोचा था, इस आदमी के साथ घरनी बनकर रहूँगी। पर इस का तो काम ही समाप्त होने में नहीं आता। मेरे साथ की पाँच-पाँच बच्चों की माताएँ बन गईं, मैं ही एक

गई। वे मुझ पर हँसती हैं, मुझे निपट मूर्ख समझती हैं। मेरी सुविधा असुविधा की 'गुरु जी' को क्या चिन्ता ! सारा मसाएद क्यों न बदल जाय, इन्हें मेरी चिन्ता नहीं होगी। अधिक-से अधिक दस-बारह वर्ष ऊपर हो गये, या थोड़ा और भी बढ़ गयी न ! मैं तो आज भी किसी षोडशी से कम नहीं हूँ उस जैसी निर्बुद्धि भले ही नहीं रही। भला-बुरा परख सकती हूँ थोड़ा सोचना भी आ गया है। ब्रह्मपुत्र का रंग देखकर कह सकती हूँ, बाढ़ कितनी दूरी पर आ रही है। मछलियाँ किस जगह अधिक मिलती हैं, कहाँ जाल फेंकने से ठीक होगा—यही समझते-बूझते आयु बीत गई। फिर भी मैं कहती हूँ, 'गुरु जी' चाहें तो मैं अनुगामिनी बन जाऊँ—एकदम सती सावित्री, पर वह ऐसा चाहें, तब न।"

स्नेहातुर आरती कुछ कह भी तो नहीं सकती। अब वह षोडशी नहीं है, अब तो भला-बुरा पहचानती है। क्या उचित है और क्या अनुचित है, वह खूब समझती है। अन्ट-शन्ट कैसे बोल दे अपने मन की बात ! युक्ति-तर्क से तोलना होगा संसार उपहास न करे, वही काम करना होगा। आरती का ऐसा-वैसा मन नहीं है। मन पर पूरा अधिकार है। खुशामद से कुछ मिला, तो सर्वनाश। बड़ा शिकारी !" इस वर्ष पूर्व तो यह 'बड़ा शिकारी !' उस के होठों पर नहीं आया था।

थोड़ा समय बीत गया, थोड़ा और बीत जायगा। जैसे समय भी एक बहुत बड़ा जाल है, जो किसी मछुवे ने मछलियाँ पकड़ने के लिए डाल रखा है। आरती को लगता है, वह भी एक मछली है। यह जाल उसे पकड़ कर रहेगा। जाल ब्रह्मपुत्र से बाहर निकलेगा, तो वह उस जाल में फँस चुकी होगी बचना सहज नहीं।—वह फिर सोचने लगती है—कदम्ब-ज्ञान का उदय तो ठीक है, बुरा नहीं। थोड़ा बीत गया, थोड़ा और बीत जायगा। क्या यह सब किसी नाटक का सुन्दर अथवा असुन्दर दृश्य मात्र है ! सब अभिनय है ! माजुली का काम विस्मैंगमुख का काम और फिर शिवसागर, डिब्रूगढ़ और गोहाटी का काम ! सब अभिनय है ! मैं ने तो सोचा था, स्नेह

ही मूलधन है। स्नेह क्या पर्याप्त नहीं ? स्नेह क्या स्वतन्त्र-सम्पूर्ण नहीं ? 'गुरु जी' मुख से बात तो करें, स्नेह का स्वर छेड़ें तो सही, बाँस की बाँसुरी में निश्चय ही गान जन्म लेगा। 'गुरु जी' कुछ कहें तो सही, मैं उन के वचन को वेद-वाक्य समझूँगी। पर 'गुरु जी' पर तो कार्य का दबाव है हर समय कार्य, कार्य, कार्य !' हमारी नाव ब्रह्मपुत्र में जा रही है। यह क्या कार्य नहीं ? ब्रह्मपुत्र किस की साक्षी दे रहा है ? ब्रह्मपुत्र क्या कार्य नहीं कर रहा ? तिब्बत की मानसरोवर झील से निकलने पर तो बहुत छोटा-सा रहा होगा। इसे इतना बड़ा किस ने बनाया ?—कार्य ने। यह काम क्या अकेले ब्रह्मपुत्र ने किया ? रास्ते में कितनी ही नदियाँ ब्रह्मपुत्र में मिलती रहीं और ब्रह्मपुत्र विशाल बनता गया। नदियों का मिलन क्या व्यर्थ है ? नारी और पुरुष के मिलन में क्या इतनी भी सार्थकता नहीं ? 'गुरु जी' तो टस-से-मस नहीं होते।

"क्या सोच रही हो, भारती ?"

"कुछ नहीं।"

"कल जब मधुल ने भरी सभा में कहा, देवकान्त को तो भारती ही ला सकती है, तो लाज के कारण मेरी पलकें झुक गई थीं। मैं क्या जानती थी, मेरे जिस प्रेम का सारे दिसाँगमुख ने सम्मान किया, और यह आदमी जो मेरे प्रेम का आधार है, मेरी अवहेलना करेगा। यह विचार आते ही भारती ने गहरा निश्वास लिया; आँखें ऊपर उठा उस ने ध्यान-मग्न देवकान्त को देखा। फिर मन की बात मन की तहों में समेटकर वह ज़ोर-ज़ोर से चप्पू चलाने लगी।

रात आधी से ऊपर जा चुकी थी, जब नाव दिसाँगमुख घाट पर जाकर लगी।

उनहत्तर



यह रात देवकान्त ने धनानन्दी की झोंपड़ी में ही बिताई। उषा से पहले ही उठकर नाव पर बनी इस झोंपड़ी की खिड़की में वह दोनों कुहनियाँ टेककर खड़ा हो गया।

वह ब्रह्मपुत्र का प्रवाह देखता रहा। कभी कभी पीछे मुड़कर वह चटाई पर सोती भारती को देख लेता।

धनानन्दी ने सवेरे ही गरम चाय बनाकर उसे पिला दी थी और स्वयं ब्रह्मपुत्र के किनारे जाल फैलाकर इसकी मरम्मत करने बैठ गया था।

वह धनानन्दी के पास जाकर खड़ा हो गया, और बोला, "बहुत पुराना हो गया तुम्हारा जाल, काका!"

"नया जाल कहाँ से लाऊँगा?" धनानन्दी ने खाँसकर कहा, "मरम्मत करते-करते मेरे हाथ रह गये।"

फिर वापस आकर देवकान्त खिड़की से ब्रह्मपुत्र का रूप देखते सोचने लगा—यह सुदूर तिब्बत से आता है और अठारह सौ मील की यात्रा करके समुद्र तक पहुँचता है।

उसे बतख की आवाज़ सुनाई दी, यह अवश्य छोटी बतख की आवाज़ थी। उस ने ऊपर जाकर देखा। वर्षा से बचाव के लिए बतख के ऊपर दरबे के समान फूस का छप्पर डाल दिया गया था।

बच्चे की आवाज़ सुनकर भारती भी जाग उठी। वह लपककर बच्चे के पास चली गई। देवकान्त मुस्कराया। भारती से एक चूज़ा निकल आया था। भारती लजा गई। कोई और समय होता तो वह बच्चे के मुख पर प्यार से हाथ फेरती और चूज़े को उठाकर छाती से लगा लेती।

नीचे से बापू की आवाज़ आई, "देखो कौन आये हैं।"

देवकान्त और भारती लपक कर नीचे आ गये। राजलाल, नीलमणि, अतुल, नीरद और धनसिंह—सभी बारी-बारी देवकान्त से गले लगकर मिले।

"मैं अब गोपीनाथ से मिलने जाऊँगा।' देवकान्त ने निश्चयपूर्वक कहा।

"तुम मत जाओ।" भारती ने अपना कर्तव्य पहचानते हुए सलाह दी, "अतुल जाकर यह समाचार दे सकता है।"

"तुम डरती हो, कहीं गोपीनाथ उसे पकड़ न ले!" अतुल हँस पड़ा, "हम ऐसा नहीं होने देंगे।"

इतने में दूर से गोपीनाथ भी इधर आता दिखाई दिया।

वह भी आकर देवकान्त से लिपट गया। देवकान्त हँसकर बोला, "अब भी चाहो तो मुझे गिरफ्तार करके इनाम पा सकते हो।"

"मुझे नहीं चाहिए ऐसा इनाम!" गोपीनाथ ने गम्भीर होकर कहा, "तुम स्वयं मेरा इनाम हो।' यह कहते-कहते वह रुक गया, और देवकान्त की ओर देखने लगा, फिर सँभलकर बोला, "तुम मेरे घर चलो।"

भारती डर रही थी, मानो गोपीनाथ चालाकी से देवकान्त को ले जाकर गिरफ्तार करने की सोच रहा हो।

ब्रह्मपुत्र के किनारे सभा का दृश्य नज़र आने लगा। बहुत से नावरिया, मछुवे और किसान देखते-देखते जमा हो गये। गोपीनाथ ने सब को समझाया, "नीति से काम लेना ठीक होगा। अभी यह दवा

बाहर नहीं निकलनी चाहिए कि देवकान्त दिसाँगमुख में है। बाकी मैं सँभाल लूँगा।"

"ऐसा ही होगा।" अतुल ने सब की ओर से कहा।

"अच्छा तो अब मैं चलता हूँ।" गोपीनाथ ने कहा, "नौकरी का मामला है।"

देवकान्त की माँ स्वयं चलकर बेटे से मिलने आई। उस ने यह शिकायत न की कि वह रात को ही घर क्यों नहीं चला आया था। इस समय भी उस ने यह आग्रह न किया कि वह घर चले। स्थिति ही ऐसी थी। उस ने तीन बार देवकान्त को गले लगाया तीनों बार माँ का प्यार आँसू बनकर टपक पड़ा।

लोग बड़ी घनिष्ठता से देवकान्त को देख रहे थे। इस भीड़-भड़क्के में आरती को लगा, उस का देवकान्त उस से छिन गया।

एक-एक करके सब चले गये, और केवल अतुल ही खड़ा रह गया, आरती हँसकर बोली, "ऊपर चलो मेंगरकी में, तुम्हें नया बच्चा शिशु दिखायें।"

"किस का शिशु? कैसा शिशु?" अतुल हँस पड़ा, "अच्छा चलो। देखेंगे।"

मचान से आकर आरती ने बतख का चूजा उठाकर दिखाया। छोटी छोटी आँखें, कोमल देह, बड़ा ही सुकुमार चूजा था।

चाय बनाकर आरती ने एक-एक गिलास देवकान्त और अतुल के सामने रख दिया। बोली, "भद्र लोक जैसी चाय पीते हैं, वैसी नहीं है, फिर भी ग्रहण करें।"

"अवश्य!" अतुल बोला, "उठाओ चाय का गिलास, देवकान्त! लगाओ मुँह से, चाहे होंठ जल जायें।"

दोनों के होंठ जल गये। चाय बहुत गरम थी। आरती खाना पकाने बैठ गई।

"मैं तो मछली नहीं खाता।" अतुल ने गम्भीर होकर कहा, "हमारे

'गुरु जी' से भी पूछ लो। शायद वह भी वैष्णव धर्मों के समान ही निरामिष भोजन पसन्द करें।"

"मछुवे के घर में निरामिष भोजन!" भारती हँस पड़ी, "अच्छा बाबा! 'गुरु जी' के आगमन की ख़ुशी में आज हम सभी निरामिष भोजन करेंगे।"

भोजन के पश्चात् अतुल और देवकान्त खेतों की ओर चल दिये, जहाँ धान के सुनहले पौधे कटने को तैयार खड़े थे।

"भारी वर्षा के कारण फ़सल नहीं काटी जा सकी।" अतुल बोला, "नहीं तो अब तक तो कम्बर घर आ जाता है धान। अब यही सोच रहे हैं, जो पाँच-दस बार वर्षा और होती है हो ले फिर थोड़ी धूप पड़ जाय तो फ़सल काटेंगे।"

देवकान्त अनमना-सा धान के खेतों की ओर देख रहा था।

"मैं तो किसान का बेटा हूँ।" अतुल कहता चला गया, "इस प्रकार की भारी कमी-कभी सोते में भी मेरा पीछा करती है, पर तुम्हें शायद मेरी बात पर विश्वास नहीं होगा, देवकान्त!"

"कैसे नहीं होगा विश्वास?"

"यही पठार हमारी जायदाद है। चखार में धान हो, फिर कुछ नहीं चाहिए। गाय दूध देती रहे। केले के पेड़ फलते रहें। ताम्बूल पान की भी कमी न रहे। फिर कुछ नहीं चाहिए।" कहते-कहते अतुल रुक गया और देवकान्त की ओर देखने लगा।

देवकान्त ने कुछ उत्तर न दिया।

"रेशम के कीड़े रेशम तैयार करते रहें हमारे लिए!" अतुल ने फिर कहना आरम्भ किया, "हमारे करघे चलते रहें एण्डी और मूगा के थान बुनती रहें हमारी कन्याएँ। और क्या! तुम्हीं बताओ और क्या?"

"और क्या?" देवकान्त ने स्तम्भित-सा होकर कहा, "तुम कहोगे, मछलियाँ फैलती रहें। पर नहीं, हम फ़ैसला कर चुके हैं। वह मछुवा, जो सात समुद्र और तेरह नदियाँ पार करके ब्रह्मपुत्र में जाल डालने

आया, उसे अब यहाँ से जाना होगा।"

दोनों मित्र एक-दूसरे को देखने लगे। मह्नुवे का प्रतीक आज सचमुच नये ही अर्थ में उछाला गया था। वे धीरे धीरे चले जा रहे थे बहुत कुछ सोचते हुए, किसी एक बिन्दु पर अँगुली रखने को उत्सुक।

"जब रिमझिम पानी बरसता है, तो धान के पौधे किस प्रकार लहलहाने लगते हैं।" अतुल कहता चला गया, "मेरी आयु तो धान उगाते बीती मैं तो न रामलाल काका की तरह हाथियों को जानता हूँ, न धमानन्दी काका की तरह मछलियों से ही मेरा अधिक परिचय हुआ। मैं तो इस पठार की माटी में जन्मा, जो सपनों में भी मेरा पीछा करती है। यह पठार कितना विशाल है। दूर, बहुत दूर, जहाँ गगन-रेखा पठार से मिलती है, वहाँ तक चला गया है यह हमारा पठार। तुम्हारी और नीरद बाबू की तरह मैं ने पदार्थ-विद्याएँ नहीं पढ़ीं। हल चलाता हूँ, बीज बोता हूँ, और फ़सल काटता हूँ।" कहते-कहते रुककर वह देवकान्त की ओर देखने लगा।

"कल का क्या कार्यक्रम है?" देवकान्त ने अतुल की भावावेशमयी भाषा को एकदम अनसुना कर दिया।

"यह तो तुम बताओगे। विचार करना होगा।" अतुल ने सहज भाव से कहा।

और वे जल्दी-जल्दी कदम उठाने लगे।

सत्तर



गोपीनाथ बारदोलाई से एक भूल हुई। अच्छा होता कि साधन मीरी को बुलाकर समझा दिया होता उसे अपनी ओर मिलाने की विशेष चेष्टा करने की गोपीनाथ ने कोई आवश्यकता न समझी।

साधन मीरी जब शिवसागर जाने लगा, तो उस के घर वालों ने उसे रोका, क्योंकि वे समझ गये े कि दाल में कुछ काला है। साधन ने घर से चलते हुए कहा, 'मुझे कोई लालची भले ही समझे, धोखा-चतुर ठग भी हो सकता हूँ, पापी और चार सौ बीस भी हूँ किसी सीमा तक, पर मैं देशद्रोही बिलकुल नहीं हूँ।'

घर वालों ने समझा वह ठीक कहता होगा, और किसी दूसरे काम से शिवसागर जा रहा होगा।

इधर कुछ दिनों से शिवसागर से डिब्रूगढ़ तक बस चलने लगी थी। वह बस में जा बैठा और सोचने लगा—बस चलने में अभी देर है, न जाने कब तक भरेगी पूरी बस। वह चाहता था कि उड़कर शिवसागर जा पहुँचे, और गोपीनाथ को मज़ा चखा दे। "यह तो देशद्रोह नहीं!" उस ने मन-ही-मन कहा, "ठीक समय पर बुद्धि से काम लेने को कोई देशद्रोह कहता है तो कहता रहे, मैं क्या करूँ!" फिर उसे ध्यान आया—जब मोटर चलेगी, तो धूल उड़ेगी ही; दोनों ओर की दुकानों पर बैठे दुकानदार धूल से बचने के लिए मुँह पर रूमाल डालते हुए

मन ही-मन बस के ड्राइवर और कण्डक्टर तक को मोटी-सी गाली दे डालेंगे। देखना तो यह है कि यह आराम देने वाली चीज़ है या नहीं !" इसी बीच चार-पाँच सवारियाँ आ बैठी थीं।

इतने में अन्धे सूरदास ने आकर गाना शुरू किया

सुनोर देशोर माटि श्रोर सुनोर देशोर माटि

ए माटि ते पराने मोर लठाऊँ दिने राति[1]

सूरदास एकतारे पर गा रहा था। यह उसका प्रिय गान था। सहस्र बार गाया हुआ गान। उस के इस गान का बहुत मूल्य पड़ता रहा था। आज भी उसकी मुट्ठी पैसों से भरने लगी।

लाचन की जेब से पैसा निकलकर बाहर न आया, सूरदास की मुट्ठी में आना तो दूर रहा। उसे याद था कि पहले उसे भी यह गान अच्छा लगता था और सूरदास की मुट्ठी में उसकी गाँठ का पैसा भी कई बार चला गया था। आज उस ने सूरदास को घृणापूर्वक देखा—इस की और कोई मायी नहीं। इस के लिए यही भीख माँगना रह गया है। जब देखो भीख माँगता रहता है।

वह सोचने लगा—इस से अच्छा तो सूरदास का वह गान है जिस में कहा गया है—गगन पर राजहंसों का एक जोड़ा उड़ गया। वह गान भी बुरा नहीं जिस में कहा गया है—ब्रह्मपुत्र के किनारे रेत पर कछुवी गिन-गिनकर अण्डे दे रही है। उस के जी में आया कि सूरदास से वह गान सुनाने को कहे, जिस में कोई प्रेमी मुग्धा प्रेयसी का हाथ अपने हाथ में लिये हुए दिसाँग नदी के बीच से होता हुआ उस पार चला जाता है। "प्रेम का मारा जो भी कर डाले थोड़ा है !" उस ने मन ही-मन कहा, "पर इसी प्रकार दो प्रेमी हाथ-में-हाथ लिये हुए ब्रह्मपुत्र के उस पार मामुली में तो पहुँचने से रहे। मामुली की यात्रा तो नाव में ही हो सकती है। एकाएक उसे भारती का ध्यान आया, जो अपनी नाव

---

१ सोने की है इस देश की मट्टी, सोने की इस देश की मट्टी। इस मट्टी में लोट रहा है मेरा प्राण दिन-रात।

में हेमकान्त को मामूली से खेती आई थी। "मैं सब को मजा चखाऊँगा!" उस ने मन-ही-मन कहा।

अब सूरदास अपने एकतारे पर दूसरा गान गा रहा था

देशोते लागिले जुइ ओ बान्धोई,
देशोते लागिले जुई।
तेल ना पायो लोई,
लोन ना खायो लोई,
कानि नाइ खाबो लोई गात![1]

साधन ने देखा, सूरदास की मुट्ठी पैसों से भर गई। उस की अपनी जेब से एक भी पैसा न निकला। इस गान में फिरंगी राज को कोसा जा रहा था।

किसी ने कहा, "सूरदास बाबा, बरम का गान सुनाओ न आज!"

और सूरदास नाच-नाचकर, और बीच-बीच में सिसकियाँ भरने तथा वेदना के पोखर में डूबने की भंगिमा का प्रदर्शन करते हुए एक सफल लोक-गायक के समान गाने लगा।

साधन अपनी सीट पर बैठे-बैठे उन दिनों की बात सोचने लगा, जब असम देश के एक कुपुत्र ने अपने देश के राजा से प्रतिशोध लेने के लिए बर्मियों को आमन्त्रित किया था। एक चलचित्र के समान इतिहास का वह रक्त-रंजित पृष्ठ उस की कल्पना में घूम गया। किस प्रकार बर्मी सेना आगे बढ़ी और पहले असम देश को अपने पैरों तले कुचला, किस प्रकार निहत्थों को मौत के घाट उतारा और फिर किस प्रकार फिरंगी की सेना का सामना करना पड़ा; बर्मी हार गये, और उन की हार के पश्चात् असम देश भी फिरंगी का गुलाम बनने पर विवश हुआ। उस के जी में तो आया कि अभी बस से नीचे उतर जाय, क्योंकि वह आज दूसरा

---

१ देश में आग लग गई ओ बन्धु, देश में आग लग गई। मलने को तेल नहीं मिलता खाने को नमक नहीं मिलता गात ढाँपने को वस्त्र नहीं मिलता।

बदन नहीं बनना चाहता था। पर अगले ही क्षण पाप का पलड़ा भारी होने लगा, और वह चुपचाप बैठा रहा।

सूरदास ने बदन का गान दुबारा आरम्भ किया

बदन तयि आमिली मान, ओ बदन तयि आनिली मान
पने देश अपना भाई रे कुकुत, सेसेर हानिली हान
पुमारिर ि.शिर पेथेर पुमालि, गरुड पोह कासिली लारा
बाधि रे हाशिलि आपोरि हुमाली, समाव बोई पुरिली पुदा
बरनाइ रंगा बोई तबोर सोव पुमालि, देश तल नियालि मान
गरु रे देवे रे प्रतिमा पुमालि, पुमालि गोसाई रे थान
जनमे जनमे जगते शाकि, पापि कुने काले नाम।[1]

गान समाप्त हुआ, तो बस चल पड़ी। वह द्रुत गति से चली जा रही थी। पूरी सवारियाँ शिवसागर की ही थीं।

शिवसागर में बस से उतरकर भी शामन के जी में एक बार यह विचार आया, उसे हर्गिज़ दूसरा बदन नहीं बनना चाहिए पर पाप की प्रेरणा पुण्य की प्रेरणा पर विजयी हुई, और वह पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट के बँगले की ओर चल पड़ा।

---

१ बदन, तुम ने बर्मा-वासियों को आमन्त्रित किया, ओ रे बदन तुम ने बर्मा-वासियों को आमन्त्रित किया। ऐसी स्थिति माँ के कलेजे में तुम ने पत्थर बोल दी। उन्होंने गर्भवती नारियों के पेट चीर डाले, शिशुओं की बलि दे दी। युवतियों को बलात्कार उठाकर पर, आकाश-पाद को कसा लटकाकर नीचे से आग जला दी। बराई की जलधारा रक्त से लाल हो गई देश में बर्मियों को आमन्त्रित किया। गढ़ के रक्षक देव-प्रतिमाओं को तुड़वाया, उसी से देव-स्थानों को तुड़वाया। जन्म जन्मान्तर तक देश तुम्हें अभिशाप देता रहेगा किस काल में निश्चय तुम्हें मरना!

ज़रा सँभलकर वह सोचने लगा—शायद कुछ भी नहीं होगा। शायद वह स्पेशल अफ़सर ही आकर समझा देगा, देवकान्त के दिसाँगमुख में होने की अफ़वाह ग़लत है।

उसे याद आ रहा था नीरद ने अपनी पुस्तक में लिखा था: जहाँ अब हिमालय पर्वत खड़ा है, वहाँ आज से लाखों करोड़ों वर्ष पूर्व कभी अनन्त पारावार ठाठें मारता था अभी उस समय तक आदमी नहीं जन्मा था। नीरद ने बड़े-बड़े वैज्ञानिकों के अनुमान जुटाते हुए यह वक्तव्य दिया था कि उस युग में उत्तर से जो पछुआनी आँधी आती थी उस के कारण यह असम्भव था कि किसी प्राणी का जन्म हो सके। कैसा था वह अतीत, वह अज्ञात युग, जब भूकम्प आया और धरती की काया में आमूल परिवर्तन हो गये जल के स्थान पर थल हो गया, थल के स्थान पर जल और सभी प्रकृति के माया-चक्र ने कुछ ऐसा रूप भरा कि यहाँ की धरती ऊपर उठती चली गई और हिमालय को जन्म देकर ही रुकी। महाकवि कालिदास का उल्लेख करते हुए नीरद ने लिखा था: दोनों ओर सागर में डुबोये हिमालय पृथ्वी नापने वाले मापदण्ड के सदृश स्थित है। इस के इसी प्राचीन महिमामय रूप को लक्ष्य करके ही तो इसे देवात्मा कहा गया था। गोपीनाथ ने सोचा, अब मज़ा तो तब है कि हम मनुष्य भी देवात्मा बनें, और हो सके तो देश-प्रेम को नापने वाले मापदण्ड बनकर दिखायें। उस की कल्पना में नीरद द्वारा अंकित मानसरोवर का चित्र उभरा। कैलाश का रंजित शिखर किस प्रकार मान सरोवर के नील और पीत कमलों से सजे दर्पण पर प्रतिबिम्बित होता था, यह पढ़ते-पढ़ते उस के जी में आया था, एक बार लम्बी छुट्टी लेकर तिब्बत की यात्रा की जाय। नीरद से पूछ-पूछकर उस ने सब मालूम कर रखा था कि कालिम्पोंग की ओर से तिब्बत कितने दिन में पहुँचा जा सकता है, और रास्ते के लिए क्या-क्या सामान साथ रखना होगा। मानो ब्रह्मपुत्र कह रहा था—हिमालय न होता तो उत्तर की ओर से आने वाली पछुआनी आँधी भी कब रुक पाती हिमालय न होता तो

इस देश में मानसून हवाएँ भी सागर से उठकर कैसे उस से टकरातीं, कैसे साल-के-साल नियमित धरा ऋतु का कार्यक्रम चल सकता ? क्या मजाल कभी नागा हो जाय; मानसून हवाएँ सीधी सागर से उठकर ठीक ऋतु में हिमालय से टकराती हैं, और मूसलाधार वर्षा आरम्भ हो जाती है। गोपीनाथ सोचने लगा—यह कहना तो गलत है कि प्रकृति एक अन्धी शक्ति है। जब प्रकृति के नियम इतने सच्चे और खरे हैं, तो आदमी भी सच्चा और खरा क्यों न बने ? असम देश की यह माटी इसी ब्रह्मपुत्र की देन है। यह पठार बनने में लाखों वर्ष लगे होंगे। अब भी ब्रह्मपुत्र अपनी बाढ़ के साथ बहाकर लाई हुई माटी से इस पठार को उपजाऊ बनाये रखने का दायित्व बराबर निभा रहा है। फिर आदमी का क्या कोई दायित्व नहीं है ? उसे लगा कि ब्रह्मपुत्र कह रहा है—मैं ने अपना मार्ग स्वयं चुना, विशालकाय चट्टानों को फलाँगता, उच्च शिखर प्रान्तों की सृष्टि करता, प्रत्येक विघ्न-बाधा को तिनके के समान फूँक मारकर उड़ाता, मैं कहाँ-से-कहाँ आ पहुँचा; और अभी तो रास्ता बहुत लम्बा है। उसे यह भी याद था कि नीरद ने अपनी पुस्तक में ब्रह्मपुत्र और पद्मा के संगम का चित्र प्रस्तुत करते हुए किसी अन्य लेखक के हवाले से लिखा था : जिस प्रकार विजयी सेना लम्बी लड़ी बिखर जाती है और विजय से विभोर सैनिक इधर उधर घूमते हैं, गोयालन्दो के समीप जहाँ ब्रह्मपुत्र और पद्मा का संगम है, अनेक नदियाँ अनेक मुख बनाकर सागर में गिरती हैं। "तो क्या आदमी सारी आयु फिरंगी की गुलामी ही करता रहेगा ? मैं हर्गिज देवकान्त को पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट के हवाले नहीं करूँगा।

सारी रात रतजगे में बीती। सवेरे-सवेरे गोपीनाथ थाने में पहुँचा, जहाँ अतुल, नीरद, रतलाल और अभिराम फुकन उस से आकर मिले। नीरद ने फिर यह सुझाव रखा, देवकान्त दोबारा मामूली चलता जाय।

"आप लोग निश्चिन्त होकर जायें। कुछ नहीं होगा। डरने का

कोई कारण नहीं।" गोपीनाथ ने निश्चयपूर्वक कहा।

× × ×

यथापूर्व प्रात हाट-बाजार लगा। दिन-भर आराम से गुजर गया। हथियारबन्द सिपाही हाट-बाजार में पहरा दे रहे थे। संकट की पूर्वछाया-सी नजर आ रही थी। जहाँ देवकान्त को छिपाया गया था, वह स्थान धनसिंह की दुकान के पास ही था। गोपीनाथ ने देवकान्त की सुरक्षा के लिए पूरा प्रबन्ध कर दिया था। 'गुरु जी' के वेष में होते हुए भी देवकान्त पूरी तरह हथियारबन्द था।

अतुल ने धनसिंह को पुकारकर कहा, "यह कैसा शोर है, दादा?"

लोग भाग-भागकर इधर को आने लगे।

"लगता है मिलिट्री आ पहुँची।" अतुल ने घबराकर कहा।

मामूली से ही नहीं, आस-पास के थानों से भी कुछ सिपाही भाग कर यहाँ आ गये थे सवेरे-सवेरे। रत्न ने कहा, "गोपीनाथ होशियार आदमी है। यह रण उसी के हाथ रहेगा।"

धनसिंह ने कहा, "शायद हमारा अस्त आ गया।"

"गोपीनाथ ने मोरचा बना रखा है।" रत्न बोला, "डरते क्यों हो?"

गोलियाँ चलने की आवाजें आने लगीं। 'गुरु जी' बाहर आ गये।

बाहर से आते हुए लोग नाव-घाट की ओर भाग रहे थे। गोलियाँ चलने की आवाजें समीप आती गईं।

'गुरु जी' बोले, "हमारे लिए तो धनसिंह की दुकान ही मोरचा बनेगी।"

"जो इच्छा, 'गुरु जी'!"

गोलियां के धमाके कानों के पर्दे हिला रहे थे। फिर किसी ने आकर कहा, "गोपीनाथ मारा गया!"

'गुरु जी' ने पिस्तौल में कारतूस भरते हुए कहा, "वह वीर गति को प्राप्त हुआ। हम पीछे रह गये!"

बहत्तर



एक साथी ने दूसरे साथी को अपनी पीठ पर उठा रखा था। नीचे वाले की दाईं भुजा में गोली लगी थी भुजा को कसकर बाँध लिया था। ऊपर वाले की दोनों टाँगों में गोलियाँ लगी थीं। नीचे वाले की भुजा से उतना रक्त नहीं निकलता था, जितना ऊपर वाले की टाँगों से।

मौसम बहुत खराब था। वर्षा हो रही थी। फिर भी बार-बार फिसलता, गिरता-पड़ता, नीचे वाला साथी ऊपर वाले साथी को लिये चला जा रहा था। पर रणभूमि से पीठ दिखाकर भागने वाली बात न थी। जीवन को बचाकर रखने का प्रयत्न था। नीचे वाले की साँस फूलने लगती, तो वह रुक जाता। ऊपर वाले को कोई होश न था। पीछे से गोलियाँ चलने की आवाजें आ रही थीं।

अभी आध-मार्ग तक पहुँचा था। एक स्थान पर रुककर नीचे वाले ने ऊपर वाले को नीचे लिटा दिया। ऊपर वाले ने आँखें न खोलीं। सीने पर हाथ रखकर देखा। मुख पर हाथ फेरा। नीचे वाला फिर से उसे उठाकर चलने लगा। साथी को बचा सका, तो मैं अपना सौभाग्य समझूँगा।—उस ने मन-ही-मन कहा।

ऊपर वाले को होश आ रहा था। "मैं कहाँ हूँ?" उसकी आवाज आई।

"चुप रहो।" नीचे वाले ने कहा, "चुप रहना ही अच्छा है। बोलने

से शक्ति मरती है।"

वर्षा उन्हें निरन्तर भिगो रही थी। नीचे वालों को ऊपर वालों पर क्रोध आ रहा था—देवकान्त कैसे गोपीनाथ की बातों में आ गया! स्वयं भी गोपीनाथ ने जान से हाथ धोये! जो काम सारा बिसोंमुल मिलकर ही कर सकता था, वह अकेला गोपीनाथ और वह भी थोड़ी-सी बन्दूकों से कैसे कर सकता था!

रास्ते में कई जगह घुटनों तक पानी में गुजरना पड़ा। प्रफुल ने सोच रखा था, देवकान्त को धर्मानन्दी की झोंपड़ी में पहुँचाकर ही दम लेगा।

धर्मानन्दी झोंपड़ी में न था। वहाँ आरती ही मिली। देवकान्त को घायल देखकर वह घबरा गई। उस ने सँभलकर तुरन्त देवकान्त के कपड़े बदलवाये। फिर बोली, "प्रफुल, तुम भी बापू के वस्त्र उठाकर पहन सकते हो।"

लालटेन के प्रकाश में देवकान्त के मुख पर मुस्कान दौड़ गई। खिड़की बन्द कर दी गई थी।

प्रफुल बहुत थक गया था। उसकी आँख लग गई।

आरती देवकान्त पर झुक गई।

देवकान्त की तबियत अच्छी न थी, वह ठीक से बोल नहीं सकता था।

आरती समझ गई कि देवकान्त का बचना तो कठिन है। फिर भी उस ने आग जलाई चाय के लिए पानी रखा।

"मुझे ब्रह्मपुत्र को—" कहते-कहते देवकान्त रुक गया।

आरती दौड़कर आई। पर देवकान्त केवल अपना वाक्य ही पूरा कर पाया, "सौंप आना!"

प्रफुल खर्राटे भर रहा था। बाहर से वर्षा की आवाज आ रही थी, जिस में ब्रह्मपुत्र की आवाज दब गई थी।

देवकान्त में बोलने की शक्ति न थी। आरती ने मुश्किल से चाय

की दो-चार बूँदें उस के मुँह में टपकाईं, और वह उस के सिर पर हाथ फेरती हुई बोली, "हम इकट्ठे मछलियाँ पकड़ने जाया करेंगे !"

देवकान्त के होंठों पर अन्तिम मुस्कान उभरी। बाहर बादल जोर से गरजा, बिजली कड़की। भारती सहम गई।

भारती पास लिये खड़ी थी। उस ने देवकान्त के सीने पर सिर रख दिया। उस के मुँह से चीख निकल गई।

मधुल उठ बैठा। उस ने देवकान्त का हाथ देखा नब्ज बन्द थी।

भारती ने दोबारा चीख मारी।

देवकान्त की आँखें बन्द थीं। भारती ने मन-ही-मन कहा, "पंछी उड़ गया !" देवकान्त की अन्तिम इच्छा का उसे ध्यान था।

मधुल भी स्त्रियों के समान रोने लगा।

भारती ने सँभलकर कहा, "मैं देवकान्त की अन्तिम इच्छा अवश्य पूरी करूँगी।"

वर्षा बन्द हो चुकी थी। रात आधी से ज्यादा बीत गई थी। भारती बोली, "हम देवकान्त को नीचे ले चलें।"

मधुल भूल गया कि उस की भुजा में गोली लग चुकी है। उस ने भारती के साथ मिलकर देवकान्त को नीचे ले जाकर नाव में डाल दिया।

"मैं कमलिया सापरी तक जाऊँगी।" भारती ने हाथ में चप्पू लेते हुए कहा, "ब्रह्मपुत्र को सौंपकर आ जाऊँगी। तुम यहीं रहना।"

भुजा पर गोली न लगी होती, तो मधुल ने नावरिया की सेवाएँ अर्जित की होतीं।

× × ×

मधुल खिड़की में खड़ा सोच रहा था, ब्रह्मपुत्र जानता है चप्पू कितना गहरा जाता है, तो यह भी जानता होगा विलोमिमुल पर क्या बीती।

धमागम्बी झोंपड़ी के कोने में भारी-भरकम बाल्स पर धरना दिये बैठा था। उसे यहाँ आये आप पस्सा हुआ होगा। मधुल ने सिसक-सिसक

ही शक्ति घटती है।"

वर्षा उन्हें निरन्तर भिगो रही थी। नीचे वाले को ऊपर वाले पर प्रेम आ रहा था—देवकान्त कैसे गोपीनाथ की बातों में आ गया! स्वयं भी गोपीनाथ ने जान से हाथ धोये! जो काम सारा दिलॉंगमुख मिलकर ही कर सकता था, वह अकेला गोपीनाथ और वह भी थोड़ी-सी बन्दूकों से कैसे कर सकता था!

रास्ते में कई जगह घुटनों तक पानी में गुज़रना पड़ा। अतुल ने सोच रखा था, देवकान्त को धर्मानन्दी की झोंपड़ी में पहुँचाकर ही दम लेगा।

धर्मानन्दी झोंपड़ी में न था। वहाँ भारती ही मिली। देवकान्त को घायल देखकर वह घबरा गई। उस ने सँभलकर तुरन्त देवकान्त के कपड़े बदलवाये। फिर बोली, "अतुल, तुम भी बापू के वस्त्र उठाकर पहन सकते हो।"

लालटेन के प्रकाश में देवकान्त के मुख पर मुस्कान दौड़ गई। खिड़की बन्द कर दी गई थी।

अतुल बहुत थक गया था। उसकी आँख लग गई।

भारती देवकान्त पर झुक गई।

देवकान्त की तबियत अच्छी न थी, वह ठीक से बोल नहीं सकता था।

भारती समझ गई कि देवकान्त का बचना तो कठिन है। फिर भी उस ने आग जलाई चाय के लिए पानी रखा।

"मुझे ब्रह्मपुत्र को—" कहते-कहते देवकान्त रुक गया।

भारती चौंककर आई। पर देवकान्त केवल अपना वाक्य ही पूरा कर पाया, "लौट आना!"

अतुल खर्राटे भर रहा था। बाहर से वर्षा की आवाज़ आ रही थी, जिस में ब्रह्मपुत्र की आवाज़ दब गई थी।

देवकान्त में बोलने की शक्ति न थी। भारती ने मुश्किल से चाय

की दो-चार बूँदें उस के मुँह में टपकाईं, और वह उस के सिर पर हाथ फेरती हुई बोली, "हम इकट्ठे मछलियाँ पकड़ने आया करेंगे।"

देवकान्त के होठों पर अन्तिम मुस्कान उभरी। बाहर बादल जोर से गरजा, बिजली कड़की। भारती सहम गई।

भारती चाय लिये खड़ी थी। उस ने देवकान्त के सीने पर सिर रख दिया। उस के मुँह से चीख निकल गई।

मधुल उठ बैठा। उस ने देवकान्त का हाथ देखा नब्ज बन्द थी।

भारती ने दोबारा चीख मारी।

देवकान्त की आँखें बन्द थीं। भारती ने मन ही-मन कहा, "पक्षी उड़ गया!" देवकान्त की अन्तिम इच्छा का उसे ध्यान था।

मधुल भी स्त्रियों के समान रोने लगा।

भारती ने सँभलकर कहा, "मैं देवकान्त की अन्तिम इच्छा अवश्य पूरी करूँगी।"

वर्षा बन्द हो चुकी थी। रात आधी से ज्यादा बीत गई थी। भारती बोली, "हम देवकान्त को नीचे ले चलें।"

मधुल भूल गया कि उस की भुजा में गोली लग चुकी है। उस ने भारती के साथ मिलकर देवकान्त को नीचे ले जाकर नाव में डाल दिया।

"मैं कमलिया सापरी तक जाऊँगी!" भारती ने हाथ में चप्पू लेते हुए कहा, "ब्रह्मपुत्र को सौंपकर आ जाऊँगी। तुम यहीं रहना।"

भुजा पर गोली न लगी होती, तो मधुल ने नाविका की सेवाएँ अर्पित की होतीं।

× × ×

मधुल खिड़की में खड़ा सोच रहा था, ब्रह्मपुत्र जानता है चप्पू कितना गहरा जाता है, तो वह भी जानता होगा दिसाँगमुख पर क्या बीती।

श्यामानन्दी झोंपड़ी के कोने में मारी-भरकम जाल पर धरना दिये बैठा था। उसे यहाँ आये शाप क्या हुआ होगा। मधुल ने सिसक-सिसक

ब्रह्मपुत्र!

र से कुछ न बोली, जैसे वह सब को पहचानती हो। गले से फूलमाला उतार कर वह नमी से इसे हाथ में लिये खड़ी थी, जैसे किसी मूर्तिकार ने एक ऊँचा चट्टान से तराशकर इस मूर्ति को यहाँ खड़ा कर दिया हो। रानी गोइदालो की आँखें चमक रही थीं। चेहरे पर सजे अनुभव का उजाला था, जैसे देखते-देखते उसका कद ऊँचा उठ गया हो।

लोग मान गये और हिलने लगे। चलने से पहले उन्होंने फिर नारा लगाया

"रानी गोइदालो की जय!"

नाव घाट के इस सिरे पर अब अतुल, नीरद और राखाल रह गये। रानी गोइदालो के चरणों में धमानन्दी उसी तरह बैठा था। भारती परे तीखी आग में फूंकें मार रही थी। हवा ब्रह्मपुत्र की लहरों से अठखेलियाँ कर रही थी। भारती के सिर के बाल उड़-उड़ जाते थे।

धमानन्दी ने अपनी ही हाँकी, "हम तो मछुवे हैं। हमारा काम यही है—जाल फेंकें, मछलियाँ पकड़ें आप खायें, दूसरों को खिलायें। धन्य है ब्रह्मपुत्र! धन्य हैं ब्रह्मपुत्र की मछलियाँ! देश गुलाम था, तो भी मछलियाँ जाल में फँसती रहीं। अब देश आजाद है, तो भी बराबर जाल में फँस रही हैं मछलियाँ।"

नीरद बोला, "इसीलिए तो हमारे राखाल काका इस आजादी को अपनी कल्पना की आजादी नहीं मानते।"

"मानें कैसे!" राखाल भी चुप न रह सका, "जैसे ही ब्रह्मपुत्र में बहकर आती लकड़ी पर टैक्स लगा हुआ है वैसे ही पुलिस पैसा कमाती है; वैसे ही हमारे नेता हमें केवल वोट लेने के समय ही याद करते हैं।"

रानी गोइदालो मुस्कराई, जैसे वह कहना चाहती हो कि यही बात तो याद रखने की है।

"हमें इतनी सस्ती अपनी आजादी से असन्तुष्ट नहीं होना चाहिए।" अतुल ने सहज बुद्धि का प्रमाण दिया, "नीरद बाबू मेरे साथ सहमत होंगे कि सात समुद्र और तेरह नदियाँ पार से आकर फिरंगी ने हमारे

कन्धों पर गुलामी का जुआ रखा, हमें अपने हल के बैल बनाया। लम्बी गुलामी के कारण हम में बहुत-सी बुराइयाँ आ गईं। अब ये बुराइयाँ समय पाकर ही तो निकलेंगी।"

"यह तो समझौता हुआ!" रालाल काका ने मुँझलाकर कहा, "तुम गाँव-बूढा हो। तुम्हारी आँखों पर सरकारी ऐनक है। इसे उतारकर बात करो। तुम्हारे मुख से सरकार बोल रही है। मैं कभी तुम्हारी यह सलाह नहीं मान सकता कि अपनी पेन्शन फिर से चालू कराने के लिए अपने आज़ाद देश की आज़ाद सरकार को प्रार्थना-पत्र भेजूँ। हमारे मार्मन साहब कहा करते थे, आज़ादी ऊपर से उतरकर लोगों तक नहीं पहुँचती, लोगों को ही ऊँचे उठकर आज़ादी तक पहुँचना होता है।"

रानी गोरखालो एक बार फिर मुस्कराई, जैसे रालाल काका ने ठीक उस के मन की बात कह दी हो।

"रानी जी, सच पूछो तो मछुवा जन्म का अपराध है!" धर्मानन्दी ने अपनी ही हाँकी, "मछुवे की दुश्मनी न फ़िरंगी से थी, न अब देश की सरकार से है। मछुवे की दुश्मनी मछलियों से भी नहीं है। यह पापी पेट न होता, तो मैं मछलियाँ न पकड़ता। मेरी इस बात से तो देवकान्त ने भी कभी इनकार नहीं किया था।"

रालाल बोला, "मैं तो अपनी पेन्शन के लिए प्रार्थना-पत्र भेजने से रहा। अन्धेर मचा हुआ है। न रिश्वत समाप्त हुई है, न सिफ़ारिशों का ज़ोर कम हुआ है। दिया जलाकर ढूँढ देखो। न्याय नाम की चीज़ नहीं मिलती।"

रानी गोरखालो कुछ न बोली। पर वह बहुत गम्भीर नज़र आ रही थी। जैसे वह कहना चाहती हो, भले ही अभी लोगों की कल्पना की आज़ादी नहीं आई, पर उस की आवाज़ पर अब उतने बन्धन तो नहीं रहे, अब तो वे आज़ादी से अपनी सरकार की आलोचना कर सकते हैं; यह सब आज़ादी की देन ही तो थी। यह विचार उसे सन्तोष दे रहा था कि अब सच्ची आज़ादी के पैर भी जमेंगे।

"मनुष्य मरने के लिए पैदा होता है!" नीरद ने ज्ञान बघारा, "पर वह जीने के लिए मरता है। इसलिए मैं कहता हूँ, जीवन से डरो, मृत्यु से नहीं। और फिर यह भी ध्यान रहे, मनुष्य कोई कुकुर-मुत्ता तो है नहीं, क्योंकि यह एक ही रात में नहीं उगता।"

"डूबना ही हो तो किसी नदी-नाले की अपेक्षा ब्रह्मपुत्र में क्यों न डूबा जाय!" अतुल ने विश्वासपूर्वक कहा, "देवकान्त का यह बोल मैं कभी नहीं भूल सकता।"

रानी गोहड़ाली की मुख-मुद्रा और भी गम्भीर हो गई।

उन की कल्पना कई मार्गों में बँट गई थी। मन के एक कोने में अतीत की स्मृति बीणा के स्वरों के समान झंकृत हो उठती थी, तो किसी दूसरे कोने में गाँव के विनाश का दृश्य उजागर हो जाता। मन के एक कोने में बिछुड़े साथियों का चित्र सिर उठाता, तो दूसरे कोने में गाँव की नई बस्ती का जगमग-जगमग रूप एक नई आशा को जन्म देता। आज ब्रह्मपुत्र बहुत गम्भीर था। जैसे वह सारे संसार का प्रेम जुटाकर दिलीगमुख के चरणों में बिछाना चाहता हो।

सभी गम्भीर थे। किसी में भी इस मौन को तोड़ने का साहस न था। सहसा धमानन्दी ने ब्रह्मपुत्र को घूरकर कहा, "प्यारे, हम तो अब भी मछलियाँ पकड़ेंगे। गाँव तो फिर से आबाद हो चुका है। तेरी मछलियाँ कहाँ जायेंगी?"

रानी गोहड़ाली जैसे उन के बीच होती हुई भी उन से दूर थी। वह देवकान्त के बारे में सोच रही थी।

"ब्रह्मपुत्र से क्यों डरने लगा दिलीगमुख?" अतुल भी चुप न रह सका, "देवकान्त कहा करता था—असम, असमिया, ब्रह्मपुत्र; यह त्रिमूर्ति तो साथ-साथ रहेगी। देवकान्त यह भी कहा करता था—ब्रह्मपुत्र की सातवीं लहर सौभाग्यवती होती है, मछलियों के लिए भी और मछुवे के लिए भी। न जाने उस का क्या भाव था? यह तो सभी समझ सकते हैं, किसी के लिए देवता है ब्रह्मपुत्र, किसी के लिए दानव। मछलियाँ भी

जीवित रहना चाहती है और मछुवा भी। हमारे नामन साहब कहा करते थे, मछुवा भी किसी के लिए मछली है।"

धर्मानन्दी ने पेट पर एक हाथ से थाप लगाकर कहा, "हर रोज़ भूख लगती है। पेट ही गुलामी कराता है, पेट ही आज़ादी माँगता है।"

रानी गोइडालो इन लोगों की बातें सुन रही थी और ब्रह्मपुत्र की ओर देख रही थी।

इतने में आरती ने उठकर धर्मानन्दी का कन्धा झंझोरा और सहज भाव से कहा, "देवकान्त अभी तक क्यों नहीं आया, बापू? और देवकान्त ने यह क्यों कहा था बापू कि दुलहन के वस्त्र सीने वाली कन्या देर तक कुँवारी रहती है?' वह हँस पड़ी, और दूर भाग गई।

धर्मानन्दी बोला, "अच्छा होता कि आरती ने देवकान्त के साथ ही जल-समाधि ले ली होती। आरती की जो अवस्था अब है, वह तो अच्छी नहीं। देवकान्त जीवित रहता, तो मैं अपनी आरती का विवाह उसी से करता। मसे ही वह घर-जमाई बनकर मेरी इच्छा के अनुसार हमारे साथ रहना स्वीकार न करता।"

रानी गोइडालो कुछ न बोली। वह ब्रह्मपुत्र के किनारे की रेत पर बैठ गई। संकेत से उस ने बताया कि वह यहीं रात गुज़ारेगी।

धर्मानन्दी ने जाल फेंकने के अभ्यास में हाथ चलाकर खड़े-खड़े कहा :

"जब तक सरकार है न मछली से टैक्स लेगा, न ब्रह्मपुत्र में बहकर आती लकड़ी से। जब मैं जाल फेंकता हूँ तो कहता हूँ—सावधान, मछलियो!"

अन्धकार की चादर में लिपटे वे ब्रह्मपुत्र के किनारे बैठे थे। झींगुरों और मेंढकों के स्वर मानो एक ही ताल पर बज रहे हों। ब्रह्मपुत्र मानो अपने गम्भीर स्वर में कह रहा था—तुम मेरी प्रजा हो मेरी आशा आकांक्षा, मान-मर्यादा, सब तुम्हारे लिए है।' और दूर से आरती का गीत सुनाई दे रहा था :

ब्रह्मपुत्र कानो है, गरहम्पूरी मूी,
भामी नरा लोरा बाइ
ऊदूबाइ मीनीचा ब्रह्मपुत्र देवना
वामोल दी मानोठा नाइ !'

ब्रह्मपुत्र के किनारे है गरहम्पूरी घाट जहाँ हम स्नान लेने जाते हैं। इसे सीस
न लेना ब्रह्मपुत्र देवता, हमारी स्नानी भी कभी नहीं कि वहाँ घाटरी से ही
त्मन दर्शन करें।
ब्रह्मपुत्र।

सतहत्तर



अब धर्मानन्दी ब्रह्मपुत्र के किनारे बैठा रहता है। वह कभी जाल उठाकर फेंका करता था; भारती नाव चलाया करती थी, मछलियाँ देखकर वह नाव रोक लिया करती थी। अब तो उसे जाल को हाथ लगाये बहुत दिन हो गये। छप की आवाज़ से उस का भारी-भरकम जाल किस प्रकार ब्रह्मपुत्र में गिरता था, अब तो वह आवाज़ उस की याद में खो गई उस की एक हलकी-सी गूँज रह गई।

ब्रह्मपुत्र की साँझ बहुत प्यारी है। उस से भी प्यारे हैं वे बच्चे, जो यहाँ उछल-कूद मचाते हैं। कभी मेंढकों के समान टर्राने लगते हैं, कभी मछलियों का खेल खेलने लगते हैं, जिस का आधार है एक लोक-कथा। मछलियों की सभा होती है। उन की शिकायत है कि सिर पर जाल उठाये मनुष्य का जन्म हुआ, और अब उस का जाल मछलियों का शत्रु है, मनुष्य के विरुद्ध प्रस्ताव पास करने के पश्चात् मछलियाँ अपने अगले कार्य पर विचार करने लगती हैं कि मनुष्य के कदमों की आवाज़ सुनाई दे जाती है। छप की आवाज़ होती है। सिक्के के टुकड़े बज उठते हैं। मछलियाँ डर के मारे किनारों से भागने लगती हैं। बच्चों की मासूम और नटखट भाव-भंगियों में यह खेल देखते-देखते बूढ़े धर्मानन्दी को अपने जाल का स्मरण हो आता है, अपनी बलिष्ठ भुजाओं का ध्यान आ जाता है। सिक्के के छोटे-छोटे, झिलमिल टुकड़े उस की बूढ़ी आँखों

के सामने चित्र उठते हैं। वह आज कभी का छूट गया। अब तो वह बिल्कुल बूढ़ा हो गया। अब तो वह अच्छी तरह चल फिर भी नहीं सकता पर चाय डालने की छुर की आवाज़ और सिक्के के झिलमिल टुकड़ों की कतार अब भी मानो उस के मन में अटकी रह गई है।

जब सूर्य देवता अपने रथ को पश्चिम दिशा में मोड़ते-मोड़ते आँख से ओझल हो जाते हैं, बूढ़ा धर्मानन्दी अपनी कल्पना में फिर से शिशु बन जाता है, बच्चों के साथ बच्चा बनकर वह भी उलटबाज़ियाँ लगाता है।

यह कल्पना तो बीच ही में टूटती है। ज़रा सँभलकर वह अपने लम्बे अनुभव पर विचार करता है। जो दोपहर को क्रोध में लाल-पीला होता है, वह साँझ को शान्त भी होता है। क्रोध ही जीवन नहीं। जीवन में तो कोमलता और विनम्रता चाहिए, सुन्दरता, शान्ति और संगीत चाहिए। इन्हीं गुणों से जीवन में महानता आती है। जो मन के भीतर है, उसी की झलक है मन के बाहर। अपना कोई आदर्श हो, जिस के लिए मर मिटे, हर प्रकार की विपदा झेलने के लिए तैयार रहे। लोग मुझे अक्खड़ और झगड़ालू समझते रहे, निरक्षर और उल्लू मछुआ ही समझते रहे। इस में मेरा क्या दोष कि एक मछुए के घर जन्म हुआ? अन्त तक ठोकरें खाने के पश्चात् बुद्धि आती है। असल बुद्धिमान तो वह है, जो अन्त आने से पहले ही रास्ता पा ले। मृत्यु कन्धा झँझोड़कर कहती है—आओ मेरे साथ! यह नाटक समाप्त हुआ अब दूसरा नाटक आरम्भ होता है! और फिर छप की आवाज़, मानो जाल ब्रह्मपुत्र में डाल दिया हो! ज़रा सँभलकर वह सोचता है—जाल तो कभी का छूट गया।

ब्रह्मपुत्र के किनारे रात धीरे-धीरे उतरती है। बच्चे दौड़ते हुए आते हैं, और बूढ़े धर्मानन्दी के गिर्द चक्कर बनाकर बैठ जाते हैं। धर्मानन्दी की निगाह दूर चली जाती है। वह देखता है, भाभी उसे बुलाने आ रही है, लेकिन तैयार कर लिया होगा। इस बात का उसे सन्तोष है कि

भारती की अवस्था कुछ-कुछ सुधर गई है। पास आकर वह भी बच्चों में मिलकर बैठ जाती है। आँखों-ही आँखों में बच्चे कहते हैं—बाबा ! कथा सुनाओ !

भारती की आँखें खुशी से नाच उठती हैं, जैसे बाबा देवकान्त की कथा सुनायेंगे।

बाबा गुड़गुड़ी पर कश लगाकर मेघ-गम्भीर स्वर में कहना आरम्भ करता है :

जय ब्रह्मपुत्र ! जय जल देवता ! सावधान, महाशियो ! बहुत पहले की बात है, जब संसार की रचना हो रही थी। देवताओं ने देखा कि चाँद है, सूरज है, और चाँद-सूरज की जोड़ी के साथ अनगिनत तारे हैं। फिर देवताओं ने धरती को रूप दिया, धरती पर पर्वत बनाये, बड़े-बड़े पेड़ उगाये। पेड़ों पर फूल खिले, फल लगे। देवताओं ने पशु बनाये, पंछी बनाये। किसी वस्तु की कमी फिर भी खटकती ही रही। यही सोचकर देवताओं ने मनुष्य की रचना की, और उसे इस ब्रह्मपुत्र का रूप दिया, और फिर